पुस्तक माला - 5

ज्ञान-विज्ञान

शैक्षिक निबन्ध

सम्पादन

कृष्ण कुमार मिश्र

ज्ञान-विज्ञान शैक्षिक निबन्ध

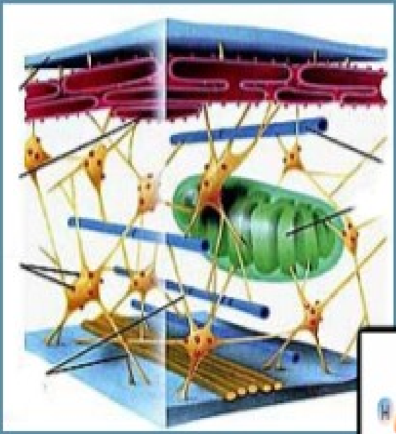

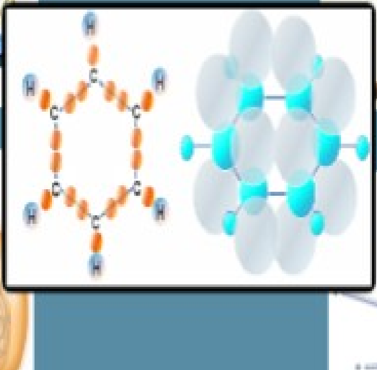

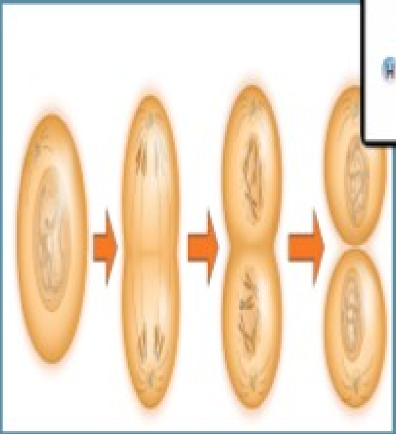

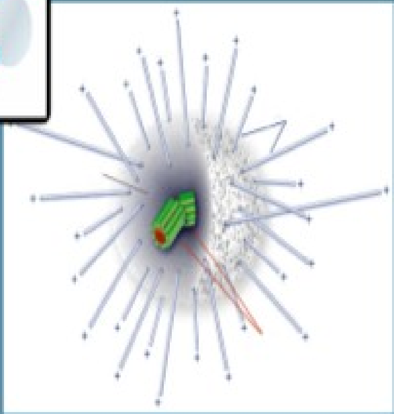

सम्पादन : कृष्ण कुमार मिश्र

ज्ञान-विज्ञान

शैक्षिक-निबन्ध

पुस्तक माला – 5

ज्ञान–विज्ञान

शैक्षिक–निबन्ध

सम्पादन

कृष्ण कुमार मिश्र

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र

टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान

पुस्तक माला –5

ज्ञान–विज्ञान : शैक्षिक–निबन्ध

- सम्पादक : प्रो. कृष्ण कुमार मिश्र

- प्रकाशक : होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र
  टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान
  वी.एन.पुरव मार्ग, मानखुर्द
  मुंबई–400088

- © सर्वाधिकार : टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान, मुंबई

- शब्द संयोजन : धीरेन्द्र मिश्र

- आवरण : धीरेन्द्र मिश्र

- संस्करण : प्रथम, वर्ष 2018

प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना यह पुस्तक या इसका कोई अंश, इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटोकॉपी या किसी भी अन्य रूप में प्रकाशित या संग्रहीत नहीं किया जा सकता ।

पुस्तक माला –5

ज्ञान–विज्ञान : शैक्षिक निबन्ध

अनुक्रमणिका

- प्राक्कथन/ प्रो. के. सुब्रमण्यम (ix)
- प्रस्तावना/ प्रो. कृष्ण कुमार मिश्र (x)

01. जैविक अणु – जीवन का आधार 01
डॉ. धनंजय चोपड़ा

02. हार्मोन का समन्वयन 12
सचिन नरवड़िया

03. मानव रोग 19
सनोज कुमार

04. ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर 29
पूनम त्रिखा

05. पृष्ठ तनाव का परिचय 41
अखिलेश कुमार श्रीवास्तव

06. रासायनिक बलगतिकी 47
डॉ. आरती गुप्ता

07. प्रकृति में रंग परिघटनाएँ 60
रामशरण दास

08. सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण 72

डॉ. मनोज कुमार श्रीवास्तव

09. हमारा पर्यावरण एवं समस्याऐं 87

डॉ. रोली श्रीवास्तव

10. ऐरोमैटिकता 95

डॉ. अर्चना पाण्डेय

11. आबंधन एवं संकरण का विज्ञान 104

डॉ. ज्योति पाण्डेय

12. जीवों में विविधता का अध्ययन 121

डॉ. सुनील कुमार गौड़

13. पियानो की अभिगृहीतियाँ 135

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मिश्र

14. कार्बनिक हाइड्रॉक्सी यौगिक – ऐल्कोहॉल एवं फीनॉल 145

डॉ. बबिता अग्रवाल

15. एकीकृत परिपथ – इलेक्ट्रॉनिकी की रीढ़ 156

डॉ. ओउम् प्रकाश शर्मा

16. बफर विलयन, उनके गुणधर्म एवं उपयोगिता 167

डॉ. संजय कुमार पाठक

17. संश्लेषित रेशे 183

डॉ. सुनन्दा दास

18. कोशिका एवं कोशिका विभाजन 193

डॉ. उमेश कुमार शुक्ल

19. तुल्यांकी भार – संकल्पना एवं उपयोगिता 209

डॉ. अमर श्रीवास्तव

******

प्राक्कथन

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र का मूल उद्देश्य है देश में प्राथमिक स्कूल से लेकर स्नातक स्तर तक विज्ञान एवं गणित शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार तथा संवर्द्धन। ऐसा तभी संभव है जब स्कूली तथा कॉलेज शिक्षा में सार्थक बदलाव हो। इसके लिए आवश्यक है कि लोकमानस में विज्ञान के प्रति रुचि का निर्माण हो, और वैज्ञानिक साक्षरता को प्रोत्साहन मिले तथा साथ ही जनमानस में विज्ञानसम्मत सोच को बढ़ावा मिले। होमी भाभा केन्द्र शैक्षिक सामग्री के विकास के लिए शुरू से संकल्पबद्ध रहा है। सहपाठ्यचर्यात्मक सामग्रियों का विकास उसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। उच्चतर माध्यमिक स्तर तक के विज्ञान तथा गणित विषयों के लिए संगत सामग्री का सृजन इस संस्था का ध्येय रहा है। देश में हिन्दी माध्यम के छात्रों तथा अध्यापकों के लिए इन विषयों में गुणवत्तापूर्ण सामग्रियों की जरूरत को ध्यान में रखते हुए होमी भाभा केन्द्र ने वर्ष 2008 से "हिन्दी में शैक्षिक ई-सामग्री का विकास" विषय पर द्विवार्षिक राष्ट्रीय कार्यशालाएँ आयोजित करना शुरू किया जिनसे उपयोगी शैक्षिक सामग्रियों का विकास किया जा सके। इन कार्यशालाओं में देश के विभिन्न प्रान्तों के जाने माने विज्ञान शिक्षकों/लेखकों के सहयोग से शैक्षिक सामग्री विकसित करने की कोशिश की जा रही है। इनमें डिजिटल सामग्री के साथ प्रिंट सामग्री का भी समावेश है। यह पुस्तक उसी क्रम में वर्ष 2016 में आयोजित पाँचवीं राष्ट्रीय कार्यशाला के विशेषज्ञों द्वारा आयोजक को सौंपे गए निबन्धों का संकलन है।

भारत के संविधान में सभी नागरिकों में वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा देने के लिए प्रतिबद्धता जताई गई है। यह कार्य विज्ञान साक्षरता के जरिए किया जा सकता है। सहपाठ्यचर्यात्मक सामग्री तथा लोकविज्ञान लेखन इस लक्ष्य की पूर्ति में बहुत सहायक हैं क्योंकि बुनियादी विज्ञान और दैनिक जीवन की प्रक्रियाओं में विज्ञान की भूमिका की जानकारी के बगैर वैज्ञानिक प्रवृत्ति का विकास नहीं किया जा सकता। इस पुस्तक में कुल 19 निदर्शनात्मक निबन्ध शामिल हैं। यह पुस्तक छात्रों, अध्यापकों के साथ-साथ आमजन को ध्यान में रखकर तैयार की गई है जिसका हिन्दी पाठक जगत बहुत विशाल है। इन निबन्धों में रोचक तथा प्रेरक तरीके से बताया गया है कि विज्ञान-जगत में क्या घटित हो रहा है। ये निबन्ध इसकी व्याख्या करते हैं कि किस तरह वैज्ञानिक ज्ञान हमारे दैनंदिन घटनाओं से जुड़ा हुआ है। मैं संपादक एवं लेखकों के इस प्रयास की सराहना करता हूँ और आशा करता हूँ कि बड़ी संख्या में हमारे नागरिक इससे लाभान्वित होंगे।

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र
टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान
मुंबई

- प्रो . के. सुब्रमण्यम
केन्द्र निदेशक

प्रस्तावना

ज्ञान–विज्ञान शैक्षिक निबन्ध, पुस्तकमाला–5 की इस पुस्तक का प्रकाशन मेरे लिए प्रसन्नता की बात है। इस पुस्तक में पांचवी राष्ट्रीय कार्यशाला के प्रतिभागी विशेषज्ञों के निबन्ध संकलित हैं। यह कार्यशाला होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र द्वारा विज्ञान परिषद् प्रयाग के तत्वावधान में 2016 में आयोजित की गयी थी। इस पुस्तक में विज्ञान तथा गणित विषयों पर कुल डेढ़ दर्जन शैक्षिक निबन्ध संकलित हैं। यह कार्यशाला हर दो वर्ष के अंतराल पर आयोजित की जाती है। इसकी थीम है– हिन्दी में शैक्षिक ई–सामग्री का विकास। होमी भाभा केन्द्र ने वर्ष 2008, 2010, 2012 तथा 2014 में ऐसी चार राष्ट्रीय कार्यशालाएं विज्ञान परिषद् प्रयाग के तत्वावधान में इलाहाबाद में आयोजित की थीं। उनमें दी गयी तकनीकी प्रस्तुतियों पर आधारित चार पुस्तकें पहले ही इसी पुस्तकमाला के अंतर्गत प्रकाशित की जा चुकी हैं।

सूचना तथा संचार क्रांति के इस वर्तमान समय में पठन–पाठन तथा ज्ञानार्जन का परिदृश्य तेजी से बदला है। शिक्षा अपनी पारंपरिक पद्धति से नवीन पद्धति की ओर अग्रसर है। वह श्यामपट्ट तथा खड़ियामिट्टी के चलन से स्मार्ट बोर्ड एवं पॉवर प्वाइंट प्रस्तुतियों की ओर कदम बढ़ा रही है। शिक्षण विधियों में डिजिटल युक्तियों का प्रयोग बढ़ रहा है। कक्षाओं का स्वरूप डिजिटल हो रहा है। ऐसे में यह बेहद जरूरी है कि हिन्दी माध्यम के छात्रों, अध्यापकों तथा शिक्षक–प्रशिक्षकों के लिए भी शैक्षणिक सामग्रियां इलेक्ट्रॉनिक रूप में सुलभ हों। इस आवश्यकता को अनुभव करते हुए वर्ष 2008 में होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र ने हिन्दी में शैक्षिक सामग्रियों के विकास के लिए समर्पित एक नवोन्मेषी ई–लर्निंग पोर्टल (http://ehindi.hbcse.tifr.res.in) शुरू किया। वर्तमान में इस वेबसाइट पर व्याख्यान, प्रस्तुतियां, पुस्तकें, लेख, रिपोर्ट, पत्रिका तथा शब्दावली इलेक्ट्रॉनिक रूप में उपलब्ध हैं। ज्ञान–विज्ञान: शैक्षिक निबन्ध की पुस्तकें उपरोक्त वेबसाइट पर उपलब्ध हैं जिसे कोई भी निःशुल्क डाउनलोड कर सकता है तथा उनका प्रिंट ले सकता है। इन कार्यशालाओं में दी गई तकनीकी प्रस्तुतियों को ई–व्याख्यान के रूप में उपरोक्त वेबसाइट पर डाला जा चुका है। पोर्टल पर होमी भाभा केन्द्र द्वारा तैयार स्कूली पाठ्यक्रम की विज्ञान की पुस्तकें तथा लोकोपयोगी विज्ञान की किताबें भी उपलब्ध हैं।

होमी भाभा केन्द्र का प्रयास है कि इन राष्ट्रीय कार्यशालाओं से हिन्दी माध्यम के इंटरमीडिएट स्तर तक के छात्रों के लिए विज्ञान एवं गणित विषय की सहपाठ्यचर्यात्मक सामग्रियां विकसित किए जाएं। पाठकों से निवेदन है कि कृपया इस वेबसाइट पर जाएं तथा इन शैक्षिक सामग्रियों के बारे में अपने विचारों तथा सुझावों से हमें अवगत कराएं। इसके लिए

वेबसाइट पर दिए गए 'आपके सुझाव' लिंक के जरिए आप हमें ई–मेल भेज सकते हैं। आप अलग से भी ई–मेल के द्वारा ehindi@hbcse.tifr.res.in पर पत्र लिखकर अपनी राय तथा बहुमूल्य सुझावों से हमें अवगत करा सकते हैं।

– प्रो. कृष्ण कुमार मिश्र

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र
टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान
मुंबई

ज्ञान–विज्ञान

शैक्षिक–निबन्ध

जैविक अणु – जीवन का आधार

■ डॉ. धनंजय चोपड़ा

पृथ्वी के सभी जीवों का शरीर सजीव पदार्थ से बना होता है। इसी सजीव पदार्थ को पहले पुरकिन्जे (सन् 1840) ने और बाद में ह्यूगो वॉन मोहल (सन् 1846) ने जीवद्रव्य अर्थात प्रोटोप्लाज्म का नाम दिया। इस सजीव पदार्थ की जैव शक्ति इसके रासायनिक संघटन पर निर्भर करती है। वास्तव में सजीव पदार्थ कई प्रकार के अणुओं का मिश्रण होता है और जीवन संचालित करते रहने के लिए रासायनिक ऊर्जा को जैव ऊर्जा में बदलने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। यही वजह है कि 'मैक्स शूल्ज' नाम के वैज्ञानिक ने सजीव पदार्थ यानी प्रोटोप्लाज्म को जीवन का भौतिक आधार की संज्ञा भी दी।

सजीव पदार्थ एक जलीय तरल मिश्रण होता है, जिसमें कार्बनिक व अकार्बनिक यौगिक उपस्थित होते हैं। जीव पदार्थ का अधिकांश भाग जल होता है और इस जल में घुले 99 प्रतिशत विलेय कार्बनिक यौगिकों के अणु होते हैं। इनके अतिरिक्त सजीव पदार्थ में अकार्बनिक यौगिक भी होते हैं। ये अकार्बनिक यौगिक जल, अम्लों, समाक्षारों और लवणों के अणुओं से बने होते हैं। मुख्य रूप से सजीव पदार्थ के कार्बनिक अणु ही जैविक अणु कहलाते हैं और यही अणु जीव पदार्थ के संरचनात्मक और क्रियात्मक रासायनिक संघटन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

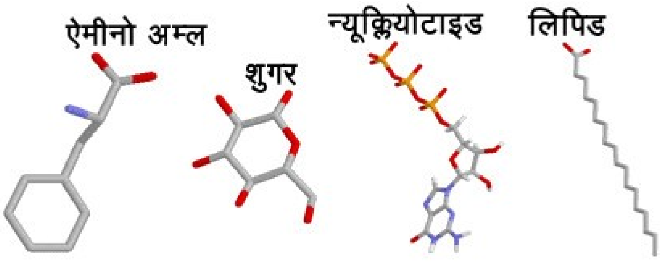

सजीव पदार्थ के जैविक अणुओं में कार्बोहाइड्रेटस, लिपिड्स, प्रोटीन्स एवं न्यूक्लिक अम्ल मुख्य रूप से शामिल हैं। वास्तव में यही वे अणु हैं, जो जीवन को बनाने और उसे सक्रिय बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जीव शरीर की प्रत्येक कोशिका में सजीव

पदार्थ के संयोजन में हजारों प्रकार के कार्बनिक अणु होते हैं। कार्बनिक अणुओं की इतनी विविधता इनके संश्लेषण की प्रकृति पर निर्भर करती है। संश्लेषण के दौरान होने वाली प्रक्रियाएं जैसे कार्बन परमाणुओं का श्रृंखलन, कार्बन परमाणुओं का अन्य अधातुई परमाणुओं से जुड़ने और बहुलीकरण की प्रक्रियाएं ही जैविक अणुओं की प्रकृति और उनके प्रकार को तय कर देती हैं।

कार्बोहाइड्रेट्स

जीव पदार्थ में इनकी मात्रा भले ही एक प्रतिशत हो, लेकिन यही मानव आहार के प्रमुख घटक होते हैं और जीव ऊर्जा के प्रमुख स्रोत होते हैं। अधिकांश कार्बोहाइड्रेट अणुओं के संयोजन में कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के परमाणु 1:2:1 के अनुपात में उपस्थित होते हैं। इनमें हाइड्रोजन और ऑक्सीजन का अनुपात जल के समान होता है, अतः इन्हें जलयोजित कार्बन यौगिक या फिर कार्बन के हाइड्रेट्स भी कहा जाता है। मीठे होने के कारण ये सैकेराइड्स कहलाते हैं और संगठनात्मक स्तर के अनुसार इनकी तीन प्रमुख श्रेणियां होती हैं– मोनोसैकेराइड्स, ओलिगोसैकेराइड्स तथा पॉलीसैकेराइड्स।

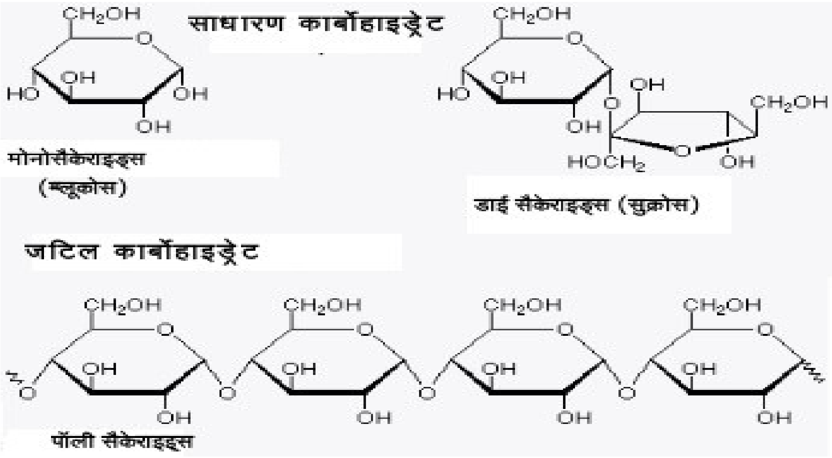

मोनोसैकेराइड्स सबसे सरल, सबसे छोटे, क्रिस्टलीय, मीठे और ठोस कार्बोहाइड्रेट्स होते हैं। इनकी कार्बन श्रृंखलाओं में कार्बन परमाणुओं की संख्या तीन से सात होती हैं और इसी के आधार पर इनका वर्गीकरण ट्राइओजेज, टेट्रोजेज, पेन्टोजेज, हैक्सोजेज तथा हेप्टोजेज में किया जाता है। जैविक रूप से क्रियात्मक मोनोसैकेराइड्स हैक्सोजेज और

पेन्टोजेज ही होते हैं। ग्लूकोस, फ्रक्टोज, मैनोस व ग्लैक्टोस मुख्य हैक्सोजेज मोनोसैकेराइड्स हैं। इनमें डी–ग्लूकोस (डेक्ट्रोस–अंगूर की शर्करा) और डी–फ्रक्टोज (फलों की शर्करा) पृथ्वी पर सबसे अधिक पाए जाने वाले हेक्सोजेज हैं। डी–फ्रक्टोज प्राकृतिक रूप से सबसे मीठी होती है।

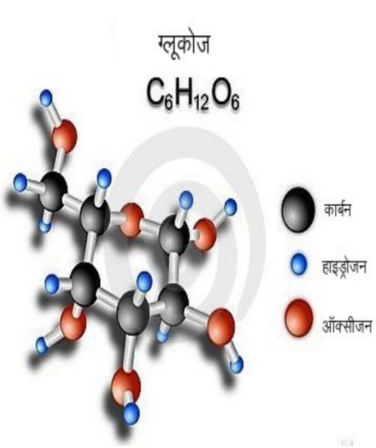

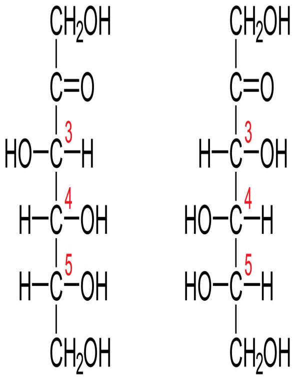

डी-फ्रक्टोज एल-फ्रक्टोज

यहाँ यह जानना आवश्यक है कि सैकरीन एक कृत्रिम शर्करा है और यह डी–फ्रक्टोज से 250 गुना और सामान्य शर्करा यानी सुक्रोस से 400 गुना अधिक मीठी होती है। ग्लूकोस जहां जैविक ऊर्जा के स्रोत हैं, वहीं डी–राइबोस तथा डीऑक्सी डी–राइबोस नामक पेन्टोज शर्कराएं क्रमशः R N A तथा D N A नामक आनुवंशिक पदार्थों की घटक होती हैं। यह बात अत्यंत महत्वपूर्ण है कि जीव पदार्थ के लगभग सभी अणुओं के संश्लेषण में मोनोसैकेराइड्स की ही कार्बन श्रृंखलाओं का उपयोग होता है।

ओलिगोसैकेराइड्स संयुक्त कार्बोहाइड्रेट्स होते हैं, जिनका निर्माण हेक्सोज व पेन्टोज मोनोसैकेराइड्स के बहुलीकरण से होता है। प्रायः ये दो से दस मोनोसैकेराइड्स इकाइयों के बहुलक होते हैं और इसी आधार पर इन्हें डाइसैकेराइड्स, ट्राइसैकेराइड्स, टेट्रासैकेराइड्स आदि कहा जाता है। बहुलीकरण में मोनोसैकेराइड्स अणु ग्लाइकोसिडिक सहसंयोजी बन्ध द्वारा आपस में जुड़ते हैं। अणुओं के आपसे में जुड़ने की यह क्रिया निर्जलीकरण–संघनन संश्लेषण कहलाती है। ये बन्ध उत्क्रमणीय होते हैं अतः जल अपघटन होते ही मोनोसैकेराइड्स

के अणु पृथक हो जाते हैं। भोजन के कार्बोहाइड्रेट्स का पाचन इसी प्रक्रिया के माध्यम से होता है। डाइसैकेराइड्स मीठे और जल में घुलनशील होते हैं। माल्टोस, लैक्टोस और सुक्रोस सबसे अधिक पाई जाने वाली डाइसैकेराइड्स हैं। माल्टोस अंकुरित होते बीजों के स्टार्च के जल–अपघटन से बनती है और माल्ट शर्करा कहलाती है। लैक्टोस को दुग्ध शर्करा कहते है। सुक्रोस सामान्य शर्करा होती है और इसे हम लोग खाते है। यह गन्ने और चुकन्दर में बहुत अधिक मात्रा में पाई जाती है।

पॉलीसैकेराइड्स पृथ्वी पर सर्वाधिक पाई जाने वाली कार्बोहाइड्रेट है। हजारों मानोसैकेराइड्स अणुओं से मिलकर बनने वाली इस कार्बोहाइड्रेट्स को 'ग्लाइकन्स' भी कहते है। सेल्युलोस और ग्लाइकोजन इसके प्रमुख उदाहरण हैं। ये न तो मीठे होते हैं और न ही जल में घुलनशील। संयोजन के आधार पर पॉलीसैकेराइड्स दो प्रकार के होते हैं। समान मोनोसैकेराइड्स अणुओं से बनने वाली होमोपॉलीसैकेराइड्स तथा विभिन्न प्रकार के मोनोसैकेराइड्स अणुओं के बहुलीकरण से बनने वाली हेट्रोपॉलीसैकेराइड्स।

उपयोगिता के आधार पर भी पॉलीसैकेराइड्स को दो प्रकारों में विभेदित किया जाता है– संचयात्मक और संरचनात्मक। संचयात्मक पॉलीसैकेराइड्स जीवों के आरक्षित ईंधन कहलाते हैं। पादपों में ये मण्ड यानी स्टार्च के रूप में और जन्तुओं, नीले–हरे शैवालों तथा कवकों में ग्लाइकोजन के रूप में और जीवाणु तथा यीस्ट में डेक्सट्रॉन्स के रूप में होते हैं। संरचनात्मक पॉलीसैकेराइड्स प्रायः जीवों में कठोर आवरणों की रचना में भाग लेते हैं। सेलुलोस, काइटिन, हेमीसेलुलोस तथा श्लेष्मी पॉलीसैकेराइड्स मुख्य संरचनात्मक पॉलीसैकेराइड्स होते हैं। हीपेरिन एक नाइट्रोजन युक्त श्लेष्मी पॉलीसैकेराइड्स है, जो रक्त को जमने से रोकता है। इसे 'म्यूको श्लेष्मी पॉलीसैकेराइड्स' भी कहते है।

लिपिड्स

कार्बोहाइड्रेट्स की तरह लिपिड्स भी कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन से बने होते हैं। इनमें कार्बन और हाइड्रोजन परमाणुओं की संख्या ऑक्सीजन परमाणुओं की संख्या से बहुत अधिक होती है। कुछ लिपिड्स में फास्फोरस, नाइट्रोजन और सल्फर के भी कुछ परमाणु जुड़े होते हैं। इनका अधिकांश भाग वसीय अम्ल बनाते हैं। वसीय अम्लों को महत्वपूर्ण जैव अणु माना जाता है, क्योंकि ये उभय संवेदी (ऐम्फीपैथिक) होते हैं अर्थात इनमें जलरागी (जल में

घुलनशील) और जलविरागी (जल में अघुलनशील) दोनों भाग पाए जाते हैं। कार्बन परमाणुओं के इकहरे और दोहरे बन्धों से जुड़ने के आधार पर इन्हें क्रमशः संतृप्त व असंतृप्त वसीय अम्ल में विभेदित किया जाता है। कोलेस्टेरॉल बढ़ाने वाली जंतु वसाओं में संतृप्त वसीय अम्ल और कोलेस्टेरॉल कम करने वाली पादप वसाओं में असंतृप्त वसीय अम्ल मिलते हैं।

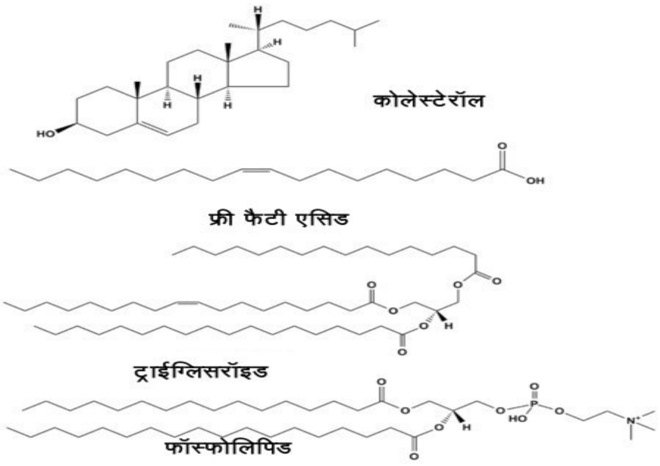

लिपिड्स रासायनिक संयोजन के आधार पर तीन प्रकारों में विभक्त की जाती हैं– सरल, संयुक्त तथा व्युत्पन्न लिपिड्स। मुख्य रूप से वसीय अम्लों से बने सरल लिपिड्स संचयी होते हैं। इनकी दो श्रेणियां पाई जाती हैं– सामान्य वसाएं और प्राकृतिक मोम। सामान्य वसाएं ही वास्तविक वसाएं होती हैं। जब एक ग्लिसरॉल अणु से एक–एक करके तीन वसीय अम्ल अणु तीन सहसंयोजी बन्धों से जुड़ते हैं तब इनका निर्माण होता है। जीव शरीर में आरक्षित भोजन के रूप में इनका भंडारण किया जाता है। उच्च अकशेरुकी और कशेरुकी जंतुओं में इनका भंडारण जिन कोशिकाओं में होता है, उन्हें एडिपोसाइट्स और इनसे बने ऊतक को ऐडीपोज ऊतक कहते है। यही ऊतक वसा डिपो कहलाते हैं। आरक्षित भोजन के साथ–साथ वसीय भंडारण जीव शरीर में तापरोधी की भूमिका भी निभाता है। व्हेल का ब्लबर और ऊंट का कूबड़ वसा के जमाव के ही उदाहरण हैं। ऊंट तो इस वसा के ऑक्सीकरण से बनने वाले जल के भरोसे रेगिस्तान में कुछ दिनों तक बिना पानी पिए ही रह सकता है। इसी क्रम में वसीय अम्लों के एल्कोहल से जुड़ने पर ठोस, अर्द्धठोस और जल में अघुलनशील प्राकृतिक मोम बनते हैं।

स्तनियों की त्वचा की तैल ग्रन्थियों से स्रावित मोमिया तेल व बाह्य कर्ण की नलियों में स्रावित होने वाला सेरूमेन या कर्ण मोम तथा पेड़ों की कार्क के सुबेरिन इसके उदाहरण हैं।

संयुक्त लिपिड्स वसीय अम्लों, एल्कोहलों तथा कुछ अन्य पदार्थों के मिलने से बनते हैं और जैव कलाओं की रचना में भाग लेते हैं। इन्हें संरचनात्मक लिपिड्स भी कहा जाता है। इनकी दो प्रमुख श्रेणियां होती हैं– फास्फोलिपिड्स व स्फिगोलिपिड्स। फास्फोलिपिड्स जैव कलाओं की मूल रचना करते हैं। यहाँ इनमें लिसाइथिन्स व सिफैलिन्स अधिक मात्रा में होते हैं। स्फिगोलिपिड्स में से स्फिंगोमायसिन मुख्य रूप से तंत्रिका कोशिकाओं की कोशिकाकला में पाई जाती है। व्युत्पन्न लिपिड्स शरीर में उपापचय के दौरान व्युत्पन्न होते हैं। इसकी दो प्रमुख श्रेणियां हैं– टर्पीन्स व आइकोसैनाइड्स। स्टीरॉयड्स हार्मोन्स, वसा में घुलने वाले विटामिन्स तथा कई प्रकार के पिगमेंट्स टर्पीन्स ही होते हैं। स्टीरॉयड्स तीन प्रकारों में मिलते हैं– स्टीरॉल्स, स्टीरॉयड हॉर्मोन्स तथा पित्त अम्ल। स्टीरॉल्स में सबसे महत्वपूर्ण कोलेस्टेरॉल होता है।

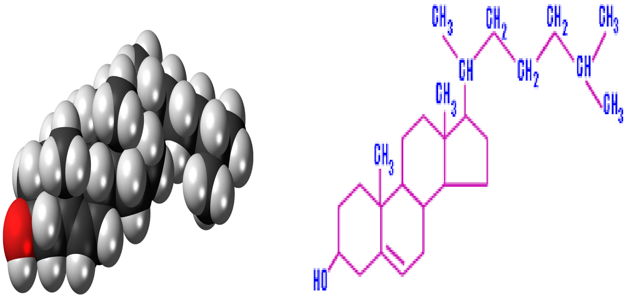

कोलेस्टेरॉल अणु

हालांकि कोलेस्टेरॉल कोशिकाकला के निर्माण, लिंग हार्मोन्स, विटामिन डी और पित्त अम्लों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है, लेकिन इसकी अधिकता जीव शरीर को खतरे में डाल सकती है। आवश्यकता से अधिक कोलेस्टेरॉल रुधिरवाहिनियों में जमकर रुधिर के प्रवाह को बाधित करता है। इस दशा को ऐथिरोस्क्लेरोसिस कहते हैं। यही गंभीर हृदय रोगों का कारण बनता है। रुधिर में कोलेस्टेरॉल कुछ अन्य लिपिड्स के साथ मिलकर लाइपोप्रोटीन्स नामक बूंदों के रूप में संग्रहित रहता है। ये दो प्रकार की होती हैं– लघु घनत्व लाइपोप्रोटीन्स (एलडीएल) व दीर्घ घनत्व लाइपोप्रोटीन्स (एचडीएल)। एलडीएल रुधिर में कोलेस्टेरॉल की

मात्रा बढ़ाने और एचडीएल इसे कम करने में अपनी भूमिका निभाती हैं। इसी क्रम में पित्त अम्ल वसाओं के पाचन में भूमिका निभाते हैं।

प्रोटीन्स

जैव अणुओं में सर्वाधिक सक्रिय अणु प्रोटीन्स के ही होते हैं, जो कि ऐमीनो अम्लों के लम्बे व अशाखित सूत्रनुमा बहुलक होते हैं। पृथ्वी पर 300 प्रकार के ऐमीनो अम्ल पाए जाते हैं, लेकिन इनमें से केवल 20 ऐमीनो अम्ल ही प्रोटीन संश्लेषण में भाग लेते हैं। मनुष्य सहित सभी स्तनी प्राणियों में इन 20 ऐमीनो अम्लों में से केवल 10 ही शरीर में बनते हैं, जिन्हें अतात्विक ऐमीनो अम्ल कहा जाता है। बचे हुए 10 ऐमीनो अम्लों को भोजन के माध्यम से प्राप्त करना पड़ता है, जिन्हें तात्विक या अनिवार्य ऐमीनो अम्ल कहते हैं। ऐमीनो अम्लों का चतुष्फलकीय अणु कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन और नाइट्रोजन से मिलकर बना होता है। कभी–कभी इसमें सल्फर भी उपस्थित होता है।

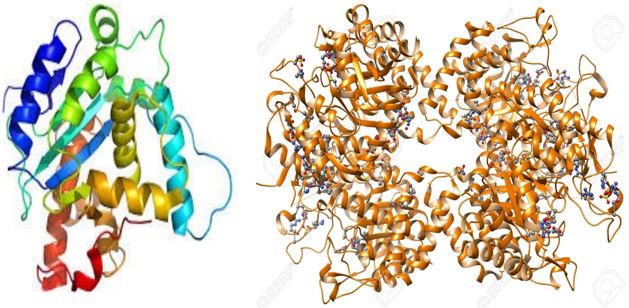

प्रोटीन के आणविक मॉडल

प्रोटीन की रचना में एक केन्द्रीय कार्बन परमाणु के एक ओर हाइड्रोजन परमाणु, दूसरी ओर एक कार्बोक्सिल समूह, तीसरी ओर एमीनो समूह और चौथी ओर कोई एक विशेष परमाणु या समूह सहसंयोजित होता है। बहुलीकरण कर–करके ये 20 प्रकार के ऐमीनो अम्लों के अणु असंख्य प्रकार के प्रोटीन्स बना लेते हैं। ऐमीनो अम्लों को चार श्रेणियों में विभाजित किया जाता है– अध्रुवीय ऐमीनो अम्ल (ग्लाइसीन, ऐलानिन, वैलीन, ल्यूसीन, आइसोल्यूसीन, प्रोलीन, मिथिओनीन, सिस्टीन, फीनाइलऐलानिन तथा ट्रिप्टोफैन), अनावेशित ध्रुवीय ऐमीनो अम्ल (सेरीन, थ्रियोनीन, टाइरोसीन, ऐस्पैरेजीन तथा ग्लूटैमीन), अम्लीय ऐमीनो अम्ल (ऐस्पार्टिक व ग्लूटैमिक) तथा क्षारीय ऐमीनो अम्ल (लाइसीन, आर्जनीन व हिस्टडीन)।

ऐमीनो अम्लों के अणु एक दूसरे से पेप्टाइड (ऐमाइड) बन्धों द्वारा आगे–पीछे जुड़कर प्रोटीन्स का निर्माण करते हैं। यह क्रिया निर्जलीकरण–संघनन कहलाती है, क्योंकि इसमें अगल–बगल के ऐमीनो अम्लों के कार्बोक्सिल समूह अभिक्रिया करते समय जल के एक अणु को मुक्त करते हैं। इस तरह डाइपेप्टाइड, ट्राइपेप्टाइड, टेट्रापेप्टाइड आदि शृंखलाएं बनती हैं। 10 ऐमीनो अम्लों की शृंखला ओलिगोपेप्टाइड्स तथा इससे अधिक की शृंखला पॉलीपेप्टाइड्स कहलाती है। सबसे पहले प्रोटीन अणु के रूप में इन्सुलिन हॉर्मोन की संरचना का पता लगाया गया। फ्रेडरिक सैंगर ने 1955 में गाय के अग्नाशय से प्राप्त इन्सुलिन की पॉलीपेप्टाइड शृंखलाओं के ऐमीनो अम्लों का पता लगाया। इसके लिए उन्हें 1958 में नोबेल पुरस्कार भी दिया गया। अब तक लगभग 20,000 प्रोटीन्स के अणुओं की ऐमीनो अम्ल शृंखलाओं का पता लगाया जा चुका है।

अपनी आकृति के आधार पर प्रोटीन्स दो श्रेणियों में पाए जाते हैं– तन्तुवत और गोलाकार। तन्तुवत प्रोटीन्स जल में अघुलनशील और संरचनात्मक होती हैं तथा शरीर के कुल भार का आधा बनाती हैं। इनके प्रकारों में अल्फा–किरेटिन्स, बीटा–किरेटिन्स, कोलेजन तथा इलास्टिन होती हैं। अल्फा–किरेटिन्स से कशेरुकी जन्तुओं के नाखून, पंजे, पर व पंख, सींग, खुर, कछुओं के खोल आदि बने होते हैं। कोलेजन प्रोटीन्स से कशेरुकी जंतुओं की संयोजी ऊतकों से बनी संरचनाएं जैसे अस्थियां, उपास्थियां, दांत, कण्डराएं, रुधिर वाहिनियों की दीवारें, नेत्रों की कॉर्निया तथा त्वचा की चर्म आदि बनी होती हैं। इलास्टन प्रोटीन्स से स्नायु बनते हैं। गोलाकार प्रोटीन्स क्रियात्मक होती हैं। ये विभिन्न प्रकार के एन्जाइमों व हार्मोन्स के रूप में मिलती हैं और शरीर की उपापचयी क्रियाओं में भाग लेती हैं।

रासायनिक संयोजन के आधार पर प्रोटीन्स सरल, संयुक्त और व्युत्पन्न प्रकारों में विभेदित होती हैं। सरल प्रोटीन्स में ऐमीनो अम्ल की एकल श्रृंखला होती है। ग्लोबुलिन्स, ऐल्बुमिन्स, हिस्टोन, ग्लूटेलिन्स व प्रोलैमिन्स आदि सरल प्रोटीन्स का उदाहरण हैं। जब ऐमीनो अम्लों के साथ गैर ऐमीनो अम्ल घटक भाग लेते हैं तो संयुक्त प्रोटीन्स बनती हैं। न्यूक्लिओप्रोटीन्स, ग्लाइकोप्रोटीन्स, लाइपोप्रोटीन्स, फॉस्फोप्रोटीन्स, फ्लैवोप्रोटीन्स, धातुप्रोटीन्स, हीमोप्रोटीन्स तथा क्रोमोप्रोटीन्स इसके उदाहरण हैं। इसी तरह व्युत्पन्न प्रोटीन्स में प्रोटिओजेज, पेप्टोन्स तथा पॉलीपेप्टाइड्स इसके उदाहरण हैं जो भोजन की प्रोटीन के जल अपघटन से बनती हैं। शरीर में प्रोटीन संरचनात्मक, एन्जाइमी, नियामक, संकुचनशील,

संवाहक, सुरक्षात्मक पोषक, संवेदग्राही आदि जैसे महत्वपूर्ण कार्यों का संपादन करती हैं।

न्यूक्लिक अम्ल

कोशिका के सजीव पदार्थ में सबसे महत्वपूर्ण जैविक अणु के रूप में न्यूक्लिक अम्ल होते हैं। अपनी विशेषताओं के कारण ही इन्हें सूचनात्मक गुरुअणु भी कहा जाता है। प्रत्येक कोशिका में ये दो श्रेणियों में पाए जाते हैं– डीएनए यानी डीऑक्सी राइबोन्यूक्लिक अम्ल तथा आरएनए यानी राइबोन्यूक्लिक अम्ल। पीढ़ी दर पीढ़ी जीवन की निरंतरता बनाने का काम यही अम्ल करते हैं। डीएनए के अणुओं में सारे कोशिकीय लक्षणों की रूपरेखा नियत होती है, जबकि आरएनए उसी रूपरेखा के आधार पर प्रोटीन्स के संश्लेषण को नियंत्रित करके कोशिकीय निरंतरता को बनाने में सहयोग करता है।

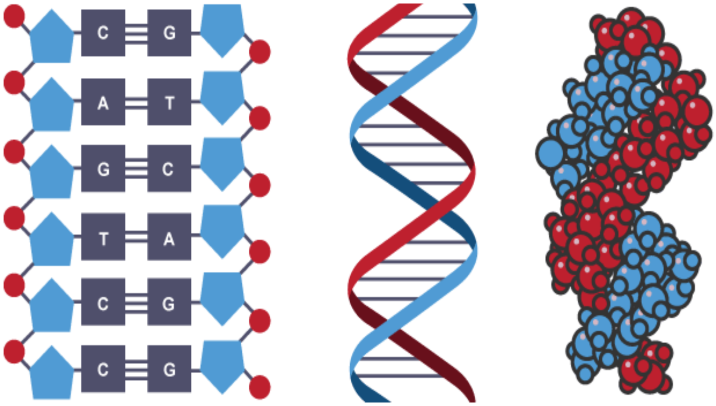

डीएनए

न्यूक्लिक अम्ल की निर्माणक इकाई न्यूक्लिओटाइड कहलाती है, जो कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन तथा फास्फोरस से बने उच्च ऊर्जा यौगिक होते हैं। प्रत्येक न्यूक्लिओटाइड का अणु एक नाइट्रोजनीय समाक्षार, एक पंचकार्बनीय शर्करा तथा एक अकार्बनिक फॉस्फेट समूह के आपस में सहसंयोजी बंधों से जुड़ा संयुक्त अणु होता है। न्यूक्लिओटाइड्स के नाइट्रोजनीय समाक्षारों में साइटोसीन (C), थाइमीन (T), यूरैसिल (U), ऐडीनीन (A) तथा ग्वानीन (G) शामिल होते हैं। प्रत्येक न्यूक्लिओटाइड का केन्द्रीय भाग कार्बन और नाइट्रोजन की वलय रचना के रूप में होता है। वलय रचना के आधार पर न्यूक्लिओटाइड्स की दो श्रेणियां होती हैं– पिरिमिडीन्स और प्यूरीन्स। साइटोससीन, थाइमीन और यूरेसिल पिरिमिडीन्स और ऐडीनीन और ग्वानीन प्यूरीन्स न्यूक्लिओटाइड्स होते हैं।

न्यूक्लिओटाइड्स की संरचना में भाग लेने वाली पंचकार्बनीय शर्कराएं दो प्रकार की होती हैं– राइबोस और डीऑक्सीराइबोस। न्यूक्लिओटाइड्स के अणु दो चरणों में संश्लेषित होते हैं। पहले चरण में शर्करा का एक अणु नाइट्रोजनीय समाक्षार के एक अणु से जुड़कर न्यूक्लिओसाइड बनाता है। दूसरे चरण में इस न्यूक्लिओसाइड अणु से सहसंयोजन के माध्यम से एक फास्फोरिक अम्ल जुड़ता है तो यह न्यूक्लिओटाइड अणु बन जाता है।

कुछ न्यूक्लिओटाइड अन्तःकोशकीय संदेशवाहक की तरह काम करते हैं। इन्हें अन्तःकोशकीय चक्रीय न्यूक्लिओटाइड्स कहा जाता है। 3',5'–चक्रिय ऐडीनोसीन मोनोफास्फेट तथा 3',5'– चक्रिय ग्वानोसीन मोनोफास्फेट इसके उदाहरण हैं। इसी तरह अन्तः कोशकीय ऊर्जा वाहक न्यूक्लिओटाइड्स भी पाए जाते हैं। इनमें ऐडीनोसीन ट्राइ फास्फेट (A T P) प्रमुख है। न्यूक्लिओटाइड्स से कुछ एंजाइम भी व्यत्पन्न होते हैं। ये कोशिकाओं में उपापचयन की क्रिया को प्रेरित करते हैं। इनमें निकोटिनैमाइड ऐडीनीन डाइन्यूक्लिओटाइड (N A D) तथा फ़्लैविन ऐडीनीन डाइ न्यूक्लिओटाइड (F A D) मुख्य हैं।

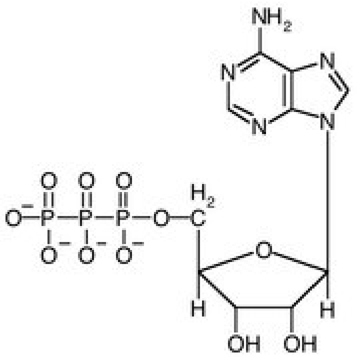

एटीपी

इस तरह हम कह सकते हैं जैविक अणु हमारी जीवनी शक्ति के पर्याय होते हैं। जीव शरीर की संरचनात्मक और क्रियात्मक इकाई कोशिका की बनावट और कार्यकीय इन्हीं अणुओं पर निर्भर करती हैं। यही वजह है कि जैविक अणुओं को लेकर नित नए–नए अनुसंधान हो रहे हैं। बदलती जीवन शैली और बदलते पर्यावरण के इस समय में जीव शरीर की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर कई नई खोजे हुई हैं और ऐसी ही कई संभावनाओं पर

वैज्ञानिक शोध कार्य कर रहे हैं। यह तय है कि आने वाले समय में जैविक अणुओं का अध्ययन और भी अधिक महत्वपूर्ण होता जाएगा।

➢ पाठ्यक्रम समन्वयक
सेन्टर ऑफ मीडिया स्टडीज
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश
ई–मेल: c.dhananjai@gmail.com

हॉर्मोन का समन्वयन

■ सचिन नरवड़िया

हमारा शरीर तंत्रिका तंत्र और हॉर्मोन समन्वयन के माध्यम से समस्थापन रखता है। ग्रंथियां 2 प्रकार की होती हैं। जिनमें बहिःस्त्रावी और अंतःस्त्रावी ग्रंथि सम्मिलित हैं। इन ग्रंथियों से निकलने वाले स्त्राव को 'हॉर्मोन' कहते हैं। **बहिःस्त्रावी ग्रंथि:–** यह ग्रंथि, अपना स्त्राव नलिका के माध्यम से एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाती है। **अंतःस्त्रावी ग्रंथि:–** यह ग्रंथि, अपना स्त्राव सीधे रक्त में मिश्रित कर देती है। अंतःस्त्रावी ग्रंथि द्वारा होने वाले स्त्राव को हॉर्मोन कहते है। यह हॉर्मोन ऐमीन, पेप्टाइड और सांद्राभ (स्टेरॉइड) से बने होते हैं। कोशिकाओं के ऊपर इन हॉर्मोनो के चिपकने के लिए विशिष्ट अभिग्राहक मौजूद होते हैं। कोशिकाओं से इनके स्त्राव तथा कार्यो के आधार पर इनका वर्गीकरण किया जाता है। जैसे एक कोशिका से निकालकर हॉर्मोन उसी कोशिका पर अपना कार्य दर्शाता है, तो उसे ऑटो–क्रीन कहते है। अगर एक कोशिका से निकालकर हॉर्मोन दूसरी कोशिका पर अपना कार्य दर्शाता है तो उसे परा–क्रीन कहते है। और अगर एक कोशिका से निकालकर हॉर्मोन रक्त में प्रवाहित होकर दूर स्थित दूसरी कोशिका पर अपना कार्य दर्शाता है, तो उसे अंतःस्त्रावी या इंडो–क्रीन कहते है। हॉर्मोन्स का स्त्राव ऋणात्मक प्रतिपुष्टि प्रणाली पर आधारित होता है। ऋणात्मक प्रतिपुष्टि प्रणाली का मतलब एक स्त्रावित हॉर्मोन की सांद्रता ही उस हॉर्मोन के स्त्राव को नियंत्रित करता है। जब हॉर्मोन की सांद्रता कम होगी तो स्त्राव होने की प्रक्रिया बढ़ जायेगी और जब सांद्रता ज्यादा होगी तो स्त्राव की प्रक्रिया क्रमशः कम होती जायेगी। अपोक्रिन ग्रंथि, बाऊहिन् ग्रंथि, ब्रन्नर ग्रंथि, कोबैली ग्रंथि आदि बहिःस्त्रावी ग्रंथियां हैं। अंतःस्त्रावी ग्रंथियों में अधिवृक्क ग्रंथि (एड्रेनल), हाइपोथैलेमस, पिनियल, पीयूष ग्रंथि, थाइराइड ग्रंथि, अंडाशय, शुक्र ग्रंथि, अग्न्याशय का समावेश हैं। इस आलेख में हॉर्मोन का बनना, उनका कार्य और समन्वयन संक्षेप में समझाया गया है।

अन्त:स्त्रावी तंत्र

अन्त:स्त्रावी ग्रंथियों का एक समूह जो विभिन्न हॉर्मोनों को उत्पन्न करता हैं, अन्त:स्त्रावी तंत्र कहलाता है। अन्त:स्त्रावी तंत्र, हार्मोनी तंत्र भी कहलाता है। मानव शरीर में उपस्थित अन्त:स्त्रावी ग्रन्थियाँ हैं : पिनियल ग्रंथि, हाइपोथेलेमस ग्रंथि, पिट्यूटरी या पीयूष ग्रंथि, थाइरॉइड या अवटु ग्रंथि, पराथाइरॉइड या पराअवटु ग्रंथि, थाइमस, अग्नाशय या पेंक्रीयास,

अधिवृक्क या एड्रेनल ग्रंथि, वृषण या टेस्टीज(केवल नरों में), अंडाशय या ओवरिज(केवल मादाओं में)।

मानव शरीर की इन सभी ग्रंथियों को चित्र 1 में दर्शाया गया है।

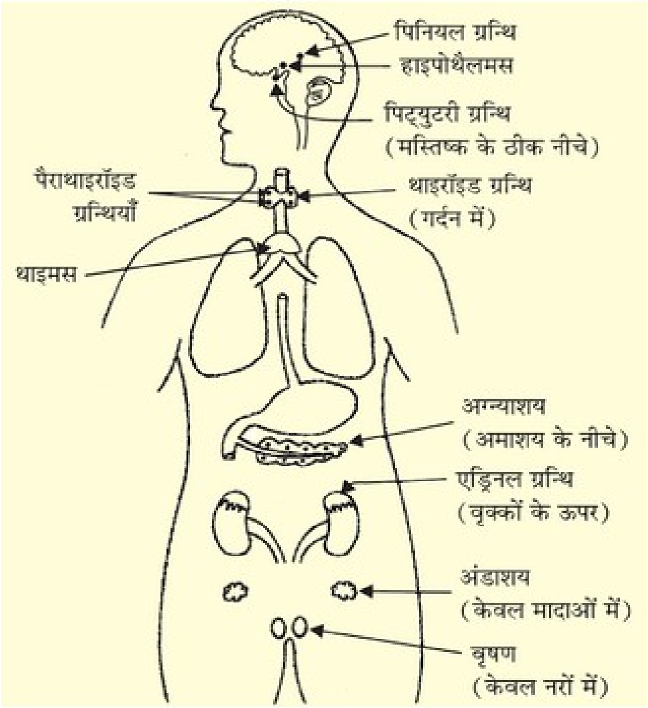

चित्र 1: मानव शरीर में ग्रंथियों की स्थिति

हॉर्मोन

हॉर्मोन, यह एक रासायनिक सन्देश वाहक है, जिसके गुणधर्म निम्नलिखित हैं :-

1. यह रक्त में प्रवाहित होता है।
2. इसका असर उस जगह पर होता है, जो उसके निर्माण की जगह से अलग होती है। जहाँ यह अपना असर दिखाता है उसे टारगेट या लक्षित कह सकते है।
3. कोशिकाओं के ऊपर इन हॉर्मोनों के चिपकने के लिए विशिष्ट अभिग्राहक मौजूद होते हैं।
4. यह सूक्ष्म घुलनशील जैविक रसायन अणु है।
5. यह बहुत कम सांद्रता में भी कार्यशील है।

हमारा शरीर तंत्रिका तंत्र और अंत:स्त्रावी प्रणाली के माध्यम से समस्थापन रखता हैं। इन दोनों

प्रणालियों का तुलनात्मक अध्ययन इस प्रकार हैं :-

तंत्रिका तंत्र	**अंत:स्त्रावी प्रणाली**
विद्युतीय और रासायनिक संचरण	रासायनिक संचरण
तीव्र संचरण और प्रतिक्रिया	धीमा संचरण और तुलनात्मक रूप से धीमी कार्यशैली
इसका प्रभाव कम समय का होता हैं।	इसका प्रभाव लम्बे समय तक रहता हैं।
इसका मार्ग विशिष्ट होता हैं, जैसे तंत्रिका कोशिकाओं से होते हुए।	इसका मार्ग विशिष्ट नहीं होता हैं, जैसे-रक्त प्रवाह जो पूरे शरीर में जाता हैं पर लक्ष्य विशिष्ट होता है।
प्रतिक्रिया सीमित रहती है, जैसे- एक मांसपेशी तक।	प्रतिक्रिया विस्तृत रहती है, जैसे- शरीर का विकास।

चूँकि दोनों प्रणाली अलग-अलग हैं, लेकिन उनमें एक समानता है कि दोनों रसायनों द्वारा अपने कार्य को पूरा करते हैं। इन दोनों प्रणालियों का मुख्य कार्य शरीर का समन्वयन और नियंत्रण रखना है।

हॉर्मोन के कार्य की क्रियाविधि

सारे हॉर्मोन निम्न 4 में से एक प्रकार के होते हैं ।

1. पेप्टाइड या प्रोटीन
2. ऐमीन्स का यौगिक उदाहरण- टायरोसिन
3. संद्राभ या स्टेरॉयड
4. फैटी एसिड

हॉर्मोन के निर्गमन की प्रक्रिया

ग्रंथियों द्वारा हॉर्मोन के निकलने की यंत्र प्रणाली मुख्य रूप से 3 प्रकार से कार्य करती हैं।

1. जब कोई विशिष्ट चयापचयी रसायन रक्त में उपस्थित रहता हैं तब ग्रंथियों द्वारा हॉर्मोन निकलता हैं। उदाहरण के लिए ग्लूकोस की मात्रा रक्त में अधिक हो जाती हैं, तब अग्नाशय द्वारा इन्सुलिन का स्त्राव शुरू हो जाता है।
2. जब कोई एक हॉर्मोन दूसरे हॉर्मोन के स्त्राव को प्रेरित करता है।

3. तंत्रिका कोशिकाओं द्वारा उत्तेजित होने पर भी ग्रंथियों द्वारा हॉर्मोन निकलता है। उदहारण के लिए अधिवृक्क रस, तनाव, खतरा आदि परिस्थितियों में अधिवृक्क ग्रंथि द्वारा निकलता हैं।

ऊपर दिए गए प्रथम 2 बिन्दुओं में दी गयी परिस्थितियों में हॉर्मोन का स्त्राव ऋणात्मक प्रतिपुष्टि द्वारा संचालित होता है। इसका उदाहरण अवटु ग्रंथि द्वारा स्त्रावित थायरोसिन हॉर्मोन है जो की ऋणात्मक प्रतिपुष्टि द्वारा संचालित होता है।

सोपानी प्रभाव (Cascade Effect)

हॉर्मोन जो की दूसरे हॉर्मोन के रक्त में मौजूद रहने के कारण स्त्रावित होते हैं, वो सामान्यत: अधश्वेतक या हाइपोथैलेमस और पीयूष ग्रंथि के नियंत्रण में होते हैं। उनका प्रभाव 3 अलग–अलग हॉर्मोन के स्त्राव के रूप में दिखता है। कोर्टिसोल, यह अधिवृक्क ग्रंथि के बाहरी भाग जिसे 'कोर्टेक्स' कहते है, से स्त्रावित होता है। यह हॉर्मोन ग्लुकोकोर्टीकोयड समूह का एक हॉर्मोन है। यह समूह तनाव की स्थिति में रक्त में शक्कर की मात्रा को नियंत्रित करते हैं।

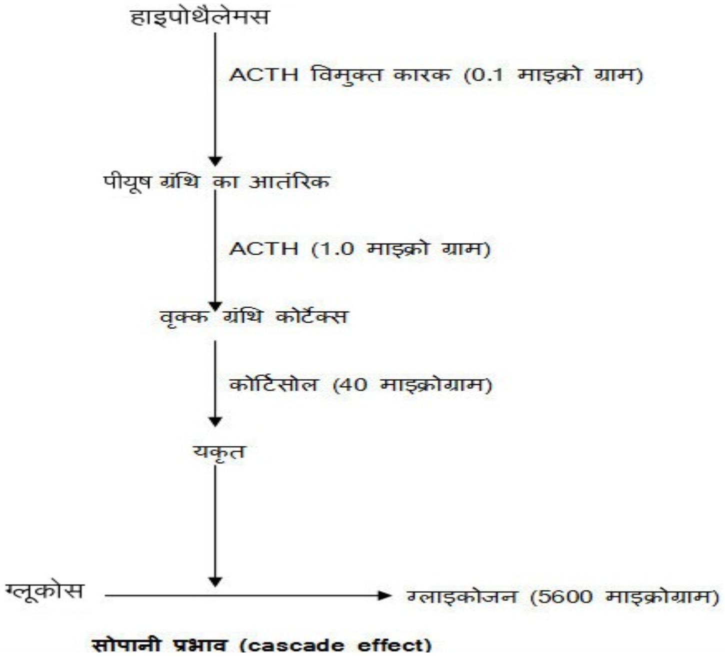

चित्र 2 : सोपानी प्रभाव का उदाहरण

लक्षित कोशिका पर प्रभाव

हॉर्मोन अपने लक्षित कोशिका पर मौजूद अभिग्राहक के लिए विशिष्ट होते हैं। अभिग्राहक प्रोटीन से बने होते हैं और वो अपने हॉर्मोन को पहचान लेते हैं। अभिग्राहक से चिपकाने के बाद हॉर्मोन अपना प्रभाव अलग–अलग रास्तों और तरीको से दर्शाते हैं। इनमें से तीन मुख्य तरीके निम्न अनुसार हैं।

1. कोशिका भित्ति द्वारा
2. कोशिका भित्ति पर मौजूद एंजाइम द्वारा प्रभाव
3. जीन द्वारा प्रभाव

1. कोशिका भित्ति द्वारा

इन्सुलिन हॉर्मोन कोशिका भित्ति पर अपना प्रभाव दिखाता है। यह हॉर्मोन रक्त में से ग्लूकोस को कोशिका के अन्दर जाने की प्रक्रिया में वृद्धि कर देता है। जब इन्सुलिन अपने अभिग्राहक से चिपकता है तब वह कोशिका भित्ति की पारगम्यता को बदल देता है। अधिवृक्क रस या एड्रेनैलिन चिकनी मांसपेशियों पर कार्य दर्शाता है। वह आयन के द्वार को सोडियम या पोटैशियम या दोनों के लिए बंद और चालू कर देता है।

2. कोशिका भित्ति पर मौजूद एंजाइम द्वारा प्रभाव

एंजाइम यह द्वितीय सन्देश वाहक है। ज्यादातर पेप्टायड हॉर्मोन जब अपने कोशिका भित्ति पर मौजूद अभिग्राहक से चिपक जाते हैं तो वह कोशिका के अन्दर प्रवेश नहीं कर पाते हैं। यह हॉर्मोन एंजाइम के द्वारा अपना कार्य पूर्ण करते हैं। एंजाइम 'इ' निकालने के बाद अनुक्रम में प्रतिक्रिया को शुरू कर देते हैं। ज्यादातर मामलों में साइक्लिक ए एम पी (ऐडनोसिन मोनो फॉस्फेट) द्वितीय सन्देश वाहक होते हैं और दूसरे हॉर्मोन जो साइक्लिक ए एम पी (ऐडनोसिन मोनो फॉस्फेट) को द्वितीय सन्देश वाहक के तौर पर उपयोग करते हैं उनमें ADH (Anti Diuretic Hormon), ACTH (Adrenocortocotrophic Hormon), ग्लुकागोंन, LH (Leutenizing Hormon) और FSH (Follicle Stimulating Hormon) का समावेश हैं।

3. जीन द्वारा प्रभाव

स्टेरॉयड हॉर्मोन (सेक्स हॉर्मोन) कोशिका भित्ति को पार करके कोशिका के अन्दर

कोशिकाद्रव्य में मौजूद प्रोटीन अभिग्राहक से चिपक जाते हैं। यह हॉर्मोन+अभिग्राहक का समूह फिर कोशिका केन्द्रक में प्रवेश करके गुणसूत्र पर सीधे अपना प्रभाव दिखाता है। गुणसूत्र में विशेष जीन को शुरू करके अनुवांशिक जानकारी के डीएनए से आरएनए में जाने को प्रोत्साहित करता हैं जिसे ट्रांसक्रिप्शन कहते हैं। इस प्रक्रिया से जो सन्देशवाही आरएनए (मैसेंजर आरएनए) बनते हैं वे कोशिकाद्रव्य में जाकर प्रोटीन बनाते हैं जैसे कोई एंजाइम और यही एंजाइम फिर अपना कार्य करते हैं।

हाइपोथैलेमस और पीयूष ग्रंथि

जैसा की पहले ही बताया गया है कि तंत्रिका तंत्र और हार्मोनी तंत्र समन्वयन दोनों तंत्रों के साथ कार्य करने से होता हैं। इन दोनों तंत्रों के बड़े केंद्र हाइपोथैलेमस और पीयूष ग्रंथि हैं। हाइपोथैलेमस मस्तिष्क के बाकी हिस्सों से और रक्त की नसों से सूचना को एकत्रित करता है। यह सूचनाएं फिर पीयूष ग्रंथि को भेज दी जाती है जो फिर सीधे तौर पर या परोक्ष रूप में दूसरे अंत:स्त्रावी ग्रंथियों को नियंत्रण करता है।

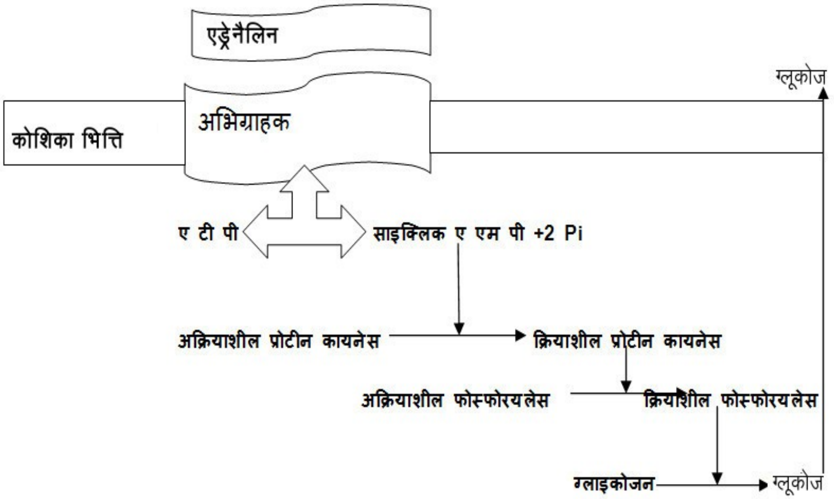

चित्र 3 : यकृत की कोशिका में एड्रेनैलिन के द्वारा ग्लाइकोजन काग्लूकोस में परिवर्तन होना और निकलना

हाइपोथैलेमस कई सारे निर्गमन कारक (रिलीज फैक्टर) का स्त्राव करता है। जैसे कि संवृद्धी हॉर्मोन रिलीज फैक्टर, संवृद्धी हॉर्मोन रिलीज–अवरोध फैक्टर, प्रोलेक्टिंग रिलीज फैक्टर, प्रोलेक्टिंग अवरोध फैक्टर, थायरोट्रॉपिन रिलीज फैक्टर, अधिवृक्क हॉर्मोन रिलीज फैक्टर इनके प्रभाव में पीयूष ग्रंथि (एंटीरियर) हॉर्मोन का स्त्राव करता हैं और वो हॉर्मोन अपने विशिष्ट साईट पर अपना कार्य करते हैं।

➤ वैज्ञानिक सी
विज्ञान प्रसार, ए–50
सेक्टर 62, संस्थागत क्षेत्र
नोएडा–201309

मानव रोग

■ सनोज कुमार

अंग्रेजी शब्द डिजीज (DIS–EASE) का अर्थ है, अ–सुविधा, अर्थात स्वास्थ्य में बाधा अथवा अस्वस्थ होना अथवा रोग से पीड़ित होना। मानव जीवन एवं रोगों का एक अनचाहा संबंध है। प्रत्येक मनुष्य की इच्छा होती है कि वह निरोगी हो। परन्तु सिर्फ इच्छा रखने मात्र से ही हम रोगों से दूर नहीं हो जाते। बदलते हुए वातावरण तथा जीवन शैली के परिणाम स्वरुप मनुष्य न चाहते हुए भी जटिल कष्टकारी रोगों से जकड़ जाता है। कभी–कभी उचित उपचार के अभाव में रोग जानलेवा हो जाता है।

मानव रोगों का वर्गीकरण

जन्मजात रोग (Congenital diseases)
हीमोफिलिया, थेलेसीमिया आदि अनुवांशिक बीमारियाँ

अर्जित रोग (Acquired diseases)

संचरणीय रोग (Communicable diseases)

असंचरणीय रोग (Noncommunicable diseases)
मधुमेह, कैंसर, एलर्जी, पोषक तत्वों की कमी की वजह से होने वाले रोग

प्रत्यक्ष संचरणीय रोग (Direct transmission)
चेचक, गोनोरिया, क्षय रोग, काली खांसी, रेबीज़, इंफ्लुएंजा इत्यादि।

अप्रत्यक्ष संचरणीय रोग (Indirect transmission)
हैजा, मलेरिया, टाइफाइड, पोलियो, टाइफस, अमीबी पेचिश, डेंगू, फाइलेरिया इत्यादि।

जन्मजात रोग (Congenital diseases) – रोग, जो नवजात शिशु में जन्म के समय से ही विद्यमान होते हैं, जन्मजात रोग कहलाते हैं। आनुवांशिक विकार (Genetic disorder), हॉर्मोन का असंतुलन, शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली (Immune system) का सही तरीके से काम नहीं करना, कुछ ऐसे कारक हैं जो मनुष्य के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं और थेलेसीमिया, हीमोफिलिया, मधुमेह (diabetes), एलर्जी तथा मोटापा (Obesity) जैसी बीमारियों को जन्म देते हैं। थेलेसीमिया एक अनुवांशिक रोग है जो α और β ग्लोबिन श्रृंखलाओं में दोष के कारण होता है जिसमें शरीर में हीमोग्लोबिन की मात्रा कम हो जाती है। पीड़ित व्यक्ति को निश्चित समयांतराल में रक्त चढ़वाना पड़ता है। सिकल सेल रक्ताल्पता (sickle cell anemia) भी हीमोग्लोबिन से संबंधित बीमारी है, इससे पीड़ित व्यक्ति के रक्त में उपस्थित लाल रक्त कणिकाओं का आकार असामान्य और हसिया (sickle) की तरह होता है। ऐसी लाल रक्त कणिकाएं क्षण भंगुर होती हैं और आसानी से विखंडित हो जाती हैं जिससे शरीर में हीमोग्लोबिन की कमी हो जाती है। ऐसे रोगी मलेरिया के लिए प्रतिरोधी होते हैं क्योंकि ऐसी रक्त कणिकाओं में मलेरिया परजीवी का जीवन चक्र (Life Cycle) बाधित हो जाता है। हीमोफिलिया एक आनुवांशिक (hereditary) बीमारी है जो आमतौर पर पुरुषों को होती है और महिलाएं इसकी वाहक होती हैं। हीमोफिलिया से पीड़ित रोगी में रक्त प्रोटीन यथा फैक्टर आठ / फैक्टर नौ (क्लोटिंग फैक्टर) की अनुपस्थिति होने के कारण खरोंच लगने मात्र से रक्त बहने लगता है और थक्का नहीं जमने से रक्त का बहाव लगातार होता है जिससे रोगी की मृत्यु भी हो सकती है। ऐसे रोगियों को रक्त प्रोटीन के इंजेक्शन देने पड़ते हैं।

अर्जित रोग (Acquired diseases) – रोग या विकार, जो जन्मजात नहीं होते लेकिन विभिन्न कारणों और कारकों की वजह से हो जाते हैं, अर्जित रोग कहलाते हैं। हमारे आसपास हजारों ऐसे रोगाणु (pathogen) विद्यमान हैं जो हमारे शरीर की प्रतिरोधक क्षमता (Immunity) के कमजोर होते ही उस पर आक्रमण कर, रोग उत्पन्न कर देते हैं। ऐसे रोगाणु भोजन, पानी, वायु और त्वचा के माध्यम से मानव शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और शरीर के विभिन्न कोशिकाओं, ऊतकों, अंगों को प्रभावित करते हैं जिसके कारण वे सभी अपना सामान्य रूप से कार्य सम्पादित नहीं करते जिससे शारीरिक स्वास्थ्य प्रभावित होता है। कुछ रोगाणु शरीर में दीर्घ कालिक रोग उत्पन्न करते हैं जैसे क्षय रोग (Tuberculosis), एड्स और लीवर किडनी से सम्बंधित बीमारियाँ। बहुत से रोग भोजन, पानी और वायु के द्वारा रोगी

व्यक्ति से स्वस्थ व्यक्ति में फैल जाते हैं जिन्हें संक्रामक रोग (Communicable diseases) कहते हैं, जैसे मौसमी बुखार, हैजा, क्षय रोग, स्माल पॉक्स, चिकन पॉक्स, पोलियो इत्यादि। संक्रामक रोगों का कारण जीवाणु (Bacteria), विषाणु(Virus), प्रोटोजुआ, जैसे– सूक्ष्म जीव (Microorganisms) तथा कृमि (worm) होते हैं जो विभिन्न माध्यमों द्वारा मानव शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं, अनेक प्रकार की बीमारियों को जन्म देते हैं। सूक्ष्मजीवीय जनित कुछ रोग सीधे संपर्क अथवा श्वास द्वारा संक्रमित व्यक्ति से स्वस्थ व्यक्ति तक फैलते हैं, जिन्हें प्रत्यक्ष संचरणीय रोग (Direct transmitted diseases) कहते हैं। उदाहरण के तौर पर क्षय रोग (टी.बी.), चेचक, काली खांसी (whooping cough), इन्फ्लूएंजा आदि। कुछ सूक्ष्मजीवीय जनित रोग वाहको (वेक्टर) के द्वारा रोगी से स्वस्थ मनुष्य में फैलते हैं जिन्हें अप्रत्यक्ष संचरणीय रोग(Indirect transmitted diseases) कहते हैं जैसे मलेरिया, हैजा, पोलियो, डेंगू , काला अजार, टाइफस, अफ्रीकन निद्रा रोग इत्यादि।

विषाणुओं (Viruses) **से होने वाले रोग –** विषाणुओं द्वारा जनित रोगों में एड्स (AIDS), हेपेटाइटिस, पोलियो, रेबीज प्रमुख हैं। एड्स नामक बीमारी एच.आई.वी. (Humanimmunedeficiency virus) द्वारा जनित है। एच.आई.वी. मनुष्य की बीमारियों से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता को नष्ट कर देता है जिससे वह मनुष्य अन्य बीमारियों से ग्रसित हो जाता है। पोलियो विषाणु पाँच वर्ष तक के बच्चों में पोलियो नाम की गंभीर बीमारी का वाहक है। जिसके कारण बच्चे पक्षाघात और अपंगता के शिकार हो जाते हैं।

विषाणु जनित रोग

रोग	रोगाणु	संचरण के तरीके
चिकन पॉक्स	वैरीसेला वायरस	वायु /सीधे संपर्क द्वारा
स्माल पॉक्स	वायरोला मेजर और वायरोला माइनर	वायु /सीधे संपर्क द्वारा
खसरा(मीजल्स)	रुबोला वायरस	वायु
पोलियो	पोलियो वायरस	दूषित भोजन एवं जल
रेबीज	रेबीज वायरस	रेबीज संक्रमित कुत्ते के काटने पर
हैपेटाइटिस	हैपेटाइटिस 'बी' वायरस	दूषित जल
डेंगू	डेंगू वायरस	एडीज एज्प्टी मच्छर के काटने पर
एड्स	एच. आई. वी.	दूषित रक्ताधान एवं असुरक्षित यौन संबंध

जीवाणुओं (Bacteria) **से होने वाले रोग –** क्षय रोग (टी.बी.) एक घातक रोग है। जीवाणु माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरक्लोसिस इस रोग का कारण है। यह आमतौर पर फेफड़ों को प्रभावित करता है। टी.बी. हवा द्वारा, छींक, खांसी और कफ के माध्यम से फैलता है। टाइफाइड, जीवाणु साल्मोनेला टाइफी की वजह से होने वाला एक गंभीर रोग है। जिसमें यह जीवाणु पाचन तंत्र को प्रभावित करता है। यह रोग ज्यादातर उन क्षेत्रों में पाए जाते हैं जहाँ स्वच्छता की कमी पाई जाती है। संक्रमण (Infection) के दो से तीन हफ्ते के भीतर रोगी को निरंतर खांसी, गंभीर पेट दर्द, तेज सिरदर्द और धीमी हृदय गति जैसे लक्षण दिखाई दे सकते हैं। टाइफस रोग रिकेट्सिया नामक जीवाणु से होने वाला रोग है। यह जीवाणु पिस्सू, जूं, किलनी आदि वाहकों के द्वारा फैलता है। डिप्थीरिया, कोर्नीबैक्टीरियम डिपथीरी द्वारा गले, नाक और त्वचा में होने वाला संक्रमण है। डिप्थीरिया एक संक्रमित व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में हवा द्वारा या संक्रमित व्यक्ति के घावों के स्राव द्वारा फैलता है। लेप्रोसी (कुष्ठ रोग) एक जीर्ण रोग (क्रोनिक डिजीज) है जो माइकोबैक्टिरियम लेप्राई नामक जीवाणु के कारण होता है।

सामान्यत: त्वचा पर पाये जाने वाले पीले या ताम्र रंग के धब्बे जो सुन्न हों या रंग में परिवर्तन दिखाई दे, तो यह कुष्ठ रोग के लक्षण हो सकते हैं। काली खांसी एक बेहद संक्रामक और घातक संक्रमण है। यह बोर्डेटेला पर्टूसिस नामक जीवाणु द्वारा होता है। यह छोटे बच्चों में आम तौर पर पाया जाता है। इसके शुरुआती लक्षण सामान्य सर्दी जुखाम जैसे ही होते हैं। संक्रमण के दो हफ्ते बाद ही इसके लक्षण दिखाई देते हैं जिसमे खांसी की एक विशेष आवाज होती है जिसे 'वूफिंग साउंड' कहते हैं। इसमें रोगी को तीव्र खांसी देर तक आती है। जिससे साँस लेने में तकलीफ होती है।

जीवाणु जनित रोग

रोग	**रोगाणु**	**संचरण के तरीके**
ट्यूबरक्लोसिस (टी.बी.)	माइकोबैक्टिरियम ट्यूबरक्लोसिस	वायु /सीधे संपर्क द्वारा
टाइफाइड	साल्मोनेला टाइफी	दूषित भोजन एवं जल
हैजा (कॉलरा)	विब्रिओ कॉलरी	दूषित भोजन एवं जल
डिफ्थीरिया	कोर्नी बैक्टीरियम डिपथीरी	वायु /सीधे संपर्क द्वारा
लेप्रोसी(कुष्ठ रोग)	माइकोबैक्टिरियम लेप्राई	संक्रमित व्यक्ति के संपर्क द्वारा
काली खांसी(वूफिंग कफ)	बोर्डेटेला पर्टूसिस	वायु /सीधे संपर्क द्वारा

प्रोटोजुआ (Protozoan) **से होने वाले रोग –** प्लास्मोडियम वीवेक्स और प्लास्मोडियम मलेरी जैसे प्रोटोजुआ मनुष्य में मलेरिया बुखार फैलाते हैं। ट्रिपैनोसोमा एक प्रोटोजुआ परजीवी है जो निद्रा रोग उत्पन्न करता है। सिरदर्द, कमजोरी, नींद जैसे लक्षण दिखने लगते हैं। एन्टअमीबा हिस्टोलिटिका अमीबिक डिसेंट्री अथवा पेचिश रोग फैलता है। लिशमानिया नामक प्रोटोजुआ काला अजार नाम की बीमारी का प्रमुख कारण है।

प्रोटोजुआ जनित रोग

रोग	**रोगाणु**	**संचरण के तरीके**
मलेरिया ज्वर	प्लास्मोडियम	एनोफिलीज मादा मच्छर
अमीबिक डिसेन्ट्री	एन्टअमीबा हिस्टोलिटिका	दूषित भोजन एवं जल
लिश्मनिअसिस(काला अजार)	लिशमानिया	सैंड फ्लाई के काटने पर
ट्रिपैनोसोमियासिस(अफ्रीकन स्लीपिंग सिकनेस)	ट्रिपैनोसोमा ब्रुसी	सी–सी फ्लाई के काटने पर

कृमियों (Helminths) **द्वारा जनित रोग –** फाइलेरिया रोग वाउचेरिया बैन्क्रोफ्टाई नामक कृमि के संक्रमण से होता है। यह कृमि लसिका तंत्र को प्रभावित करता है जिससे हाथ पैरों में सूजन आ जाती है इसलिए इस बीमारी को हाथी पांव भी कहते हैं। इस बीमारी का वाहक एडीज और क्यूलेक्स मच्छर है। एस्कारियासिस, एस्केरिस लम्ब्रीकोइड्स परजीवी के कारण होने वाली बीमारी है। इस बीमारी से बच्चे अधिक प्रभावित होते हैं। एस्केरिस का संक्रमण दूषित भोजन या पेय से होता है। कृमि जैसे लीवर फ्लूक (फैसिओला हिपैटिका), इकाईनोकोकस ग्रानुलोसस, हुक वर्म आदि बच्चों तथा प्रौढ़ में बीमारियाँ फैलाते है। मस्तिष्क, फेफड़ो, लीवर, आंत्र ,प्लीहा आदि को नुकसान पहुँचाते है।

कृमियों द्वारा जनित रोग

रोग	रोगाणु	संचरण के तरीके
फाइलेरिया (हाथी पांव)	वाउचेरिया बैन्क्रोफ्टाई	एडीज और क्यूलेक्स मच्छर
एस्केरिअसिस	एस्केरिस लम्ब्रीकोइड्स	दूषित भोजन एवं जल
इकाईनोकोकस	इकाईनोकोकस ग्रेनुलोसस	दूषित भोजन एवं जल

यौन संचारित रोग (Sexually Transmitted Diseases) **–** कुछ रोग यौन अंगो, मलाशय के श्लेष्मा झिल्ली एवं स्राव के द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे मनुष्य में संचारित होते हैं जिन्हें यौन संचारित रोग कहा जाता है। जैसे एड्स, सिफिलिस, गोनोरिया इत्यादि।

एड्स नामक बीमारी का कारण एच.आई.वी. विषाणु है जो कि शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली पर आक्रमण कर कमजोर कर देता है जिससे मनुष्य में अन्य रोगों से लड़ने की क्षमता कम हो जाती है और वह अन्य रोगों से ग्रसित हो जाता है। मरीज में कभी – कभी लिम्फनोड्स में हल्की सूजन, लंबे समय तक चलने वाला बुखार, डायरिया या अन्य गैर– विशिष्ट लक्षण दिखाई देते हैं। प्रतिरक्षा प्रणाली के कमजोर होने अथवा नष्ट हो जाने के कारण वह व्यक्ति दूसरे रोगों से छुटकारा नहीं पा सकता है। अंततः उसकी मृत्यु हो जाती है। अभी तक एड्स का कारगर उपचार संभव नहीं हो पाया है किन्तु इसकी रोकथाम के लिए एंटी रेट्रोवायरल उपचार किया जाता है। एच.आई.वी. के विरुद्ध प्रभावकारी वैक्सीन तैयार नहीं हो सकी है जिसकी वजह विषाणु की संरचना का अत्यधिक परिवर्तनशील (highly mutant) होना है।

सिफलिस – एक यौन संक्रमित बीमारी है, जो बैक्टीरियाट्रेपोनेमा पैलिडम द्वारा फैलता है। इसके संक्रमण का मूल माध्यम यौन संपर्क है। गर्भावस्था या जन्म के समय यह रोग माँ से बच्चे अथवा गर्भ में पल रहे बच्चे में भी संक्रमित हो सकता है।

गोनोरिया (सुजाक) – एक यौन संक्रमित बीमारी है। यह रोग नीसेरिया गानोरिआ नामक जीवाणु के कारण होता है जो महिलाओं तथा पुरुषों के प्रजनन मार्ग में संक्रमण फैलाता है। इसके जीवाणु मुंह, गला, आंख तथा गुदा तथा लैंगिक अंगो में संक्रमण करते हैं।

असंचरणीय रोग (Non–communicable diseases) **–** कुछ रोग संक्रामक कारणों द्वारा नहीं फैलते अपितु उनके कारक कुछ और होते हैं। इसलिए ऐसे रोगों को **असंचरणीय रोग** कहते हैं। ये रोग मनुष्य के शरीर में कुछ अंगों या अंग प्रणाली के सही तरीके से काम नहीं करने की वजह से होते हैं। इनमे से कई रोग पोषक तत्वों, खनिजों, हॉर्मोन तथा विटामिनों की कमी से भी होते हैं, जैसे– ऑस्टियोपोरोसिस, स्कर्वी, कंठमाला, रिकेट्स, कैंसर, एलर्जी, मधुमेह इत्यादि।

असंचरणीय रोग

रोग	**कारण/लक्षण**
मधुमेह (Diabetes)	अग्न्याशय से इन्सुलिन हॉर्मोन का स्राव कम हो जाता है जिसके कारण रक्त में ग्लूकोस की मात्रा बढ़ जाती है।
ऑस्टियोपोरोसिस	ऑस्टियोपोरोसिस में अस्थि खनिज घनत्व (BMD) कम हो जाता है, अस्थि सूक्ष्म–संरचना विघटित होती है और हड्डियाँ कमजोर हो जाती हैं।
कैंसर	यह रोग कोशिकाओं के अनियंत्रित विकास और विभाजन के कारण होता है। शरीर के किसी खास हिस्से में असामान्य और लगातार कोशिका विभाजन होने से ट्यूमर का निर्माण हो जाता है।
कंठमाला (Goitre)	आयोडीन की कमी से होने वाला रोग है जिसमे थाइराइड ग्रंथि का आकार बढ़ जाता है। थाइराइड हॉर्मोन का स्राव कम हो जाता है।
एलर्जी	शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली द्वारा बाह्य कारको के प्रति अस्वाभाविक प्रतिक्रिया को एलर्जी कहते है। बाह्य कारक जैसे धूलकण, परागकण आदि।

मानव शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली (Human Immune System) – मानव शरीर अनेक अंग तंत्रों की समन्वय कार्य प्रणाली पर आधारित है। उनमें से एक प्रतिरक्षा प्रणाली (immune system) है जो कि शरीर की बाह्य रोगकारी सूक्ष्म जीवों से रक्षा करती है। जब रोगाणु पहली बार शरीर पर हमला करता है तब प्रतिरक्षा तंत्र उसके विरुद्ध कार्यवाही करता है और उसके प्रति प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न कर लेता है। जब कभी वही रोगाणु अथवा उसी तरह का अन्य रोगाणु शरीर में संक्रमण करता है तब प्रतिरक्षा तंत्र उसे जल्दी नष्ट कर देता है। इस प्रकार पहले संक्रमण की अपेक्षा दूसरा संक्रमण शीघ्र समाप्त हो जाता है। इसी को ध्यान में रखते हुए टीकाकरण (vaccination) की शुरुआत की गयी है।

प्रतिरक्षा प्रणाली के दो घटक होते हैं,

1. सहज प्रतिरक्षा प्रणाली (Innate immune system)
2. अनुकूली प्रतिरक्षा प्रणाली (Adoptive immune system)

सहज प्रतिरक्षा प्रणाली (Innate immune system) – इस तंत्र में कई तरह के सुरक्षा घटक होते हैं। त्वचा (उपकला परत) जीवाणुओं को शरीर में प्रविष्ट होने से रोकती है। कई तरह की कोशिकाएं जैसे कि फैगोसाईटिक कोशिकाएं, डेनड्राईटिक कोशिका, नेचुरल किलर कोशिका आदि शरीर में प्रविष्ट होने वाले रोगाणुओं को खत्म करने का प्रयास करती हैं।

अनुकूली प्रतिरक्षा प्रणाली (Adoptive immune system) – जब रोगाणु सहज प्रतिरक्षा प्रणाली को चकमा देकर शरीर के अन्दर प्रविष्ट हो जाते हैं तब इस प्रणाली की घटक कोशिकाएं सक्रिय हो जाती हैं और रोगाणुओं को नष्ट करती हैं। बी लिम्फोसाइट कोशिका जीवाणुओं के संक्रमण के खिलाफ काम करती है। बी लिम्फोसाइट कोशिका सक्रिय होकर प्रतिजन के विरूद्ध एंटीबाडी का स्राव करती है जो रोगाणुओं को नष्ट कर देते हैं। जबकि टी लिम्फोसाइट कोशिका विषाणुओं के द्वारा संक्रमित कोशिकाओं को नष्ट करती है।

एंटीबाडी (Antibody) – एंटीबॉडी शरीर में प्रविष्ट बाह्य प्रतिजन को बेअसर करने लिए लिए प्लाविका कोशिका अथवा जीवद्रव्य कोशिकाओं (प्लाज्मा सेल) द्वारा स्रावित एक विशेष प्रकार की प्रोटीन है। इसे इम्युनोग्लोबुलिन भी कहते हैं। प्लाविका कोशिका बी लिम्फोसाइट का सक्रिय रूप है जो कि किसी विशेष प्रतिजन (Antigen) के विरुद्ध एंटीबाडी का स्राव करती है। कभी–कभी किसी विशेष रोगाणु के विरुद्ध स्रावित एंटीबाडी को उसी रोगाणु से पीड़ित अन्य रोगियों के शरीर में सुई के द्वारा प्रविष्ट कराया जाता है जो उनके प्रतिरक्षा प्रणाली को उस रोगाणु के विरुद्ध सक्रिय नहीं करती है बल्कि स्वयं रोगाणु को नष्ट कर देती है। इस प्रक्रिया को निष्क्रिय टीकाकरण कहते हैं।

उपचार (Treatment) – विभिन्न प्रकार के रोगों के उपचार की विधियाँ अलग–अलग होती हैं। किसी रोग को समाप्त करने के लिए रोग कारक को नष्ट करना होता है। जीवाणु द्वारा उत्पन्न बीमारियों को समाप्त करने के लिए एंटीबैक्टीरियल और एंटीबायोटिक दवाओं का प्रयोग किया जाता है। एंटीबायोटिक, जीवाणुओं की विभिन्न जैव प्रक्रियाओं को बाधित कर उनके वृद्धि को रोक देती है अथवा उनको मार देती है। विषाणुओं पर एंटीबायोटिक प्रभावहीन होती है क्योंकि विषाणुओं की जैव प्रक्रियाएं जीवाणु से अलग होती हैं। विषाणु जीवित कोशिकाओं की जैव प्रक्रियाओं का अपने लिए उपयोग करता है इसलिए इन पर एंटीबायोटिक का कोई असर नहीं होता है। विषाणुओं द्वारा उत्पन्न रोगों को समाप्त करने के लिए एंटीवायरल दवाओं का

प्रयोग किया जाता है। कृमिओं द्वारा जनित रोगों में एल्बेंडाजोल या मेबेंडाजोल का प्रयोग किया जाता है। विशेष प्रोटोजुआ द्वारा उत्पन्न रोगों के इलाज के लिए विशेष एंटीप्रोटोज़ोअल दवाइयों का प्रयोग किया जाता है।

रोगों के उपचार से बेहतर इनसे बचाव है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए खान–पान में, अपनी तथा अपने आसपास की स्वच्छता पर विशेष ध्यान देना चाहिए ताकि रोग कारक एवं उनके वाहक पनप न सकें। खासकर बच्चों में टीकाकरण द्वारा बहुत से रोगों की रोकथाम की जा सकती है।

टीकाकरण (Vaccination) – सर्वप्रथम अंग्रेज़ चिकित्सक एडवर्ड जेनर ने सन् 1798 में चेचक के विरुद्ध टीका (वैक्सीन) तैयार करने में सफलता प्राप्त की थी। रोगाणु को मारकर, अथवा उसके किसी भाग अथवा उसके द्वारा उत्पन्न पदार्थ, को शरीर में प्रविष्ट करा कर प्रतिरक्षा प्रणाली को उस रोगाणु के विरुद्ध सक्रिय किया जाता है। इसी प्रक्रिया को टीकाकरण कहते है और प्रविष्ट की गयी वस्तु को वैक्सीन कहा जाता है। आजकल बच्चों को बहुत सी बीमारियों से बचाने के लिए वैक्सीन उपलब्ध हैं, जैसे कि पोलियो, चिकन पॉक्स, काली खांसी, डिप्थीरिया, हेपेटाइटिस बी आदि।

➢ स्नातकोत्तर शिक्षक
बायोटेक्नोलॉजी
केन्द्रीय विद्यालय क्र. 2
नेवीनगर, कुलाबा
मुंबई–400005
ई–मेल : sanojksachan@gmail.com

ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर

■ पूनम त्रिखा

दैनिक जीवन में कम्प्यूटर का उपयोग करते समय हम बहुत सारे सॉफ्टवेयर का उपयोग करते हैं। इन सॉफ्टवेयर की उपयोगिता भी अलग–अलग होती है। जैसे कि इंटरनेट का उपयोग करने के लिए तरह–तरह के ब्राउजर सॉफ्टवेयर, टाइप करने के लिए वर्ड सॉफ्टवेयर, प्रेजेन्टेशन के लिए पॉवरपॉइंट, ग्राफिक डिजाइन करने के लिए एडोब इनडिजाइन, पेजमेकर सॉफ्टवेयर होते हैं। इन सभी सॉफ्टवेयर को चलाने के लिए भी हमें ऑपरेटिंग सिस्टम सॉफ्टवेयर की जरूरत होती हैं। इन सब कार्यों के लिए लाइसेंस सॉफ्टवेयर लेने होते हैं और उनके लिए धन की भी आवश्यकता होती है। इसी समस्या का समाधान कुछ हद तक ओपन सोर्स अर्थात् मुक्त–स्रोत सॉफ्टवेयर कर रहे हैं।

क्या है ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर ?

ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर से अर्थ है किसी भी कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर का उसके डेवलपर जिसने उस सॉफ्टवेयर का निर्माण किया है उसके सोर्स कोड को एक लाइसेंस के साथ सार्वजनिक तौर पर सभी को उस सॉफ्टवेयर को पढ़ने उसमें सुधार करने और किसी को भी किसी भी उद्देश्य के लिए उपलब्ध करवाने के अधिकार दे देता है। ओपेन सोर्स सॉफ्टवेयर से ऑफिस में होने वाले सारे कार्य करना, लिखना, इन्टरनेट पर जाना, तरह–तरह के प्रेजेन्टेशन बनाना, गाने सुनना, डीवीडी देखना, ब्लॉग या वेबसाइट बनाना, या और कुछ जो कि हम सब करना चाहते है, कर सकते है। ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर का उपयोग पुस्तकालयों, सरकारी कार्यालयों, व्यावसायिक स्तर पर या खुद के लिए भी कर सकते हैं।

इससे पहले कि हम ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर के बारे में और चर्चा करें, हमारे लिए यह बेहतर होगा कि पहले हम सोर्स कोड के बारे में थोड़ा जान लें।

सोर्स कोड

सॉफ्टवेयर के क्षेत्र में आमतौर पर दो तरह के कोड्स की चर्चा होती है– सोर्स कोड और ऑब्जेक्ट कोड। जब किसी प्रोग्रामिंग लैंग्वेज जैसे– सी, सी++, जावा आदि में कोई प्रोग्राम लिखा जाता है तो वह प्रोग्राम इंस्ट्रक्शंस (कम्प्यूटर को दिए जाने वाले कंमाड) का समूह

होता है, जो विशेष प्रकार के काम करने के लिए लिखा जाता है। प्रोग्राम इंस्ट्रक्शंस एक तरह से कम्प्यूटर की भाषा (प्रोग्रामिंग लैंग्वेज) में लिखा गया कोड ही होता है। इन्हीं कोड्स को सोर्स कोड कहा जाता है, लेकिन कम्प्यूटर इन सोर्स कोड को (जो डेवलपर द्वारा विभिन्न प्रोग्रामिंग लैंग्वेजों में लिखा जाता है) समझ नहीं सकता है। उस सोर्स कोड को हम और आप पढ़ और समझ सकते हैं। अब कम्प्यूटर उस सोर्स कोड में लिखे इंस्ट्रक्शंस को समझ सके, इसलिए कम्पाइलर (एक विशेष प्रकार का सॉफ्टवेयर) की सहायता से सोर्स कोड को ऑब्जेक्ट कोड में परिवर्तित किया जाता है। यह ऑब्जेक्ट कोड बाइट्स सिक्वेंस अर्थात् शून्य(0) और एक (1) के रूप में लिखा होता है, जो मनुष्य द्वारा नहीं पढ़ा जा सकता है।

कैसे अलग है ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर दूसरे सॉफ्टवेयर से ?

आमतौर पर जब कोई सॉफ्टवेयर बनाया जाता है और उसे लॉन्च किया जाता है तो उस सॉफ्टवेयर के साथ उसका सोर्स कोड नहीं दिया जाता है। सोर्स कोड सॉफ्टवेयर बनाने वाले के पास ही रहता है। एक उपयोगकर्ता के रूप में आप उस सॉफ्टवेयर के फंक्शंस और फीचर्स का उपयोग कर सकते हैं। आप यदि उस सॉफ्टवेयर में अपनी आवश्यकतानुसार कोई परिवर्तन करना चाहें तो ऐसा नहीं कर सकते, क्योंकि उसके सोर्स कोड (source code) तक आपकी पहुंच नहीं होती है। हर सॉफ्टवेयर बनाने वाली कंपनी अपने सॉफ्टवेयर की आंतरिक संरचना, कोड्स आदि को अपने पास रखती है। सॉफ्टवेयर से संबंधित सभी अपग्रेड्स और डेवलपमेंट्स डेवलपर के द्वारा ही किए जा सकते हैं अर्थात् सारे अधिकार सॉफ्टवेयर बनाने वाली कंपनी के पास ही रहते हैं। ऐसे सॉफ्टवेयर प्रोप्राइट्री सॉफ्टवेयर (proprietary software) कहलाते हैं। जैसे कि माइक्रोसाफ्ट कंपनी का माइक्रोसाफ्ट ऑफिस और एडोब का फोटोशॉप। ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर से काम करना उतना ही सरल है जितना कि प्रोप्राइट्री सॉफ्टवेयर से कर सकते हैं।

जबकि ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर के लेखक अपना सोर्स कोड सभी के लिए उपलब्ध कराते हैं। कोई भी सोर्स कोड को देख सकता है, कॉपी कर सकता है और उसमें परिवर्तन कर सकता है। जैसे कि लाइबर ऑफिस जो एम.एस.ऑफिस की तरह कार्य करता है और गिम्प (जी.आई.एम.पी) इमेज एडीटर।

कितने महत्वपूर्ण है ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर?

ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर का केवल मुफ्त/फ्री होना ही नहीं बल्कि ऐसे कई कारण है जिनकी वजह से ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर को अपनाने वालों की संख्या बढ़ी है। आज अधिकतर संस्थान वो चाहे सरकारी, अर्द्ध–सरकारी, शैक्षणिक संस्थान या फिर निजी संस्थान हो, सभी ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर का उपयोग कर रहे है। उदाहरण के तौर पर, भारत सरकार की कई वेबसाइट जैसे कि इलेक्ट्रॉनिकी और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय (http://meity.gov.in), अतुल्य!भारत, पर्यटन मंत्रालय (http://incredibleindia.org), मेरी सरकार (https://www.mygov.in), डिजिटल इंडिया (http://digitalindia.gov.in) ध्रुपल, पी.एच.पी. जैसे ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर के साथ अन्य सॉफ्टवेयर का उपयोग करते हुए बनी है।

ऐसे ही कुछ कारण है जिनके कारण ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर काफी महत्वपूर्ण है –

- **सुरक्षा** – कम्प्यूटर की दुनिया में सूचना की सुरक्षा सबसे बड़ी चुनौती है। सुरक्षा की समस्या तो किसी भी सॉफ्टवेयर में हो सकती है। अगर प्रोप्राइट्री सॉफ्टवेयर में सुरक्षा की दृष्टि से कोई कमी आती है तो सॉफ्टवेयर बनाने वाले पर ही निर्भर करना पड़ता है क्योंकि सॉफ्टवेयर वेंडर ही सॉफ्टवेयर के पैचेच या अपग्रेड देता है जबकि ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर के संबंध में कोई भी कमी दूर कर सकता है तो कमी दूर करने वाले को नियमानुसार सभी के साथ उस कोड को साझा करना होता है।

- **सरल लाइसेंस प्रबंधन –** जब आप खुला स्रोत सॉफ्टवेयर का उपयोग करेगें तो आपको लाइसेंस के बारे में चिंता करने की आवश्यकता नहीं होगी। ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर को कई बार इंस्टाल कर सकते है और किसी भी स्थान से इसका इस्तेमाल कर सकते है। आप इसकी निगरानी, ट्रैकिंग या लाइसेंस के अनुपालन की गिनती से मुक्त हो जाएंगे।

- **उच्च गुणवत्ता वाले सॉफ्टवेयर –** ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर ज्यादातर उच्च गुणवत्ता वाले सॉफ्टवेयर होते हैं। स्रोत कोड उपलब्ध होने के कारण अपनी आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर सकते है और कुछ नया भी जोड़ सकते है। इन कारणों से ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर संगठनों के लिए एक आदर्श विकल्प है।

- **प्रचुर मात्रा में समर्थन –** जब आप ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर का उपयोग करेगें तो पर्याप्त समर्थन भी मिलेगा क्योंकि किसी भी सहायता के लिए आसानी से ऑनलाइन समुदायों के मध्य तक पहुँचा जा सकता है। इसके साथ ही कई सॉफ्टवेयर कंपनियां है जो निःशुल्क ऑनलाइन मदद भी प्रदान करती हैं और अधिकांश संगठन जो ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर बनाते है वो भी समाधान प्रदान करते हैं।
- **खर्च में कमी –** ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर का उपयोग करने से आपके खर्च में भी कमी आ सकती हैं। आप लाइसेंस फीस और रखरखाव शुल्क से बच सकते हैं।
- **सॉफ्टवेयर अनुकूलन –** ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर का उपयोग अधिक स्वतंत्रता देता है और आप प्रभावी ढंग से अपनी आवश्यकतानुसार सॉफ्टवेयर में परिवर्तन कर सकते है।

क्या ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर कॉपीराइट होते है?

सारे फ्री सॉफ्टवेयर, ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर होते हैं जैसे कि गाने सुनने के लिए मीडिया प्लेयर, विडियो देखने के लिए वी.एल.सी. प्लेयर। जो ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर पूरी तरह से फ्री होते है उन्हें फ्री ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर या छोटे में (एफ.ओ.एस.एस) कहा जाता है। फ्री सॉफ्टवेयर जनरल पब्लिक लाइसेंस (जी.पी.एल.) के अन्तर्गत आते हैं। जैसे गिम्प, लिनेक्स, माईएसक्यूल ओपेन सोर्स सॉफ्टवेयर जी.पी.एल. के अन्दर और ओपन ऑफिस कम जनरल पब्लिक लाइसेंस (एल.जी.पी.एल.) के अन्तर्गत आते हैं। लेकिन सभी ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर फ्री नहीं होते हैं। जब भी ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर का चयन करें वो जनरल पब्लिक लाइसेंस वाले सॉफ्टवेयर ही हो।

विभिन्न प्रकार के ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर और उनकी उपयोगिता

अब कुछ लोकप्रिय ओपेन सोर्स सॉफ्टवेयर की चर्चा करते है। इन्हें आप इंटरनेट से निःशुल्क डाउनलोड भी कर सकते हैं। जो कि निम्न हैं–

ऑपरेटिंग सिस्टम		
	लिनेक्स Linux	जैसा कि हम सब जानते है कि ऑपरेटिंग सिस्टम कम्प्यूटर के हार्डवेयर को समंवित करते हुए कम्प्यूटर को चलाता है। लिनेक्स दुनिया में सबसे ज्यादा लोकप्रिय और सुरक्षित ऑपरेटिंग सिस्टम माना जा रहा है। इसमें भी विन्डोज की तरह ग्राफिकल इन्टरफेस होता है जिससे आसानी से काम किया जा सकता है परन्तु दोनों की तकनीक में भिन्नता जरूर है। लिनेक्स को [http://www.Linux.org] से मुफ्त डाउनलोड किया जा सकता हैं।
	युबंटु Ubuntu	युबंटु एक लिनेक्स आधारित ऑपरेटिंग सिस्टम है जो कि फ्री/मुफ्त में उपयोग करने के लिए उपलब्ध है। इसे एक पूरा अर्थात् कम्पलिट ऑपरेटिंग सिस्टम कहा जाता है क्योंकि इस ऑपरेटिंग सिस्टम के साथ ही ऑफिस सूट, ईमेल, ब्राउजर, मीडिया ऐप और कई खेल तरह के सॉफ्टवेयर पहले से ही होते हैं जो युबंटु के इंस्टाल करते ही कम्प्यूटर में आ जाते है। युबंटु को [http://www.ubuntu.com] से मुफ्त डाउनलोड किया जा सकता हैं।
	फिडोरा Fedora	फिडोरा एक लिनिक्स आधारित ऑपरेटिंग सिस्टम है। फिडोरा को [https://getfedora.org/] से मुफ्त डाउनलोड किया जा सकता हैं।
	बॉस–भारत ऑपरेटिंग सिस्टम समाधान (BOSS)	बॉस सी–डैक द्वारा निर्मित एक भारतीय ऑपरेटिंग सिस्टम है जो कि लिनक्स फाउडेंशन से प्रमाणित है और भारतीय डिजिटल वातावरण के अनुरूप ही विकसित है। यह 18 भारतीय भाषाओं का समर्थन करता है। इसके डेस्कटॉप और सर्वर दोनों संस्करण उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त एक शैक्षिक संस्करण इडीयूबॉस (EduBOSS) स्कूलों के लिए विकसित किया गया है। इन सभी संस्करणों को http://www.bosslinux.in से मुफ्त डाउनलोड किया जा सकता हैं।

वेब ब्राउज़र		
	फायरफौक्स Firefox	मौजिला फाउन्डेशन का यह फ्री और ओपेन सोर्स वेब ब्राउजर सॉफ्टवेयर हैं। जिसकी सहायता से इंटरनेट को एक्सेस करते है। यह लिनेक्स आपरेटिंग सिस्टम तथा विन्डोज आपरेटिंग सिस्टम दोनों पर चलता हैं। फायरफौक्स, इन्टरनेट एक्सप्लोरर की तरह वेब ब्राउजर है और दूसरा प्रसिद्ध ब्राउजर है। इसमें आप टैबड ब्राउजिंग अर्थात् हर नए विंडों में एक वेबसाइट खोल सकते हैं। जिस वेबसाइट को भविष्य में उपयोग करना चाहते है उसको बुकमार्क भी कर सकते है। इसके अंदर सर्च इंजन भी निहित है जिससे आप किसी भी टॉपिक पर सर्च कर सकते है। इससे आप प्राइवेट ब्राउजिंग भी कर सकते है अर्थात् आप अपनी वेबसाइट को एक नई प्राइवेट विंडों में खोल सकते है, इस नई प्राइवेट विंडों में आपके सिस्टम का आई पी एडैस इंटरनेट सर्विस देने वाले और नियुक्ता को छोड़ कर कोई नहीं देख सकता है साथ ही टैम्परी फाइल, ब्राउजिंग इतिहास को यह सुरक्षित नहीं रखता है। फायरफौक्स को [https://www.mozilla.org/en-US/firefox/new] से मुफ्त डाउनलोड किया जा सकता हैं।
	गूगल क्रोम Google Chrome	गूगल क्रोम ब्राउजर को गूगल ने 2008 में रिलीज किया था। गूगल क्रोम को सुरक्षा, गति और स्थायित्व के लिहाज से बनाया गया है। क्रोम की गति अन्य ब्राउजर की अपेक्षा अधिक है। गूगल क्रोम का इस्तेमाल करने पर सीधे खाली पेज नहीं खुलता बल्कि उस पेज पर उपयोगकर्ता द्वारा सबसे ज्यादा उपयोग की गई वेबसाइट की छोटे-छोटे चिन्ह पेज पर दिखाता है। इसका प्रमुख फायदा ये होता है कि यूजर अपने मनचाहे पेजों को जल्दी नेविगेट कर सकता है। फायरफौक्स प्राइवेट ब्राउजिंग की तरह इसमें भी इंकॉग्निटो विंडों होती है। गूगल क्रोम को [https://www.google.com/chrome] से मुफ्त डाउनलोड किया जा सकता हैं।

मल्टीमीडिया/ विडियो /आडियो		
	वी.एल.सी. मीडिया प्लेयर [VLC (Video LAN Client) Media player]	विडियो लैन क्लाइंट (वी.एल.सी.) मीडिया प्लेयर एक फ्री और ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर है। यह किसी भी ऑपरेटिंग सिस्टम पर चल सकता है। इससे किसी भी तरह की मल्टीमीडिया फाइल (MPEG–2, MPEG–4, H.264, MKV, WebM, WMV, MP3) या फिर डीवीडी, ऑडियो सीडी, वीसीडी को चला सकते है। इसे [http://www.videolan.org/vlc/] से मुफ्त डाउनलोड किया जा सकता हैं।
	माइरो (Miro)	यह एक ऑडियो, विडियोप्लेयर और इंटरनेट टीवी एपलिकेशन है। माइरो, विंडोज, लिनिक्स जैसे किसी भी ऑपरेटिंग सिस्टम सभी पर चलता है। यह एक फ्री और ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर होने के कारण मुफ्त में इंटरनेट पर उपलब्ध है। माइरो सभी तरह के विडियों फॉर्मेट जैसे [WMV(Windows Media Video), MPEG, AVI(Audio Video Interleave)] का समर्थन करता है। इसे [http://www.getmiro.com/download] से मुफ्त डाउनलोड किया जा सकता हैं।
	ऑडेसिटी Audacity	ऑडेसिटी एक फ्री ओपेन सोर्स, आसानी से उपयोग करने वाला कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर है। इससे डिजिटल ऑडियो रिकार्डिंग और एडीटिंग की जा सकती है। यह विंडोज, लिनिक्स, मैक जैसे किसी भी ऑपरेटिंग सिस्टम पर चलता है। ऑडेसिटी सॉफ्टवेयर को [http://www.audacityteam.org/download] से मुफ्त डाउनलोड किया जा सकता हैं।
	मूवीप्लेयर MPlayer	मूवी प्लेयर एक फ्री और ओपेन मीडिया सॉफ्टवेयर हैं। यह विंडोज, लिनिक्स जैसे किसी भी ऑपरेटिंग सिस्टम पर चलता है। इससे सभी तरह के ऑडियो विडियो फॉर्मेट की फाइलें चला सकते हैं। इससे डीवीडी, ऑडियो सीडी, वीसीडी को भी चला सकते है। मूवी प्लेयर को [http://www. mplayerhq.hu] से डाउनलोड किया जा सकता हैं।

ग्राफ़िक्स / विडियो एडिटिंग टूल्स		
	गिम्प GIMP	फोटो एडीटिंग टूल के रूप में हम सबसे पहले एडोब फोटोशॉप के बारे में ही सोचते है। लेकिन फोटोशॉप सॉफ्टवेयर की कीमत काफी है। एडोब का एक फ्री सॉफ्टवेयर है– फोटोशॉप एक्प्रैस एडीटर, लेकिन इससे केवल जेपीजी फोटो को ही परिवर्तित कर सकते है। इन सबका एक बेहतर स्वतंत्र विकल्प है, खुला स्रोत दुनिया का एक लोकप्रिय सॉफ्टवेयर – गिम्प। यह लिनेक्स एवं विन्डोज दोनों पर ही चलता है। यह एक फोटो एडीटर है जिससे किसी भी तरह की नई फोटो बना व परिवर्तित कर सकते है। गिम्प को [http://www.gimp.org/] से मुफ्त डाउनलोड किया जा सकता हैं।
	पेंट.नेट (Paint .NET)	पेंट.नेट नाम का यह फ्रीवेयर फोटो एडीटिंग सॉफ्टवेयर है। यह थोड़ी कम क्षमता वाला फोटोशॉप जैसा सॉफ्टवेयर है, जिसमें फिल्टर भी हैं तो प्लगइन की सुविधा भी। यदि आपने माइक्रोसॉफ्ट पेंट या फोटोशॉप में काम किया हुआ है तो इसमें काम करना आपके लिए आसान है क्योंकि यह ठीक वैसा ही डिजाइन किया गया है। आधुनिक पेंट प्रोग्रामों की सारी प्रमुख खूबियाँ इसमें है। पर इसके लिए आपके कम्प्यूटर पर डॉट नेट फ्रेमवर्क 2 सॉफ्टवेयर का संस्थापित होना आवश्यक है। विंडोज के पेंट प्रोग्राम की तरह का ही सॉफ्टवेयर है लेकिन उससे अधिक शक्तिशाली है। आपकी फोटो एडीटिंग की समस्या को बहुत हद तक यह मुफ्त का प्रोग्राम हल करने की क्षमता रखता है। यह विंडोज ऑपरेटिंग सिस्टम पर चलता है। पेंट.नेट को [http://www.getpaint.net/] से मुफ्त डाउनलोड किया जा सकता हैं।
	इंकसकेप Inkscape	इंकसकेप एक वेक्टर ग्राफिक्स एडीटर है। यह फ्री ओपेन सोर्स सॉफ्टवेयर है जो दूसरे लांइसेन्स ग्राफिक्स एडीटर जैसे एडोब इलस्ट्रेटर, कोरल ड्रा या जारा एक्स के समान कार्यक्षमता रखता है। यह सॉफ्टवेयर इंकसकेप की अधिकारिक वेबसाइट [https://www.inkscape.org] पर उपलब्ध है।

ऑफिस सूट		
	ओपन ऑफिस (Open Office)	यह माइक्रोसॉफ्ट ऑफिस की तरह का सॉफ्टवेयर है तथा आफिस में कार्य आने वाले सारे कार्य कर सकता है। यह विन्डोज तथा लिनेक्स दोनों पर चलता है। यह कई भाषाओं में उपलब्ध है। इसकी सहायता से वर्ड प्रोसेसिंग, स्प्रेडशीट, प्रजेंटेशन, डाटाबेस से संबंधित काम किए जा सकते हैं। यह माइक्रोसॉफ्ट ऑफिस में बनाये गये अलग–अलग तरह के फॉर्मेट के दस्तावेजों, प्रस्तुतीकरण को भी खोल सकता है तथा उसी फॉर्मेट में वापस सुरक्षित कर सकता है। ओपन ऑफिस को [http://www.OpenOffice.org] से मुफ्त डाउनलोड किया जा सकता हैं।
	लाईबर आफिस (Libre Office)	यह ओपेन आफिस की तरह का सॉफ्टवेयर है। जो लिनिक्स, फिडोरा ऑपरेटिंग सिस्टम पर चलता है। लाईबर आफिस को [http://www.libreoffice.org/download] से मुफ्त डाउनलोड किया जा सकता हैं।
यूटिलिटी/ भाषा / वेब टूल		
	वीनजिप WinZip	वीनजिप फ्री ओपेन सोर्स सॉफ्टवेयर है। इसका उपयोग एक से अधिक फाइलों को एक साथ कहीं भेजने के लिए होता है या जब भी हम इंटरनेट से कोई फाइल को डाउनलोड करते हैं तो वो अधिकतर जिप फोल्डर में ही होती हैं तो उन फाइलों को अनजिप करने के लिए इसका उपयोग होता है। इसे आप एक बैग की तरह समझ सकते हैं जिसमें आप कितना भी सामान डालकर उसे बंद करके इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से किसी को भेज सकते हैं। इसमें सबसे अच्छी बात है कि इनका उपयोग करने से फाइलों का भार कम हो जाता है। इससे फाइल 'जिप' फॉर्मेट में बनती है। वीनजिप को [http://www.winzip.com] से मुफ्त डाउनलोड किया जा सकता हैं।
	वीनरार WinRar	वीनरार फ्री ओपेन सोर्स सॉफ्टवेयर है। इसका उपयोग भी वीनजिप की तरह ही होता है। लेकिन वीनरार, वीनजिप की अपेक्षा फाइलों

		को अधिक कम्प्रैस करता है। इससे फाइल 'रार' और 'जिप'दोनों फॉर्मेट में बनती है। वीनरार को [http://www.win-rar.com] से मुफ्त डाउनलोड किया जा सकता है।
	7 जिप 7Zip	7 जिप भी वीनरार और वीनजिप की तरह का एक यूटीलिटी प्रोग्राम है लेकिन इसकी कम्प्रैसन गति वीनरार और वीनजिप से कहीं अधिक है। इसका उपयोग कर कम्प्रैस हुई फाइलों से अपनी फाइलें अलग कर सकते हैं और अपनी फाइलों को कम्प्रैस भी कर सकते है। इससे फाइल 'जिप' '7 जेड', 'जी जिप' या 'टार' जैसे किसी भी फॉर्मेट में बनती है। 7 जिप को [http://www.7-zip.org] से मुफ्त डाउनलोड किया जा सकता हैं।
	फाइलजि-ला FileZilla	फाइलजिला एक फ्री ओपेन सोर्स सॉफ्टवेयर है जिसका उपयोग फाइलों को सुरक्षित माध्यम में इंटरनेट पर चल रही किसी वेबसाइट या एपलिकेशन में अपलोड या डाउनलोड के लिए किया जाता है। फाइलजिला मुख्यतः एफ.टी.पी. सॉफ्टवेयर है जो किसी भी ऑपरेटिंग सिस्टम पर चल सकता है। फाइलजिला को [https://filezilla-project.org] से मुफ्त डाउनलोड किया जा सकता हैं।
	मोज़िला थंडरबर्ड (Thunderbird)	थन्डरबर्ड एक ईमेल एप्लीकेशन है। यह आउटलुक एक्सप्रेस की तरह ईमेल भेजने व प्राप्त करने का सॉफ्टवेयर है। थंडरबर्ड का डिजाइन वायरस और जंक मेल को रोकने के लिए किया गया है। थन्डरबर्ड को [https://www.mozilla.org/en-US/thunderbird] से मुफ्त डाउनलोड किया जा सकता हैं।
	स्काइप Skype	स्काइप आपको सबसे वार्तालाप करने की स्वतंत्रता देता है। तत्काल संदेश, वॉइस या वीडियो कॉल कर सकते है। स्काइप से जुड़ने के लिए मोबाइल या कम्प्यूटर पर इंटरनेट का होना आवश्यक है। स्काइप को [http://www.skype.com] से मुफ्त डाउनलोड किया जा सकता हैं।
	अपाचे Apache	यह वेब सरवर के लिये सबसे ज्यादा लोकप्रिय सॉफ्टवेयर है जो केवल कम्प्यूटर के प्रोग्राम को रन करने के काम आता है। अपाचे को [http://httpd.apache.org/] से मुफ्त डाउनलोड किया

		जा सकता हैं।
	पी.एच.पी PHP	यह एक प्रोग्रामिंग भाषा है जिसका उपयोग वेबसाइट और वेब एपलिकेशन बनाने के लिए होता है। पी.एच.पी को [http://www.php.net] से मुफ्त डाउनलोड किया जा सकता हैं।
	पाइथन Python	पाइथन एक प्रोग्रामिंग भाषा है। जिसका उपयोग वेब और इंटरनेट डेवलपमेंट, विज्ञान और अंकीय–संबंधी तथा शिक्षा क्षेत्रों में एपलिकेशन बनाने के लिए किया जाता है। पाइथन को [https://www.python.org/downloads/] से मुफ्त डाउनलोड किया जा सकता हैं।
	पर्ल Perl	पर्ल एक प्रोग्रामिंग भाषा है। इसका विकास लैरी वॉल द्वारा सन् 1987 में यूनिक्स स्क्रीप्टिंग भाषा के अंतर्गत रिपोर्ट की प्रक्रिया को आसान बनाने के लिए किया गया था। पर्ल अन्य प्रोग्रामिंग भाषाओं जैसे कि सी(C), शैल स्क्रिप्टिंग (shell scripting(sh)) की तरह होती है। पर्ल, ग्राफिक्स प्रोग्रामिंग, सिस्टम प्रशासन, नेटवर्क प्रोग्रामिंग, वित्त, जैव सूचना विज्ञान जैसे अनुप्रयोगों के लिए उपयोग की जाती है। पर्ल को [http://www.perl.org] से मुफ्त डाउनलोड किया जा सकता हैं।
	वर्डप्रैस (WordPress)	वर्डप्रैस एक मुफ्त एवं मुक्त स्रोत सॉफ्टवेयर है। वर्डप्रैस एक प्रसिद्ध ब्लॉग सॉफ्टवेयर है। यह पीएचपी में लिखा गया है तथा डाटाबेस के लिए माइएसक्यूएल का प्रयोग करता है। जीएनयू सामान्य सार्वजनिक लाइसेंस के साथ जारी किया गया है। जिसे इसके आधिकारिक वेबसाइट से डाउनलोड किया जा सकता है। आज के समय में वर्डप्रेस अपनी वेबसाइट बनाने का सबसे आसान और उचित माध्यम है। आज लगभग 80 प्रतिशत ब्लॉग या वेबसाइट्स वर्डप्रेस पर ही बन रही हैं। वर्डप्रैस को [http://www.Wordpress.org] से मुफ्त डाउनलोड

		किया जा सकता हैं।
	माईएसक्यूल MySQL	विश्व का दूसरा सबसे व्यापक रूप से उपयोग किए जाने वाला मुक्त–स्रोत डाटाबेस प्रबन्धन प्रणाली है। माईएसक्यूल डेटाबेस का उपयोग वेब–एपलिकेशन में किया जाता है। वाणिज्यिक उपयोग के लिए माईएसक्यूल के कई भुगतान वाले संस्करण उपलब्ध है जिनमें अतिरिक्त कार्यक्षमता होती है। इस सॉफ्टवेयर को [http://www.mysql.com] से मुफ्त डाउनलोड किया जा सकता हैं।

अगर आप इन सॉफ्टवेयर का उपयोग करते है तो आपको पेड सॉफ्टवेयर की जरूरत कम पड़ेगी। इतना जरूर है कि आप इन सॉफ्टवेयर की मदद से अपने और प्रोफेशनल काम कर सकते है।

➤ प्रोग्रामर
विज्ञान प्रसार, ए–50
सेक्टर 62, संस्थागत क्षेत्र
नोएडा–201309

पृष्ठ तनाव का परिचय

■ अखिलेश कुमार श्रीवास्तव

दैनिक जीवन में ऐसे कई उदाहरण सामने आते हैं जिनमें प्रत्येक द्रव का मुक्त पृष्ठ सिकुड़कर अपना क्षेत्रफल न्यूनतम करने का प्रयास करता हैं अर्थात् ऐसा व्यवहार करता हैं जैसे कि वह तनी हुई रबर की प्रत्यास्थ झिल्ली हो जिसकी प्रकृति सदैव अपने क्षेत्रफल को न्यूनतम करने की होती हैं। स्पष्ट हैं कि प्रत्येक द्रव के पृष्ठ पर इस तनाव को ही पृष्ठ तनाव कहते हैं। तनी हुई रबर की प्रत्यास्थ झिल्ली का तनाव तो तनन के साथ बढ़ता हैं जबकि द्रवों का पृष्ठ तनाव स्थिर होता हैं। **उदाहरण** – वर्षा व ओस की छोटी बूंदे, साबुन के बुलबुले, फर्श पर या किसी सतह पर पारे की बूंद (दिये गये आयतन के लिये गोलीय सतह का क्षेत्रफल सबसे कम होता हैं।), किसी चूड़ी या वलय के अन्दर साबुन के घोल पर लगे धागे के आकृति में परिवर्तन, जल के पृष्ठ पर कपूर के टुकड़े का नृत्य, ठन्डे सूप की तुलना में गर्म सूप अधिक स्वादिष्ट लगना, फव्वारे या फुहार का पानी अधिक ठंडा होना आदि।

प्रथम परिभाषा –किसी भी द्रव की स्वतंत्र सतह को इकाई क्षेत्रफल से विस्तारित करने के लिये आवश्यक कार्य अर्थात् पृष्ठ ऊर्जा में वृद्धि को पृष्ठ तनाव कहते हैं।

द्वितीय परिभाषा –द्रव के मुक्त पृष्ठ पर एकांक लम्बाई की काल्पनिक रेखा के लंबवत तथा पृष्ठ के तल में कार्य करने वाला बल पृष्ठ तनाव कहलाता हैं।

मात्रक– जूल प्रति वर्ग मीटर या न्यूटन प्रति मीटर

विमीय सूत्र–$[M^1L^0T^{-2}]$

पृष्ठ तनाव से सम्बंधित कुछ महत्वपूर्ण बिंदु

1. यह द्रव की प्रकृति पर निर्भर करता है, यह पृष्ठ के क्षेत्रफल तथा काल्पनिक रेखा की लम्बाई पर निर्भर नहीं करता है।

2. यह एक अदिश राशि है क्योंकि इसकी दिशा अद्वितीय है जिसे व्यक्त नहीं कर सकते है।

3. पृष्ठ तनाव द्रव के पृष्ठ के दूसरी और स्थित माध्यम पर भी निर्भर करता है।

4. ताप बढने के साथ पृष्ठ तनाव का मान घटता हैं तथा क्रांतिक ताप पर इसका मान शून्य हो

जाता है।

5. पृष्ठ तनाव एक आण्विक घटना हैं जिसका मूल कारण विद्युत चुम्बकीय बल है।

आण्विक बलों के आधार पर पृष्ठ तनाव की व्याख्या

जैसा की हम जानते हैं कि द्रव के अन्दर प्रत्येक अणु का प्रभाव गोला पूर्णतया द्रव के अन्दर होता है तथा इस प्रभाव गोले के केंद्रीय अणु पर अन्य अणुओं के ससंजक बल के कारण परिणामी बल शून्य होता है, पर द्रव की सतह के समीप स्थित या द्रव की सतह पर स्थित अणु के प्रभाव गोले का कुछ या आधा भाग द्रव के बाहर होता है, जिससे उस केंद्रीय अणु पर लगने वाले परिणामी बल की दिशा द्रव के अन्दर की ओर होती है, फलस्वरूप अणु द्रव के अन्दर जाता हैं अर्थात् द्रव सतह में सिकुड़ने की प्रवृत्ति होती है।

इसी प्रकार जब किसी अणु को द्रव के अन्दर से द्रव की सतह पर लाया जाता हैं तो उस अणु पर द्रव के अन्दर की ओर लगने वाले लम्बवत बल के विरुद्ध कार्य करना पड़ता हैं, यह कार्य अणु की स्थितिज ऊर्जा के रूप में होता है, जो कि द्रव की सतह में स्थित होती है। प्रकृति में प्रत्येक कण या अणु न्यूनतम स्थितिज ऊर्जा की स्थिति में रहना चाहता है, उसमें सिकुड़ने की स्वाभाविक प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है, इसे ही पृष्ठ तनाव कहते है। पृष्ठ तनाव को विद्यार्थियों को समझाने के लिए कुछ प्रयोग का वर्णन निम्नलिखित हैं –

1–कागज का फूल खिलाना

इसके लिए एक प्लेट में पानी लेकर उसमें एक कागज़ का फूल बंद करके छोड़ने पर उसकी पंखुडियां धीरे–धीरे खुलने लगती हैं। सामान्यतया विद्यार्थी इस घटना को समझ नहीं पाते हैं। जब उनको बताया जाता हैं कि इस कागज में छोटी–छोटी केशनलियाँ होती हैं। जिनमें जब पानी ऊपर चढ़ जाता हैं तो ये कागज़ का फूल खुल जाता है। इसी प्रकार जलीय फूल तथा अन्य फूल खिलते हैं।

2– पानी को बूंदों की रेलगाड़ी

इसके लिए एक धागे को किसी खूंटी से 45 डिग्री के कोण से लटकाते हैं तथा उसपर एक एक कर पानी की बूंदों को या धार को छोड़ते हैं, तो पानी नीचे गिरने के बजाय उस धागे के सहारे काफी नीचे आकर फिर नीचे गिरता है। इस घटना को भी विद्यार्थी समझ नहीं पाते हैं।

इसको इस प्रकार समझाया जाता हैं कि पानी तथा धागे के मध्य आसंजक बल के कारण जल नीचे नहीं गिर पाता है। इस प्रकार विद्यार्थी आसंजक बल को समझ सकते हैं।

3– पानी भरे गिलास में प्लास्टिक के ढक्कन को बीचों बीच में तैराना

जब किसी पानी भरे गिलास में प्लास्टिक के ढक्कन को छोड़ते है तो वह किनारे की ओर जाता है, जब हम उस ढक्कन को उंगली की सहायता से मध्य में ले जाकर छोड़ते हैं तो वह वहां नहीं रुकता हैं तथा किनारे की ओर जाता है।

जब विद्यार्थियों से पूछा जाता हैं कि ऐसा क्यों नहीं हो पा रहा हैं तो वे इसका उत्तर नहीं दे पाते हैं।

तब एक ड्रोपर की सहायता से कुछ बूंद गिलास में डालकर पानी का तल बढ़ाया जाता है, तो पानी का तल लगभग उत्तल आकार का हो जाता है। उस समय ढक्कन मध्य में आ जाता है। इस घटना के बारे में जब विद्यार्थियों को पूछा जाता है तो वे इसको भी समझा नहीं पाते हैं।

तब उनको बताया जाता है कि जल के पृष्ठ तनाव के कारण जल का तल अवतलाकार होता है जिसके कारण ढक्कन किनारे पर ही ठहरता है, पर जब जल का स्तर धीरे–धीरे बढाया जाता है तो जल फैलता नहीं है तथा कुछ देर बाद उसका आकार उत्तालाकार हो जाता है।

4– बोतल से निकलती धाराओं को बांधना तथा खोलना

एक प्लास्टिक की बोतल में कुछ पास–पास छिद्र करते हुए जब जल निकलने देते हैं तो उनमें से अलग–अलग धाराएं निकलती हैं। जब हम उन धाराओं को हाथ से बांधने का प्रयास करते है तो वे सभी या कुछ मिलकर मोटी धारा बना लेती हैं और जल बहता रहता है। यदि हम उस धारा को ऊँगली से काट देवे तो वे अलग–अलग हो जाती हैं। इस घटना के समझाने के लिए जब विद्याथियों को कहा जाता है तो वे इस को भी समझा नहीं पाते हैं,तब उनको बताया जाता है कि आसंजक बल के कारण जल की धाराएं बंध जाती हैं। तथा उन धाराओं को जब उंगली से हटाने का प्रयास किया जाता है तो वे अलग भी हो जाती हैं।

इसी प्रकार निम्नलिखित घटनाओं को भी समझाया जा सकता हैं–

5– माचिस की तीलियों से तारानुमा आकृति बनाना

जब एक प्लेट में माचिस की तीलियों को बीच में से थोड़ा मोड़कर(तोड़कर नहीं) इन्हें सटाकर रख देते हैं तथा जैसे ही एक या दो बूंद इनके संपर्क बिंदु पर डालते हैं वैसे ही ये सभी दूर होने लगती हैं तथा एक तारानुमा आकृति ग्रहण कर लेती हैं।

यहाँ भी जैसे ही जल इन तीलियों में अन्दर बनी केशनलियों में प्रवेश करता है वैसे ही ये सीधी होने लगती हैं तथा तारानुमा आकृति धारण कर लेती हैं।

6– ब्लेड या आलपिन को जल में तैराना

जल से भरे गिलास में एक अखबार या छन्ना कागज रखकर उसपर सावधानी से एक ब्लेड या आलपिन रख देते हैं। कुछ समय बाद कागज या अखबार तो जल में डूब जाता हैं,पर ब्लेड या आलपिन तैरती रहती है। यहाँ भी पृष्ठ तनाव के कारण ब्लेड या आलपिन तैरती रहती है।

7– कीप या फनल में साबुन के बुलबुले का आकार में परिवर्तन होना

किसी बरतन में साबुन का घोल तैयार कर जब उसमे कीप या फनल डुबोते हैं तो उसमें एक बुलबुला बन जाता है तथा उसका आकर परिवर्तित होता है। यहाँ भी बुलबुला अपने क्षेत्रफल को कम करने का प्रयास करता है, जिससे बुलबुला अन्दर की ओर गति करता हुआ सिकुड़ता है।

8– किसी चूड़ी या वलय में साबुन के घोल में बने धागे की आकृति में परिवर्तन होना

किसी बर्तन में साबुन का घोल तैयार कर जब उसमे चूड़ी या वलय जिसके मध्य में एक धागा बंधा होता है, को डुबोते है तो उसमें एक साबुन की परत बन जाती है, जैसे ही इस धागे के एक ओर की परत तोड़ते हैं वैसे ही शेष परत इस प्रकार सिकुड़ती है कि धागा वृतीय आकार में आ जाता है।

9– शेविंग ब्रश को पानी से भरे बर्तन में से निकालने पर उसके बाल पास–पास आ जाना

शेविंग ब्रश के बाल अलग अलग होते हैं, जैसे ही उसे जल में डुबोकर बाहर निकालते हैं वैसे ही सारे बाल पास पास आ जाते हैं। इस ब्रश को जैसे ही जल से बाहर निकालते हैं तो इसके

सारे बालों के चारों ओर एक परत बन जाती हैं, जो कि सिकुड़ने का प्रयास करती हैं तथा उसके मध्य बाल आने से वे भी पास–पास आ जाते हैं।

10– पेपर जिप

जब दो कागजों की पतली परत को किसी जल से भरे पात्र में डुबोकर गीला करने के बाद उन्हें पास रखते हैं, तो वे आपस में चिपकते चले जाते हैं। यहाँ भी जल के अणुओं के संसंजक बल के कारण परत पास आ जाती हैं।

11– गिलास में तैरती तीलियों का दूर जाना

जल से भरे गिलास में जब दो पास तैरती हुए माचिस की तीलियों के मध्य एक बूंद साबुन के घोल की डाल देते हैं तो दोनों तीलियाँ दूर– दूर चली जाती हैं। यहाँ जैसे ही जल में साबुन की बूंद डालते हैं तो उसका पृष्ठ तनाव कम हो जाता हैं और दोनों तीलियाँ दूर चली जाती हैं।

12–किसी प्लेट में उलटे रखे जल से भरे गिलास को सिक्के या पत्थरों की सहायता से ऊपर उठाना पर जल की कुछ मात्रा गिलास में रह जाना तथा साबुन के घोल के डालने पर जल बाहर आ जाना

जब जल से भरे गिलास को उल्टा कर किसी प्लेट में उल्टा रखते हैं तथा धीरे से एक ओर से उठाकर एक सिक्का या छोटा सा पत्थर उसके नीचे रखते है तो थोडा सा जल निकल जाता है पर गिलास पूरा खाली नहीं होता है, इसी प्रकार अन्य ओर सिक्का लगाने पर जल बाहर नहीं निकलता है। इस प्रकार गिलास के नीचे लगभग तीन–तीन सिक्के रखे जाने पर भी गिलास का जल बाहर तो निकलता है परन्तु पूरा खाली नहीं होता है।

13– पाउडर की मदद से जल की सतह का टूटना दिखाना

एक जल से भरी प्लेट की सतह पर कुछ पाउडर का छिड़काव करते है तथा इसकी सतह पर जैसे ही साबुन के घोल से भीगी हुई तीली या आलपिन लगाते है, वैसे ही पाउडर की परत टूट जाती है। इससे ज्ञात होता है कि साबुन के घोल से जल का पृष्ठ तनाव कम हो जाता है।

14– फुहारने से द्रव का ठंडा होना

किसी गर्म जल से भरे पात्र में लगे फुहार उपकरण की सहायता से किसी दर्शक की हथेली पर

जल को फुहारे तो दर्शक को जल पात्र में स्थित गर्म जल की अपेक्षाकृत ठंडा महसूस होता है।

जब द्रव की बड़ी बूंद कई छोटी बूंदों में टूटती है तो बूंदों को तोडने की प्रक्रिया के दौरान व्ययित ऊर्जा जल से ली जाती है जिससे जल की छोटी बूंदे अपेक्षाकृत ठंडी हो जाती हैं।

➢ प्रधानाचार्य
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, तगावली
धौलपुर (राजस्थान)
ई–मेल : akhilashsri@gmail.com

रासायनिक बलगतिकी

■ डॉ. आरती गुप्ता

रासायनिक क्रियाएँ एक निश्चित वेग से हुआ करती हैं। कुछ रासायनिक क्रियाएँ शीघ्रता से पूर्ण होती है तथा कुछ रासायनिक क्रियाएँ धीमी गति से होती हैं। रासायनिक अभिक्रियाओं के वेग का अध्ययन रासायनिक बलगतिकी के अन्तर्गत किया जाता है, तथा अभिक्रियाओं की क्रियाविधि को कुछ सिद्धान्तों के आधार पर सिद्ध किया जाता है। इनमें से कुछ अभिक्रियाएँ इतनी शीघ्र होती हैं कि उनके वेग को कुछ विशेष उपकरणों की सहायता से ही ज्ञात किया जा सकता है। जैसे– स्टाप्ड फ्लो स्पेक्ट्रोमीटर, फ्लैश फोटोलिसिस।

रासायनिक अभिक्रियाओं का वेग कई कारकों पर निर्भर करता है यथा अभिकारकों की सान्द्रता, ताप, उत्प्रेरक की उपस्थिति, प्रकाश किरणों, रेडियोएक्टिव किरणों, पराश्रव्य तरंगों का अनुप्रभाव काल आदि। अभिक्रिया वेग को अभिकारकों की सान्द्रता में होने वाली कमी अथवा अभिक्रिया फलों की सान्द्रता में होने वाली वृद्धि के वेग के मापन द्वारा ज्ञात कर सकते हैं। सान्द्रता में वृद्धि के वेग को dc/dt अथवा dx/dt द्वारा तथा सान्द्रता में कमी के वेग को $-dc/dt$ द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। c सान्द्रता तथा t समय को प्रदर्शित करता है।

उदाहरण : $A+B \rightarrow P+Q$

अभिक्रिया का वेग $$\frac{dx}{dt} = -\frac{d[A]}{dt} = -\frac{d[B]}{dt} = +\frac{d[P]}{dt} = +\frac{d[Q]}{dt}$$

$$aA+bB \rightarrow pP+qQ$$

अभिक्रिया का वेग $$\frac{dx}{dt} = -\frac{1}{a}\frac{d[A]}{dt} = -\frac{1}{b}\frac{d[B]}{dt} = +\frac{1}{p}\frac{d[P]}{dt} = +\frac{1}{q}\frac{d[Q]}{dt}$$

अभिक्रियाओं की अणुकता

अभिक्रियाओं का वर्गीकरण अणुकता के आधार पर किया जाता है। अणुओं अथवा परमाणुओं की वह संख्या जो अभिक्रिया में भाग लेती हैं अणुकता कहलाती है। अणुओं की संख्या के आधार पर अभिक्रियाओं को एकाणविक, द्विआणविक तथा त्रिआणविक अभिक्रियाओं में

वर्गीकृत किया जा सकता है।

एकाणविक अभिक्रिया – जब अभिक्रिया में केवल एक अणु भाग लेता हैं उसे एकाणविक अभिक्रिया कहते हैं।

$$Cl_2 \rightarrow 2Cl$$

$$PCl_5 \rightarrow PCl_3 + Cl_2$$

$$N_2O_5 \rightarrow 2NO_2 + \frac{1}{2}O_2$$

द्विआणविक अभिक्रिया –जब किसी अभिक्रिया में दो अणु भाग लेते हैं तब उस अभिक्रिया को द्विआणविक अभिक्रिया कहते हैं।

$$2HI \rightarrow H_2 + I_2$$

$$CH_3COOC_2H_5 + H_2O \rightarrow CH_3COOH + C_2H_5OH$$

$$C_{12}H_{22}O_{11} + H_2O \xrightarrow{H^+} C_6H_{12}O_6 + C_6H_{12}O_6$$

त्रिआणविक अभिक्रिया–जब किसी अभिक्रिया में तीन अणु भाग लेते हैं तब वह अभिक्रिया त्रिआणविक अभिक्रिया कहलाती है।

$$2NO + O_2 \rightarrow 2NO_2$$

$$2NO + Cl_2 \rightarrow 2NOCl$$

$$2FeCl_3 + SnCl_2 \rightarrow 2FeCl_2 + SnCl_4$$

अभिक्रिया कोटि

अभिक्रिया की कोटि अणुओं अथवा परमाणुओं की वह संख्या है जिस की सान्द्रता पर अभिक्रिया का वेग निर्भर करता है। (बलगतिकी में सान्द्रता का विशेष महत्व होता है।) अभिक्रिया का वेग अभिकारकों की सान्द्रता पर किस प्रकार निर्भर करता है इसे ही अभिक्रिया की कोटि द्वारा प्रदर्शित करते हैं। यदि किसी अभिक्रिया का वेग एक अभिकारक A की सान्द्रता के घात(l), दूसरे अभिकारक B की सान्द्रता के घात (m) तथा तीसरे अभिकारक की सान्द्रता के घात (n) आदि के समानुपाती है, तो

$lA = mB = nC = \ldots\ldots \rightarrow$ अभिक्रिया फल

अभिक्रिया का वेग $= k[A]^l[B]^m[C]^n$

अभिक्रिया की कोटि $= l + m + n$

यदि $[A] = [B] = [C] = 1$ मोल/लीटर हो तब अभिक्रिया वेग $= k$

यहाँ पर k वेग स्थिरांक है। किसी अभिक्रिया का वेग स्थिरांक अभिक्रिया के वेग के समान होता है यदि अभिकारकों की सान्द्रता इकाई हो।

अभिक्रिया की कोटि को इस प्रकार विभाजित किया गया है।

1. शून्य कोटि की अभिक्रिया।
2. प्रथम कोटि की अभिक्रिया।
3. द्वितीय कोटि की अभिक्रिया।
4. तृतीय कोटि की अभिक्रिया।

शून्य कोटि की अभिक्रिया

ऐसी अभिक्रियाएँ जिनमें अभिकारकों की सान्द्रता का अभिक्रिया वेग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, शून्य कोटि की अभिक्रियाएँ कहलाती हैं। इन अभिक्रियाओं का वेग स्थिर रहता है। अनेकों विषमांगी अभिक्रियाएँ शून्य कोटि की होती हैं क्योंकि इन अभिक्रियाओं मे अधिशोषण के लिए उपलब्ध ठोस पदार्थ का तल स्थिर होता है। शून्य कोटि की अभिक्रिया के कुछ उदाहरण निम्नलिखित है

1. मोलिब्डिनम, निकेल अथवा टंग्सटन के तल पर अमोनिया का नियोजन

2. स्वर्ण पृष्ठ पर हाइड्रोजन आयोडाइड का वियोजन।

$$2HI \rightarrow H_2 + I_2$$

शून्य कोटि की अभिक्रिया को इस प्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं :

	A ⟶	P
t = o	a	o
t = t		x

यहाँ पर A अभिकारक तथा P अभिक्रिया फल है। अभिक्रिया का वेग निम्नलिखित समीकरण द्वारा प्रदर्शित किया जाता है–

$$\frac{dx}{dt} = k_o$$

$$dx = k_0 \ dt$$

समाकलन करने पर,

$$\int dx = k_o \int dt$$

$$x = k_o t + I \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots(1)$$

यहँ पर I समाकलन स्थिरांक है।

जब t = o है तब $x = o$ हो जाएगा, अतः समीकरण (1) को इस प्रकार लिखा जा सकता है।

$$I = 0 \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots(2)$$

समाकलन स्थिरांक का मान समीकरण (1) में रखने पर,

$$x = k_o t$$

$$k_o = \frac{x}{t} \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (3)$$

k_0 का मात्रक सान्द्रता/समय अथवा मोल/लीटर/समय होता है।

अर्द्ध आयु काल

$$x = k_o t_{1/2}$$

$$\frac{a}{2} = k_o t_{1/2}$$

$$t_{1/2} \propto a$$

प्रथम कोटि की अभिक्रिया

प्रथम कोटि की अभिक्रिया में अभिक्रिया का वेग अभिकारक की सान्द्रता के सीधा समानुपाती है। समय बढ़ने के साथ–साथ अभिकारक की सान्द्रता में कमी आती जाती है।

	A $\longrightarrow$	P
t = o	a	o
t = t	(a–x)	x

यहाँ पर अभिकारक A की प्रारम्भिक सान्द्रता $'a'$ मोल/लीटर है तथा t समय के पश्चात अभिकारक A की सान्द्रता में x मोल/लीटर की कमी आ जाती है अर्थात् x मोल/लीटर अभिक्रिया में प्रयुक्त हो जाते हैं तथा t समय के पश्चात अभिकारक A की सान्द्रता (a–x) मोल/लीटर हो जाएगी। अतः अभिक्रिया का वेग निम्नलिखित समीकरण द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

$$-\frac{dx}{dt}=k_1(a-x)$$

यहाँ पर k_1 वेग स्थिरांक है तथा ऋण चिन्ह यह प्रकट करता है कि समय बढ़ने पर वेग घटता जाता है।

$$-\frac{dx}{(a-x)}=k_1 dt$$

इस समीकरण का समाकलन करने पर,

$$-\int\frac{dx}{(a-x)}=k_1\int dt$$

$$-\ln(a-x)=k_1 t+I\ldots\ldots\ldots\ldots(4)$$

यहाँ पर I समाकलन स्थिरांक है।

जब समय $t=0$ है अर्थात प्रक्रिया के आरम्भ होने के समय $x=0$ होगा। अतः

$$-\ln a=I\ldots\ldots\ldots\ldots(5)$$

समाकलन स्थिरांक का मान (4) में रखने पर

$$-\ln(a-x)=k_1 t-\ln a$$

$$\ln a-\ln(a-x)=k_1 t$$

$$\ln\frac{a}{a-x}=k_1 t$$

$$k_1=\frac{1}{t}\ln\frac{a}{a-x}$$

$$k_1 = \frac{2.303}{t} \log e \frac{a}{a-x} \quad ....(6)$$

k_1 का मात्रक समय$^{-1}$ (मिनट$^{-1}$ अथवा सेकेण्ड$^{-1}$) है।

t_1 तथा t_2 समय पर समीकरण (6) इस प्रकार किया जा सकता है।

$$k_1 = \frac{2.303}{t_2 - t_1} \log \frac{a-x_1}{a-x_2} \quad ....(7)$$

प्रक्रिया में प्रयुक्त सारे पदार्थ को वियोजित होने में कितना समय लगेगा यह कहना कठिन होगा इसलिए अभिक्रिया दर को अर्द्ध आयुकाल के पदों में भी प्रदर्शित किया जाता है।

अर्द्ध आयुकाल ($t_{1/2}$) – किसी पदार्थ की दी हुई मात्रा का आधा जितने समय में वियोजित होता है उस समय को अर्द्ध आयुकाल ($t_{1/2}$) कहते हैं। अतः $x = \frac{a}{2}$ का मान समीकरण (6) में रखने पर,

$$k_1 = \frac{2.303}{t_{1/2}} \log \frac{a}{a - \frac{a}{2}}$$

$$k_1 = \frac{2.303}{t_{1/2}} \log 2$$

$$t_{1/2} = \frac{2.303}{k_1} \times 0.3010$$

$$t_{1/2} = \frac{0.693}{k_1}$$

प्रथम कोटि की अभिक्रिया में अर्द्ध आयुकाल पदार्थ की सान्द्रता पर निर्भर नहीं करता है। उदाहरण :

$$H_2O_2(l) \xrightarrow{Pt} H_2O(l) + \frac{1}{2}O_2(g)$$

$$N_2O_5 \rightarrow 2NO_2 + \frac{1}{2}O_2$$

शर्करा का प्रतीपन $C_{12}H_{22}O_{11} + H_2O \xrightarrow{H^+} C_6H_{12}O_6 + C_6H_{12}O_6$

शर्करा ग्लूकोस फ्रक्टोज

(दक्षिण ध्रुवण घूर्णांक) (दक्षिण ध्रुवण घूर्णक) (वाम ध्रुवण घूर्णक)

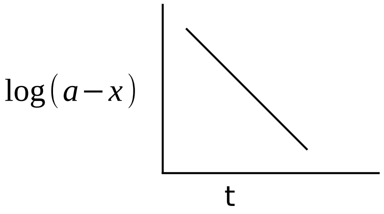

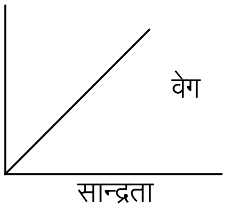

प्रथम कोटि अभिक्रिया का उदाहरण

मेथिल ऐसीटेट का जल अपघटन होता है तो मेथिल ऐसीटेट का एक अणु जल के एक अणु के साथ अभिक्रिया कर के मेथिल एल्कोहल तथा ऐसीटिक अम्ल बनाता है। समीकरण इस प्रकार है–

$$CH_3COOCH_3 + H_2O \rightarrow CH_3OH + CH_3COOH$$

यह अभिक्रिया धीमी गति से होती है। यदि किसी खनिज अम्ल की उपस्थिति में इस अभिक्रिया को किया जाए तब यह क्रिया त्वरित हो जाती है तथा उस वेग को नापा जा सकता

है। अभिक्रिया का वेग मेथिल ऐसीटेट की सान्द्रता पर निर्भर करता है। जल की मात्रा अधिक होने के कारण उसे स्थिर माना जाता है।

अभिक्रिया का अध्ययन करने के लिए 0.5 N HCl को 100 ml के एक फ्लास्क में तापस्थायी में रखा जाता है। लगभग आधे घंटे के पश्चात् 5ml मेथिल ऐसीटेट मिलाकर मिश्रण को अच्छी तरह से हिलाने के बाद उसमें से 5ml निकाल कर एक बीकर में रखा जाता है जिसमें पहले से ही 10 ml जल तथा कुछ बर्फ के टुकड़े रखे रहते हैं। मेथिल ऐसीटेट का जल अपघटन होने पर फ्लास्क में एसीटिक अम्ल बनना शुरू हो जाता है। इस एसीटिक अम्ल का अनुमापन कॉस्टिक सोडा विलयन से किया जाता है। इस अनुमापन में ब्यूरेट द्वारा प्रयुक्त कास्टिक सोडा की मात्रा (V_0) ज्ञात कर लेते हैं। 10 मिनट के बाद पुनः 5ml अभिक्रिया मिश्रण निकाल कर उसी प्रकार बर्फ मिश्रित जल में रख कर अनुमापन किया जाता है। इस प्रकार विभिन्न अन्तरालों पर विलयन निकाल कर अनुमापन (V_t) किया जाता है। अंतिम अनुमापन के लिए अभिक्रिया मिश्रण को लगभग 50^0–60^0C तक गर्म कर दिया जाता है। अथवा चौबीस घंटों के लिए छोड़ दिया जाता है। अभिक्रिया की समाप्ति कर पुनः 5ml अभिक्रिया मिश्रण निकाल कर पूर्व की तरह अनुमापन किया जाता है तथा प्रयुक्त होने वाली कास्टिक सोडे की मात्रा ($V\infty$) ज्ञात कर लिया जाता है। इस प्रकार प्रक्रिया के आरम्भ में, t समय पर तथा अभिक्रिया की समाप्ति कर अनुमापन के मान V_0, V_t तथा $V\infty$ ज्ञात हो जाते हैं। इन मानों को प्रथम कोटि की अभिक्रिया में रखने पर समीकरण इस प्रकार लिखा जा सकता है–

$$k=\frac{2.303}{t}\log\frac{V\infty-Vo}{V\infty-Vt}$$

<u>अभिक्रिया की कोटि ज्ञात करना–</u>

अभिक्रिया की कोटि ज्ञात करने की मुख्य विधियाँ इस प्रकार हैः

1.समाकलन विधि

2.अर्द्ध–काल विधि

3.पार्थक्य विधि

1. समाकलन विधि– इस विधि में विभिन्न समयों (t) पर x का मान ज्ञात किया जाता है। प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय कोटि के समीकरणों में उनका मान रख कर वेग स्थिरांक k का मान प्राप्त कर लिया जाता है। जिस समीकरण से वेग–स्थिरांक के अच्छे मान प्राप्त होते हैं उसी कोटि की अभिक्रिया मान ली जाती है।

2. अर्द्धकाल विधि– इस विधि में अर्द्ध–आयु काल के समीकरणों का सन्दर्भ लेते हैं। सामान्यतः यदि किसी अभिक्रिया की कोटि x है तो अर्द्ध आयुकाल इस प्रकार होगा–

$$t_{1/2} \propto \frac{1}{a^n - 1}$$

दो अभिक्रियाओं के सन्दर्भ में अर्द्ध आयुकाल को इस प्रकार लिख सकते हैं–

$$\frac{(t_{1/2})_1}{(t_{1/2})_2} = \left(\frac{C_2}{C_1}\right)^{n-1}$$

समीकरण का log करने पर,

$$\log \frac{\left(t_{1/2}\right)_1}{\left(t_{1/2}\right)_2} = (n-1) \log \frac{C_2}{C_1}$$

$$n = 1 + \frac{\log(t_{1/2})_1 / \log(t_{1/2})_2}{\log(C_2 / C_1)}$$

3. पार्थक्य विधि– यह विधि ओस्टवाल्ड पार्थक्य विधि कहलाती है। यदि एक अभिकारक के अतिरिक्त अन्य अभिकारक अधिकता में उपस्थित हो तो अभिक्रिया की कोटि उस पृथक अभिकारक की सान्द्रता पर निर्भर करेगी। यदि किसी अभिक्रिया का वेग इस प्रकार प्राप्त होता है।

$$\frac{dx}{dt} = k\,[A]^a [B]^b [C]^c$$

इस अभिक्रिया में A, B तथा C तीन अभिकारक हैं। यदि C की तुलना में A तथा B अधिकता में उपस्थित हो तब अभिकारक A तथा B को स्थिर मान लिया जाता है। अतः अब समीकरण इस प्रकार हो जाएगा।

$$\frac{dx}{dt} = k^1 [C]^c$$

इस प्रकार C का मान प्राप्त कर लेते हैं। इसी प्रकार a तथा b का मान ज्ञात कर लेते हैं।

अभिक्रिया की पूर्ण कोटि, $n = a + b + c$

सामान्यतः दो या अधिक भिन्न–भिन्न अभिक्रियाएँ एक साथ हुआ करती हैं, ऐसी अभिक्रियाएँ जटिल अभिक्रियाओं की श्रेणी में आती हैं। इन अभिक्रियाओं में तीन महत्वपूर्ण अभिक्रियाएँ इस प्रकार हैं–

1. क्रमागत अभिक्रियाएँ $A \rightarrow B \rightarrow C$

2. पार्श्व अभिक्रियाएँ

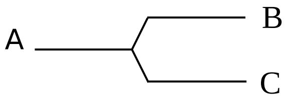

3. उत्क्रमणीय अभिक्रियाएँ $A + B \rightleftharpoons C + D$

रासायनिक परिवर्तन पर सान्द्रता तथा ताप का बहुत प्रभाव पड़ता है। गैसीय अवस्था में दाब का भी प्रभाव पड़ता है।

ताप का प्रभाव

$$\text{ताप नियतांक} = \frac{k_{35^0}}{k_{25^0}} = \frac{k_{308}}{k_{298}} = 2 \text{ या } 3$$

साधारणतः परीक्षणों द्वारा यह प्रमाणित हुआ है कि यदि ताप में 10^0C की वृद्धि होती है तब अभिक्रिया का वेग दोगुना हो जाता है। अभिक्रिया के वेग पर ताप के प्रभाव को आर्हीनियस समीकरण द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

$$k = Ae^{-E/RT^2}$$

यहाँ पर k वेग स्थिरांक, Ea सक्रियण ऊर्जा, R गैस स्थिरांक तथा T परम ताप है। समीकरण का समाकलन करने पर निम्नलिखित समीकरण प्राप्त होता है :

$$\log k = \log A - \frac{Ea}{2.303\,RT}$$

यदि log k को 1/T के विरूद्ध आलेखित किया जाए तो एक सरल रेखा प्राप्त होगी जिससे ढाल का मान प्राप्त कर सकते हैं।

$$\text{ढाल} = -\frac{Ea}{2.303\,R}$$

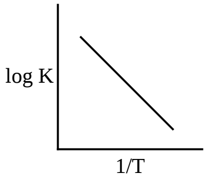

इस समीकरण द्वारा सक्रियण ऊर्जा, Ea का मान ज्ञात कर लिया जाता है। यदि अभिक्रिया का दो तापों, T_1 तथा T_2 पर अध्ययन किया जाए तथा नई अभिक्रियाओं के वेग स्थिरांक क्रमशः k_1 तथा k_2 हो तो,

$$\log k_1 = -\frac{Ea}{2.303\,RT_1}$$

$$\log k_2 = -\frac{Ea}{2.303\,RT_2}$$

$$\log \frac{k_2}{k_1} = \frac{Ea}{2.303R}\left(\frac{T_2 - T_1}{T_1 T_2}\right)$$

इस समीकरण द्वारा दो तापों पर सक्रियण ऊर्जा(Ea) का मान प्राप्त किया जा सकता है।

➢ एसोसिएट प्रोफेसर

रसायन विभाग

सी.एम.पी.कालेज

इलाहाबाद (उ.प्र.)

प्रकृति में रंग परिघटनाएँ

■ रामशरण दास

प्रस्तावना

रंग सौंदर्य का अभिन्न और सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है। प्रकृति में रंग विभिन्न रूपों में दिखाई पड़ते हैं: फूलों की विविधता में, तितलियों के पंखों की झिलमिलाहट में, आकाश की नीलिमा और उषा एवं संध्या के नारंगी–लाल अवगुंठन में, वर्षा के बाद इंद्रधनुष की अनुपम छटा में और साबुन के बुलबुलों में। रंगों की माया विभिन्न भौतिक परिघटनाओं के कारण परिलक्षित होती है। जिन परिघटनाओं के कारण प्रकृति में रंग नजर आते हैं उन में शामिल हैं : वर्ण विक्षेपण, व्यतिकरण, विवर्तन, प्रकीर्णन चयनित अवशोषण एवं परमाणु उद्दीपन। लेकिन रंगों के अवलोकन की प्रकृति को समझने में वैज्ञानिकों को सैकड़ों वर्ष लगे हैं।

वर्ण विक्षेपण

शुरुआत सन् 1666 में ब्रिटिश वैज्ञानिक आइजक न्यूटन के एक आकस्मिक प्रयोग से हुई। न्यूटन ने एक अंधेरे कमरे की खिड़की में छोटा सा छिद्र बनाकर प्रकाश का एक पतला किरण–पुंज प्राप्त किया। इस किरण–पुंज को जब उन्होंने एक स्वनिर्मित कांच के प्रिज्म से

गुजारा तो खिड़की के सामने की दीवार के पास लगे पर्दे पर सात रंगों का एक मनमोहक पैटर्न प्राप्त हुआ। न्यूटन ने पैटर्न के एक–एक रंग के संगत पर्दे में क्रमशः एक छोटा छिद्र बनाकर पर्दे के पीछे एकवर्णी किरणपुंज प्राप्त किया और दर्शाया कि इसका अपवर्तन तो होता है किंतु यह और आगे रंगों के पैटर्न में विभाजित नहीं होता। अपने प्रयोगों को कई–कई बार दोहरा कर न्यूटन ने निष्कर्ष निकाला कि सूर्य के प्रकाश में सात रंग हैं और प्रत्येक रंग की अपवर्तनशीलता कांच में भिन्न–भिन्न है।

न्यूटन की सतरंगी चकती

बाद में न्यूटन ने एक चकती को इन सात रंगों के खंडों में रंग कर तेजी से घुमाया तो वह चकती सफेद नजर आई। इस प्रकार न्यूटन ने व्युत्क्रमित प्रयोग करके दर्शाया कि सात रंगों के प्रकाश के सम्मिश्रण से श्वेत प्रकाश उत्पन्न होता है। प्रिज्म से गुजरने पर श्वेत प्रकाश के सात रंगों में विभाजित होकर परिक्षेपित होने की इस परिघटना को वर्ण विक्षेपण तथा प्राप्त सात रंगों (क्रमशः बैंगनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी और लाल) के पैटर्न को स्पेक्ट्रम नाम दिया गया।

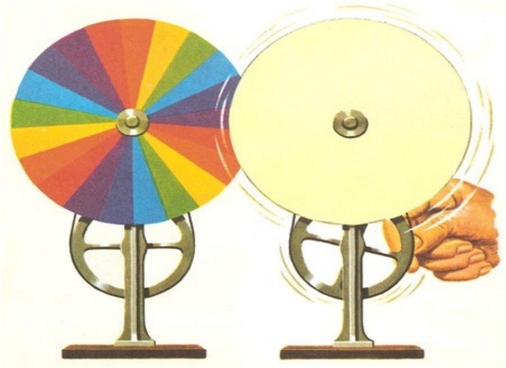

न्यूटन की सतरंगी चकती

न्यूटन का परावर्तक

वर्ण विक्षेपण की परिघटना के स्पष्ट होने के दो परिणाम तुरंत हुए, पहला – न्यूटन को यह समझ आ गया कि वर्ण विक्षेपण के कारण अपवर्तक टेलिस्कोपों में रंगीन अस्पष्ट परिसीमा के प्रतिबिंब बनते हैं जिससे उनकी विभेदन क्षमता सीमित हो जाती है और इसलिए उन्होंने एक परावर्तक प्रकार का टेलिस्कोप बनाया जो आगे चलकर खगोलिक पिंडों के अध्ययन के लिए अनिवार्य उपकरण बन गए। और दूसरा – इसके द्वारा लंबे समय से व्याख्यायित न किए जा सकने वाले इंन्द्रधनुष निर्माण प्रक्रम की सफल, संतोषजनक व्याख्या की जा सकी।

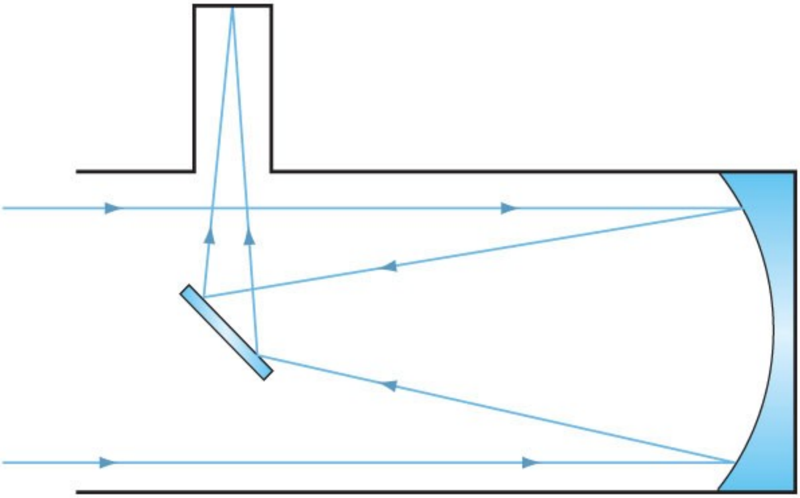

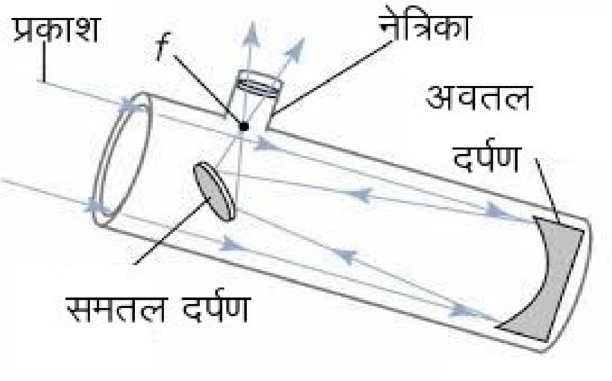

इन्द्रधनुष

इन्द्रधनुष, जैसा कि आप जानते हैं सुबह के समय पश्चिम में और शाम के समय पूरब में वर्षा के बाद क्षितिज के पास दिखाई देने वाली एक सतरंगी, अर्द्धवृत्ताकार वायव्य संरचना है जो वायु में लंबित लघु बूंदों में प्रकाश के अपवर्तन के फलस्वरूप निर्मित होती है। प्रायः आकाश में एक साथ एक के ऊपर एक, दो इन्द्रधनुष दृष्टिगोचर होते हैं, जिन्हें क्रमशः प्राथमिक और द्वितीयक इन्द्रधनुष कहते हैं।

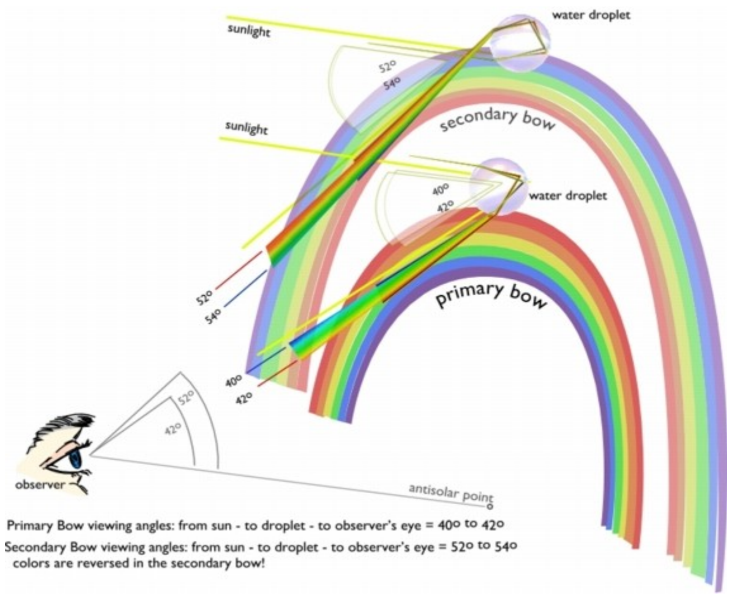

प्राथमिक इन्द्रधनुष में गोलाकार जल–बूंद में प्रकाश की किरण इसके केंद्र के ऊपर से प्रवेश करती है और पहले अपवर्तन के साथ परिक्षेपित होकर सतरंगी किरणें विपरीत आंतरिक पृष्ठ से परावर्तित होकर एक बार फिर से अपवर्तित होकर इससे बाहर निकलती है। इस प्रक्रम में बैंगनी रंग की किरण क्षैतिज से 41 डिग्री पर और लाल रंग की किरण 43 डिग्री पर निर्गत होकर हमारे नेत्र तक पहुंचती है इससे 2 डिग्री के कोणीय विस्तार में सतरंगी पैटर्न दिखाई पड़ता है जिसमें अंदर से बाहर की ओर रंगों का क्रम बैंगनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी और लाल होता है। क्योंकि ऐसे सब बिंदु जिनसे प्रकाश की ये किरणें नेत्र पर पहुंचती हैं एक वृत्त पर स्थित होते हैं यह रंग–पैटर्न वृत्ताकार नजर आता है। यह भी नोट किया जाना चाहिए कि सदैव इन्द्रधनुष के सभी सात रंग दिखाई दें, यह आवश्यक नहीं है। सूर्य की प्रेक्षक के सापेक्ष स्थिति से यह निर्धारित होता है कि इन्द्रधनुष दिखाई देगा या नहीं, वह वृत्त के कितने बड़े चाप के रूप में दिखाई देगा और इसमें कितने रंग होंगे। यदि वर्षा मेघ पृथ्वी तल से 5–6 किलोमीटर ऊपर हो तो 2.5–3 किलोमीटर ऊंचे पर्वत शृंग अथवा वायुयान से देखने पर किसी भी अर्द्ध गोलार्ध में पूर्ण वृत्ताकार इंद्रधनुष भी देखा जा सकता है।

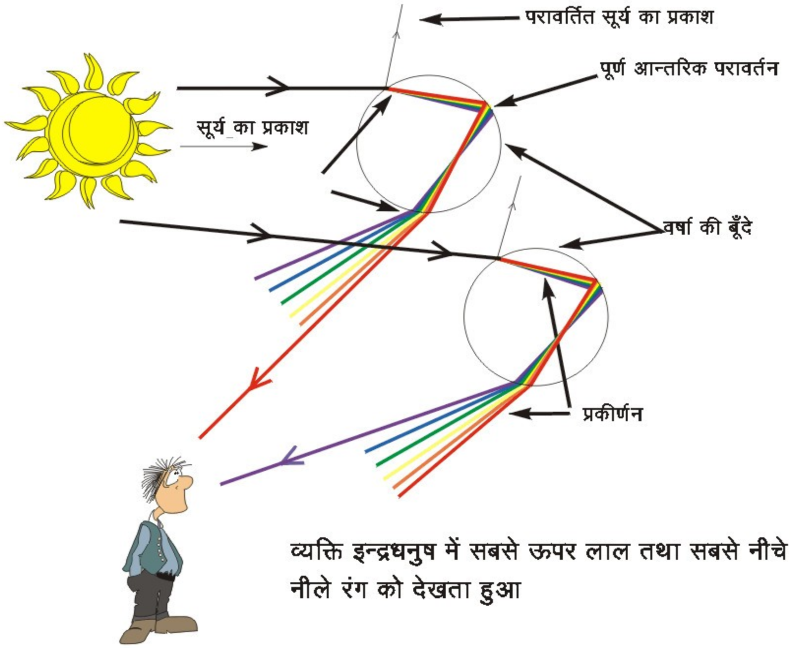

व्यक्ति इन्द्रधनुष में सबसे ऊपर लाल तथा सबसे नीचे नीले रंग को देखता हुआ

प्राथमिक इन्द्रधनुष से लगभग 10 डिग्री कोणीय तुंगता पर द्वितीयक इन्द्रधनुष दिखाई पड़ता है। यह अपेक्षाकृत कम चमकीला और अधिक चौड़ा (51 डिग्री से 54 डिग्री तक) होता है और इसमें रंगों का क्रम प्राथमिक इन्द्रधनुष के रंगों के क्रम से उल्टा होता है। अर्थात् अंदर का धनुष लाल रंग का और सबसे बाहर का बैंगनी रंग का होता है। द्वितीयक इंद्रधनुष जल बूंद के केन्द्र के नीचे प्रविष्ट होने पर दो अपवर्तनों एवं दो परावर्तनों के फलस्वरूप निर्मित होता है।

इंद्रधनुष के रंगों का चटकीलापन जलबूंदों के साइज पर निर्भर करता है। 1–2 मिलीमीटर व्यास की बूंदों में परिक्षेपण होने पर बैंगनी और हरे रंगों की पट्टियां काफी चमकीली होंगी, लाल रंग की पट्टी भी स्पष्ट दिखाई पड़ेगी किंतु नीला रंग बहुत धुंधला होगा। बूंदें छोटी होने पर लाल रंग की चमक कम हो जाएगी, बूंद का साइज 0.2–0.3 मिलीमीटर होने पर लाल रंग की पट्टी दिखाई देनी बंद हो जाएगी। बूंद का आकार और कम करते जाने पर इंद्रधनुष अधिक चौड़ा और धुंधला होता जाता है और लगभग 0.05 मिलीमीटर व्यास की जलबूंदों में अपवर्तन होगा तो इंद्रधनुष के स्थान पर सफेद पट्टी दिखाई देगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति में इंद्रधनुष का बनना प्रकाश के वर्षा विक्षेपण प्रक्रम का परिणाम है और जिसके लिए वायुमंडल में लंबित जल बूंदों की उपस्थिति उत्तरदायी है।

अतः यह मनोरम परिघटना देखना पृथ्वीवासियों का ही सौभाग्य है। चन्द्रमा जैसे खगोलिक पिण्डों पर जहां वायुमंडल विद्यमान नहीं है यह परिघटना नहीं देखी जा सकती है।

पतली पारदर्शी परतों के पृष्ठों पर गड्ड–मड्ड होते रंग

बचपन में हम सभी ने साबुन के घोल से बुलबुले बनाए होंगे। सूरज की रोशनी में इन बुलबुलों के पृष्ठों पर रंगों की मोहक छटा से विस्मित भी हुए होगें। पानी पर तेल की बूंद गिर जाए तो पानी के पृष्ठ पर तैरती तेल की पतली परत के पृष्ठ पर भी इसी प्रकार के रंग देखे होंगे? ये रंग भी क्या वर्ण विक्षेपण के कारण उत्पन्न होते हैं? जी नहीं, ये रंग एक अन्य प्रक्रम के कारण उत्पन्न होते हैं जिसे व्यतिकरण कहते है। व्यतिकरण प्रकाश की तरंग प्रकृति का द्योतक है।

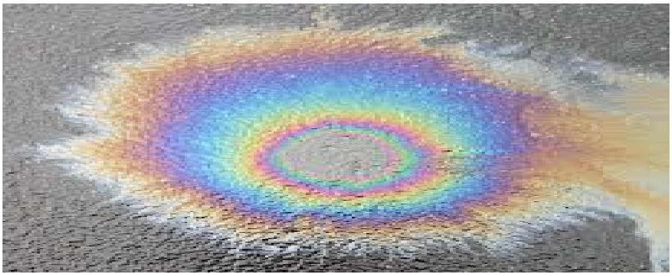

पानी के पृष्ठ पर तैरती तेल की पतली परत

क्या होता है व्यतिकरण?

ऊर्जा का एक स्थान से दूसरे स्थान तक संचरण दो प्रकार से होता है: **कणों के द्वारा** –जैसे बंदूक की गोली द्वारा और **तरंगों के द्वारा** – जैसे पटाखे के फटने से उत्पन्न ध्वनि द्वारा थोड़ी दूर रखी मोमबत्ती का बुझना। कण और तरंग में मूल अंतर यह होता है कि कण की ऊर्जा स्थानीकृत होती है – जहां कण वहां उसकी ऊर्जा, जबकि तरंग में ऊर्जा विस्थानीकृत अर्थात् स्रोत और प्रेक्षक के बीच के स्थान में फैली हुई होती है। परिणाम यह होता है कि जब दो कण एक ही स्थान से एक साथ गुजरना चाहते हैं तो उनमें संघट्ट होता है जिससे उनकी गति के भावी प्राचल बदल जाते हैं, जबकि, तरंगों के प्रकरण में ऐसा नहीं होता। जब दो (या अधिक समान आवृत्ति की एक ही दिशा में चलती हुई तरंगें एक साथ किसी क्षेत्र से गुजरती है तो उनकी ऊर्जाओं का अध्यारोपण होता है जिससे उस क्षेत्र में ऊर्जा का पुनर्वितरण हो जाता है। तरंगों के अध्यारोपण से ऊर्जा के पुनर्वितरण की यह परिघटना व्यतिकरण कहलाती है।

संपोषी एवं विनाशी व्यतिकरण

क्षेत्र के जिन बिंदुओं पर ये दो तरंगें समान कला में अध्यारोपण करती हैं वहां दोनों तरंगों के आयाम जुड़ जाते हैं और तरंग की तीव्रता (या ऊर्जा) अधिकतम हो जाती है और हम कहते हैं कि यहाँ संपोषी व्यतिकरण हुआ है, जबकि उन बिंदुओं पर जहां वे विपरीत कला में अध्यारोपण करती हैं वहां परिणामी तरंग का आयाम और इसलिए तरंग की तीव्रता (या ऊर्जा) घट कर न्यूनतम हो जाती है। इन बिंदुओं पर विनाशी व्यतिकरण होता है।

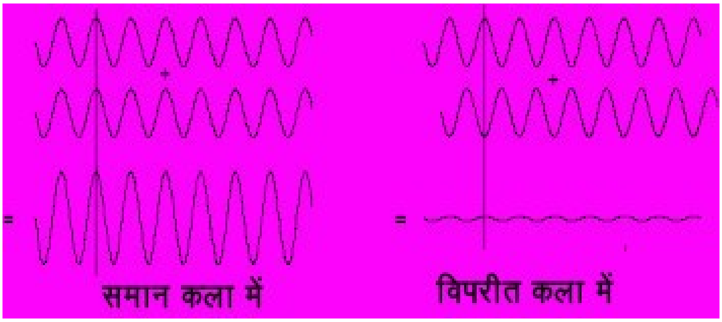

संपोषी एवं विनाशी व्यतिकरण

पतली परतों में व्यतिकरण

यदि ये तरंगें श्वेत प्रकाश की हों तो किसी बिंदु पर जिस रंग के लिए संपोषी व्यतिकरण होगा वह रंग दिखाई देगा और जिसके लिए विनाशी व्यतिकरण होगा वह पैटर्न में से हट जाएगा। इस प्रकार साबुन के बुलबुलों और तेलीय परतों में रंगों के दिखाई पड़ने की परिघटना के लिए व्यतिकरण उत्तरदायी है। परत के ऊपर और नीचे के पृष्ठ से परावर्तित किरणों के अध्यारोपण में जिन रंगों के लिए संपोषी व्यतिकरण होता है वे रंग दिखाई पड़ते हैं।

पदार्थों के रंग

कोई वस्तु हमें किसी विशेष रंग की क्यों दिखाई देती है यह उस वस्तु में विद्यमान किसी पदार्थ के प्रकाश के प्रति व्यवहार पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए पेड़ की पत्ती हमें हरे रंग की इसलिए दिखाई देती है क्योंकि उसमें विद्यमान क्लोरोफिल नाम का पदार्थ हरे रंग के अतिरिक्त अन्य रंगों के प्रकाश को अवशोषित कर लेता है और केवल हरे रंग के प्रकाश को ही परावर्तित करता है। यह प्रक्रम चयनित अवशोषण कहलाता है। चयनित अवशोषण के कारण वस्तु का रंग प्रकाश के रंग पर भी निर्भर करता है। क्योंकि पत्ती लाल प्रकाश को अवशोषित करती है अतः लाल प्रकाश में यह काली नजर आएगी। रंग दृष्टि तीन कारणों का परिणाम हैं: आपतित प्रकाश, वस्तु का प्रकाश के विभिन्न रंगों (या तरंगदैर्घ्यों) के प्रति व्यवहार तथा नेत्र। नेत्र भी रंग दृष्टि में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इनमें तीन तरह की रंग संवेदी तंत्रिका कोशिकाएँ होती है, जो मूलतः तीन प्राथमिक रंगों के प्रकाश – लाल, हरे एवं नीले प्रकाश का संवेदन कर सकती हैं। अन्य सभी रंग इन तीन रंगों के प्रकाश के आनुपातिक संवेदन के परिणाम हैं। इस प्रकार मानव नेत्र इन तीन रंगों की संवेदनकारी तंत्रिका कोशिकाओं के सहारे लगभग 105 वर्णाभाओं की पहचान कर सकते हैं। लाल–नीले रंग के प्रकाश समानुपात में नेत्र के रेटिना पर पड़ें तो क्रिम्सन, लाल एवं हरे से पीले तथा हरे एवं नीले से मोरपंखी रंग की अनुभूति होती है। ये द्वितीयक रंग कहलाते हैं। तीनों प्राथमिक या फिर तीनों द्वितीयक रंगों के प्रकाश के समानुपातिक सम्मिश्रण से श्वेत प्रकाश उत्पन्न होता है।

यदि किसी पिंड में एक से अधिक रंगों के संगत पदार्थ उपस्थित हों तो पदार्थ का रंग उनके द्वारा अवशोषित प्रकाश का व्यकलनात्मक परिणाम होता है। इसी कारण रंजकों के मिश्रण से रंग उत्पन्न करने के लिए प्राथमिक रंग अलग हो जाते हैं, ये हैं नीला, लाल और पीला। पीला प्रकाश हरे और लाल प्रकाश का समान परिमाण में सम्मिश्रण होता है अतः पीली दिखाई देने वाली वस्तु हरे और लाल प्रकाश को परावर्तित करती है और नीले प्रकाश को अवशोषित करती है। पीले और नीले रंजक को मिलाने से हरा रंग मिलता है क्योंकि इसमें विद्यमान पदार्थ लाल और नीले प्रकाश को अवशोषित कर लेते हैं।

तितलियों, मोरों एवं अन्य अनके कीटों एवं पक्षियों के परों के चटख रंग

ये रंग दो भिन्न प्रकार की रंग व्यवस्थाओं का परिणाम है, ये हैं: रंजक तथा संरचना। रंजकों के रंग की चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। ये समय के साथ फीके पड़ जाते हैं। किंतु आपने नोट

किया होगा कि कीटों और पक्षियों के पंखों के रंग अपेक्षाकृत स्थाई होते हैं। ये उनके पंखों के धात्विक पृष्ठों और संपूर्ण संरचना के ऊपर निर्भर करते हैं। संरचनात्मक रंग पंखों की विभिन्न परतों से परावर्तित प्रकाश के व्यतिकरण तथा उनके पंखों पर विद्यमान सूक्ष्म संरचनाओं से प्रकाश के विवर्तन के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं। इन सूक्ष्म संरचनाओं से परावर्तित जिन तरंगों में संपोषी व्यतिकरण होता है उनके संगत रंग दिखाई पड़ते हैं और जिनके संगत विनाशी व्यतिकरण होता है वे दिखाई नहीं पड़ते। इसीलिए दृश्य कोण बदलने पर पंखों का रंग पैटर्न बदल जाता है। किसी पुरानी सी.डी. या डी.वी.डी. को धूप में विभिन्न कोणों पर रख कर देखने पर आप विवर्तन के इस प्रभाव का अनुभव कर सकते हैं।

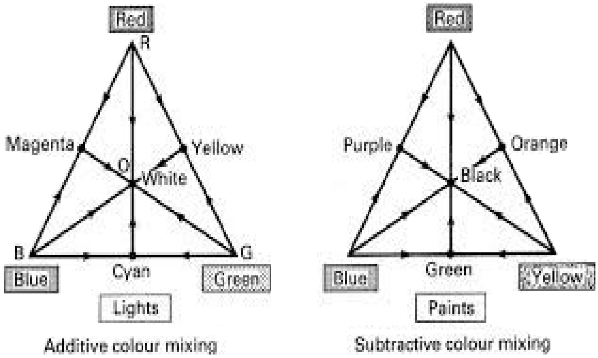

प्रकाश प्रकीर्णन

आकाश के या समुद्र में जल के नीले रंग; सूर्योदय या सूर्यास्त के समय क्षितिज का नारंगी–लाल रंग तथा बादलों का सफेद या काला रंग आदि एक अन्य प्रकाशिक परिघटना का परिणाम है। जिसे प्रकीर्णन कहते है। इस प्रक्रम में जब प्रकाश तरंगें किसी प्रकाशिक माध्यम (पारदर्शक गैस, ठोस या द्रव) से गुजरती हैं तो वे माध्यम के कणों से टकराकर विभिन्न दिशाओं में विक्षेपित होती हैं। इस प्रक्रम में उनकी तीव्रता एवं ध्रुवण अवस्था में परिवर्तन हो सकता है। गैसों में प्रकाश का प्रकीर्णन रेले एवं मी प्रकीर्णन (Rayleigh&Mie Scattering) सिद्धान्तों द्वारा, द्रवों में रमन एवं कॉम्पटन प्रकीर्णन सिद्धांत द्वारा तथा ठोसों में ब्रेनों एवं ब्रिलुवीं सिद्धांत द्वारा समझा जा सकता है।

लार्ड रेले ने गैस के अणुओं से प्रकाश के प्रत्यास्थ प्रकीर्णन का अध्ययन करते हुए पाया कि प्रकीर्णित प्रकाश की तीव्रता तरंगदैर्ध्य की चौथी घात के अनुक्रमानुपाती होती है। इससे इस तथ्य की व्याख्या होती है कि पृथ्वी पर आकाश नीला क्यों दिखाई देता है। छोटे

तरंगदैर्ध्यों की तरंगें (नीली रंग) दीर्घ तरंगदैर्ध्य की तरंगों (लाल रंग की तरंगों) की अपेक्षा अधिक प्रकीर्णित होती हैं अतः आकाश में नीले रंग का प्रभुत्व हो जाता है।

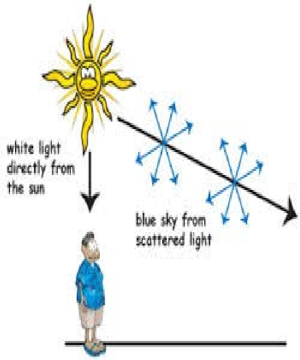

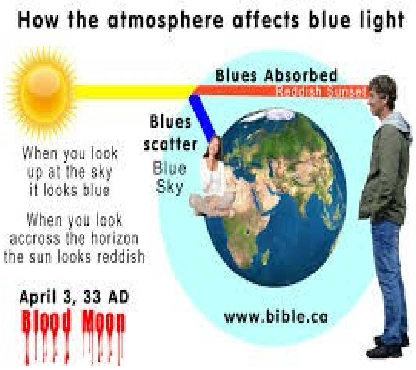

सूर्य के आस–पास आकाश का रंग श्वेत नजर आता है या बादलों का रंग सफेद या सलेटी नजर आता है यह तथ्य भी प्रकीर्णन द्वारा समझा जाता है जिसके अनुसार प्रकीर्णन के साइज पर भी निर्भर करता है। बादलों में अपेक्षाकृत बड़े आकार की जल बूंदों से प्रकीर्णन के कारण सभी तरंगों का प्रकाश प्रकीर्णित होकर आंख में पहुंचता है इससे बादल सफेद रंग का नजर आता है।

सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय जब सूर्य क्षितिज के निकट होता है तो उससे चलकर नेत्र तक पहुंचने वाले प्रकाश को वायुमंडल में अधिक दूरी तय करनी पड़ती है। इसका नीला भाग प्रकीर्णित हो जाता है और शेष अर्थात् स्पेक्ट्रम का लाल भाग ही नेत्र में पहुंचता है। इससे सूर्य और उसके आस–पास का आकाश नांरगी–लाल नजर आता है।

ध्रुव ज्योतियां

एक अत्यंत आकर्षक प्राकृतिक परिघटना ध्रुव ज्योतियां हैं। मुख्यतः उच्च अक्षांश (आर्कटिक एवं अंटार्कटिक) क्षेत्रों में दोनों चुंबकीय ध्रुवों के निकट, पृथ्वी से लगभग 80 से 150 किलोमीटर की ऊंचाई पर अक्सर नीचे से ऊपर की ओर क्रमशः नीले–हरे और लाल रंगों का एक झमझमाता हुआ पर्दा सा दिखाई पड़ता है। रंगों की यह मोहक प्राकृतिक छटा ध्रुव ज्योति (अंग्रेजी शब्द Aurora जिसका अर्थ है उषा या उषाकाल) कहलाती है। उत्तरी ध्रुव के पास

दिखाई पड़ने वाली यह ज्योति उत्तरी ध्रुव ज्योति (Aurora Boraealis) तथा दक्षिण ध्रुव के निकट की ज्योति, दक्षिण ध्रुव ज्योति (Aurora Australis) कहलाती है। रात्रि आकाश की काली पृष्ठभूमि में ये और आकर्षक हो जाती है। खास बात यह है कि दोनों ध्रुवों के पास की ये ज्योतियां लगभग एक से लक्षणों से युक्त और एक सी प्रकृति की होती है।

प्रेक्षण बताते हैं कि मुख्यतः ध्रुव ज्योतियां पृथ्वी के चुंबकीय ध्रुवों के परितः लगभग 2500 किलोमीटर त्रिज्या के वृत्त पर 3 डिग्री से 6 डिग्री अक्षांश और 10 डिग्री से 20 डिग्री देशांतर रेखाओं के बीच स्थित स्थानों से ही दिखाई देती है, किंतु चुंबकीय तूफानों के दौरान इनका विस्तार बढ़ जाता है। वह क्षेत्र जिनमें ध्रुव ज्योतियां सामान्यतः दिखाई पड़ती हैं, वे ध्रुव ज्योति क्षेत्र (Auroral Zone) कहलाते हैं ग्यारह वर्षीय सौर कलंक चक्र के दौरान जब पृथ्वी पर भीषण चुम्बकीय तूफान आते हैं तो इन्हें ध्रुव ज्योति क्षेत्रों के बाहर भी देखा जा सकता है।

ध्रुव ज्योतियां कैसे उत्पन्न होती हैं इसकी एकदम स्पष्ट विस्तृत व्याख्या तो अभी भी नहीं की जा सकी है। लेकिन इतना स्पष्ट है कि इस भव्य प्राकृतिक घटना में तीन कारकों का योगदान है:- पृथ्वी का चुंबकीय क्षेत्र, वायुमंडल और पृथ्वी के बाहर से आने वाले आवेशित कण, जिन्हें कॉस्मिक किरणें कहते हैं। पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र में प्रवेश करने के बाद ये आवेशित कण वायु के कणों से टकराकर आवेशित कणों की संख्या को बढ़ा देते हैं। ये कण चुंबकीय ध्रुवों के निकट पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र में त्वरित होते हैं और अन्य कणों से टकराकर उन्हें आयनीकृत करते हैं। आयनों के उदासीनीकरण और उनमें इलेक्ट्रॉनों के पुनर्व्यवस्थित होने की प्रक्रिया में उत्पन्न विभिन्न तरंगदैर्ध्यों की प्रकाश तरंगों से ही ध्रुव ज्योतियों की रचना होती है।

पृथ्वी के अतिरिक्त उन अन्य खगोलिक पिंडों में भी जहां उपर्युक्त तीन कारक विद्यमान हैं, ध्रुव ज्योतियों जैसी परिघटनाएं देखी गई हैं। हब्बल अंतरिक्ष टेलिस्कोप ने बृहस्पति और शनि ग्रहों पर ध्रुव ज्योतियों के चित्र भेजे हैं। यूरेनस और नेप्च्यूयन पर भी इस तरह के प्रभाव देखे गए हैं। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि ये ज्योतियां चुंबकीय ध्रुवों के निकट देखने में आती हैं, भौगोलिक ध्रुवों के निकट नहीं, जो चुंबकीय ध्रुवों से लगभग 2000 किलोमीटर की दूरी पर हैं।

➢ 49 वैशाली
सेक्टर–4, वैशाली
गाजियाबाद–201012
ई–मेल: rsgupta_248@yahoo.co.in

सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण

■ डॉ.मनोज कुमार श्रीवास्तव

जब हम किसी वस्तु को पृथ्वी की सतह से बाहर की ओर फेंकते हैं, वह पुनः पृथ्वी पर ही आकर गिरती है। दक्षिणी ध्रुव के आस पास पिघलने वाले ग्लेशियर का पानी नीचे नहीं गिरता, अपितु उत्तरी ध्रुव की भांति नदियों में ही बहने लगता है। ईसा के लगभग 150 वर्ष के बाद मिश्र के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक टॉलमी ने कुछ गणनाएं करते हुए ग्रह नक्षत्रों के बारे में कुछ अभूतपूर्व संकेत दिए। चूँकि इन गणनाओं में पृथ्वी को केंद्र माना गया था इसलिए स्वयं टॉलमी भी नक्षत्रों के अपने रास्ते से हटकर चलने को नहीं समझ पा रहे थे। टॉलमी से भी लगभग चार सौ साल पहले एक ग्रीक ज्योतिषी एरिस्टोरकस ने कहा था कि ब्रह्माण्ड का केंद्र सूर्य है लेकिन यह विचार इतना असाधारण था कि इसकी एकदम उपेक्षा कर दी गयी।

सदियों बाद सन् 1540 के करीब पोलैंड के ज्योतिर्विद निकोलस कोपरनिकस ने अनुभव किया कि ग्रह नक्षत्रों कि जटिल गतियों को सूर्य केंद्रित अवधारणा से आसानी से समझा जा सकता है। सूर्य को केंद्र मानकर, ग्रह नक्षत्रों कि गतीय अनियमितता समाप्त हो जाती है। वस्तुतः इन्ही गतीय अनियमितता के कारण ही इन्हें ग्रीक भाषा में 'प्लेनेट' कहा गया जिसका तात्पर्य है "आवारा"।

ऐसे प्रेक्षणों का विश्लेषण करने के बाद सोलहवीं शताब्दी के महान वैज्ञानिक गैलीलियो गैलिली (सन् 1564–1642) ने सर्वप्रथम बताया कि प्रत्येक वस्तु चाहे उसका द्रव्यमान कुछ भी हो, पृथ्वी कि तरफ एक ही त्वरण से गिरती है। अर्थात पृथ्वी की ओर मुक्त रूप से गिरते हुए किसी भी पिंड के वेग में प्रति सेकंड वृद्धि नियत होती है। गैलीलियो ने कोपरनिकस की सूर्य केंद्रित अवधारणा को सही माना। यद्यपि दुनिया के माने हुए गणितज्ञ, वैज्ञानिक, ज्योतिर्विद तथा परीक्षणात्मक प्रतिभा के धनी गैलीलियो को कानूनविदों ने अपने ओहदे के बल पर उनके खिलाफ यह फैसला सुनाया कि ब्रह्मांड का केंद्र सूर्य न होकर पृथ्वी है। इसके लिए सत्तर साल के बूढ़े महान वैज्ञानिक को कोर्ट में निम्न हलफनामा देना पड़ा –

“मैं गैलीलियो गैलिली स्वर्गीय विसाजिओ गैलिली का पुत्र फ़्लोरेंस निवासी उम्र 70 साल, कचहरी में हाजिर होकर अपने असत्य सिद्धांत का त्याग करता हूँ कि सूर्य स्वयं स्थिर रहते हुए ब्रह्मांड की गतिविधि का केंद्र है। मैं कसम खाकर कहता हूँ कि इस सिद्धान्त को अब मैं कभी नहीं मानूँगा इसका समर्थन प्रतिपादन भी अब मैं किसी रूप से नहीं करूँगा” मौत के डर से इस महान वैज्ञानिक को अपने प्रेक्षणों द्वारा प्रमाणित सिद्धान्त से मुकरना पड़ा।

योहननीज कैप्लर (सन्1571–1630) जो कि एक जर्मन वैज्ञानिक थे, डेनमार्क के प्रसिद्ध नक्षत्रविद टाइको ब्राहे से प्राग में मिले। अपनी ईश्वरीय आस्था के चलते ब्राहे सूर्य को ब्रह्माण्ड का केंद्र नहीं मान पा रहे थे। ब्राहे के हजारों प्रत्यक्ष तथा सूक्ष्म नक्षत्रीय अन्वेषणों की मदद से उनके सहायक और उत्तराधिकारी कैप्लर ने ब्रह्मांड का केंद्र सूर्य को मानते हुए सन् 1618 में अपने सिद्धांतों को प्रकाशित किया। इन्ही सिद्धांतों को कैप्लर के नियम से जाना जाता है।

कैप्लर के नियम

कैप्लर के द्वारा प्रतिपादित तीन नियमों के द्वारा हम ग्रहीय गतियों का गणितीय विवेचन विस्तार से कर पाए थे। चूँकि ये नियम न्यूटन के पहले प्रतिपादित हो चुके थे, अतः न्यूटन ने इन्ही नियमों का सहारा लेते हुए सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण के नियम का प्रतिपादन किया।
कैप्लर के तीनो नियमों का उल्लेख निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

1. कक्षाओं का नियम : कैप्लर के अनुसार सूर्य के परितः घूमने वाले सभी ग्रहों की कक्षाएं दीर्घवृतीय होती हैं तथा सूर्य इस दीर्घवृत्त की किसी एक नाभि पर स्थित होता है। जैसा की चित्र–1 में दिखाया गया है। ऐसी दीर्घवृत्तीय कक्षा को एक पेंसिल (जो की दो तनी हुई डोरियों से क्रमशः S_1 व S_2 से बंधे हो) को डोरियों से तानते हुए S_1 & S_2 के परितः घूमते हुए बनाया जा सकता है।

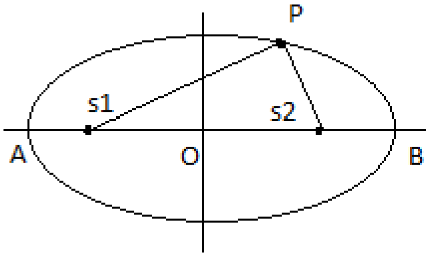

चित्र–1

सूर्य, दीर्घ वृत्त की किसी भी नाभि पर स्थित होता है । यदि सूर्य S_1 पर स्थित है तो बिंदु B को उपसौर तथा बिंदु A को अपसौर कहते हैं। जबकि सूर्य के S_2 पर स्थित होने से उपसौर बिंदु A तथा अपसौर बिंदु B हो जायेगा। चूँकि दोनों डोरियों हमेशा तनी रहती हैं अतः S_1P तथा S_2P का योग हमेशा नियत रहता है। दूरी AB को दीर्घ अक्ष तथा इसकी आधी दूरी

को अर्द्धदीर्घ अक्ष कहा जाता है। रेखा AB का मध्य बिंदु O दीर्घवृत्त का केंद्र कहलाता है। जब दीर्घवृत्त की दोनों नाभियां इसके केंद्र पर आकर मिल जाती हैं तो यही दीर्घवृत्त एक वृत्त बन जाता है जिसकी त्रिज्या अर्द्धदीर्घ अक्ष अर्थात OA या OB के बराबर होती है। पृथ्वी पर होने वाले ऋतु परिवर्तन इसी दीर्घवृत्तीय गति के कारण ही होते हैं।

2. क्षेत्रफलों का नियम : इस नियम के अनुसार सूर्य के परितः घूमने वाला कोई ग्रह समान समय में समान क्षेत्रफल बुहारता है। अतः ग्रहों की क्षेत्रीय चाल नियत रहती है। ज्ञातव्य है की ग्रह द्वारा आच्छादित क्षेत्रफल की माप ग्रह की दो स्थितियों को सूर्य से जोड़ने वाली दो रेखाओं एवं परिभ्रमण पथ के मध्य निर्मित क्षेत्र द्वारा की जाती है। चित्र–1 से स्पष्ट है की ग्रह को बिंदु A से B तथा C से D तक जाने में समान समय लगेगा, यदि क्षेत्र SAB तथा SCD के क्षेत्रफल समान है। उपरोक्त चित्र से यह भी स्पष्ट है कि सूर्य क़ी तरफ आते हुए ग्रहों क़ी रेखीय चाल बढ़ती जाती है जबकि दूर जाते हुए यह लगातार घटती जाती है।

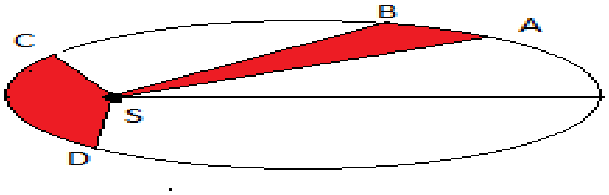

चित्र 2

क्षेत्रफलों के नियम को कोणीय संवेग के संरक्षण नियम द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। एक ग्रह जिसका द्रव्यमान M है , सूर्य के परितः घूम रहा है, यदि किसी समय 't' पर ग्रह का वेग 'v' है तथा सूर्य से दूरी 'r' है तो 'dt ' समय में ग्रह द्वारा प्रसर्प क्षेत्रफल

$$dA=\frac{1}{2}r\,.\,vdt$$

$$\frac{dA}{dt}=\frac{1}{2}rv=\frac{1}{2}\frac{mrv}{m}=\frac{L}{2m}---(1)$$

जहाँ 'L' ग्रह का कोणीय संवेग है। स्वतः गति करते हुए ग्रह का कोणीय संवेग संरक्षित रहेगा क्योंकि इस पर कोई बाहरी आघूर्ण कार्य नहीं कर रहा है। चूँकि ग्रह का द्रव्यमान नियत है अतः इसकी क्षेत्रीय चाल भी नियत रहती है।

3. आवर्तकालों का नियम : "किसी ग्रह के परिक्रमण काल का वर्ग उस ग्रह द्वारा अनुरेखित अर्द्ध दीर्घवृत्त अक्ष के घन के समानुपाती होता है।"

न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियम के पश्चात्, इस नियम के सत्यापन के लिए हमें यह सिद्धांत समझना होगा कि वक्रीय गति कर रहे किसी ग्रह को आवश्यक अभिकेंद्र बल, ग्रह एवं सूर्य के बीच लगने वाले गुरुत्वीय बल से प्राप्त होता है। अतएव ग्रह बिना किसी अतिरिक्त ऊर्जा स्रोत के, अनवरत सूर्य की परिक्रमा करता रहता है।

यदि परिक्रमा कर रहे ग्रह का द्रव्यमान M_p तथा सूर्य का द्रव्यमान M_s है तो दीर्घवृतीय कक्ष के किसी बिंदु जो सूर्य से r दूरी पर है

$$\frac{G M_s M_p}{r^2}=\frac{M_p v_o^2}{r}$$

$$v_o=\sqrt{\frac{G M_s}{r}}--(2)$$

ग्रह का आवर्तकाल (T) = $\frac{2\pi r}{v_o}=\frac{2\pi r^{\frac{3}{2}}}{\sqrt{GM_s}}--(3)$

$$T^2 \propto r^3$$

चूँकि एक पूरे चक्कर में r का औसत मान अर्द्ध दीर्घवृत्त अक्ष a के बराबर होता है अतः

$$T^2 \propto a^3$$

न्यूटन का सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण का नियम

कैप्लर के ग्रहीय गति के नियमों का अध्ययन करने के पश्चात् सर आइजक न्यूटन (सन् 1642–1727) ने एक अभूतपूर्व एवं व्यापक नियम का प्रतिपादन किया जिसे सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण के नियम से जाना जाता है। इस नियम के अनुसार ही पेड़ों से फलों का धरती पर गिरना, पृथ्वी का सूर्य के परितः घूमना इत्यादि, अनेक ब्रह्मांडीय घटनाओं को समझा जा सकता है। न्यूटन ने अनुभव किया कि R_m त्रिज्या की कक्षा में परिक्रमा करने वाले चन्द्रमा पर पृथ्वी के गुरुत्व के कारण एक अभिकेंद्र त्वरण आरोपित होता है जिसका परिमाण

$$a_m = \frac{v^2}{R_m}$$

$$= \left(\frac{2\pi R_m}{T}\right)^2 / R_m$$

$$= \frac{4 R_m \pi^2}{T^2} \quad --(4)$$

चूँकि आवर्तकाल T का मान लगभग 27.3 दिन तथा चन्द्रमा के कक्षीय त्रिज्या का मान लगभग 3.84×10^8 मीटर ज्ञात हो चुका था, अतः उपरोक्त समीकरण में प्रतिस्थापित करने पर न्यूटन ने देखा कि a_m का मान g की तुलना में काफी कम होता है। इससे यह स्पष्ट था कि कि दूरी के साथ गुरुत्वीय बल का मान कम होता जाता है। यदि हम यह मान लें कि त्वरण, दूरी के वर्ग के व्युत्क्रमानुपाती होता है तो

$$a_m \propto \frac{1}{R_m^2}$$

$$g \propto \frac{1}{R_e^2}$$

तथा

$$\frac{a_m}{g} = \frac{R_e^2}{R_m^2} \approx \frac{1}{3600} --(5)$$

जो g =9 .8 m /s^2 तथा समीकरण (4) से प्राप्त a_m के मान से मेलित है।

उपरोक्त प्रेक्षण के आधार पर न्यूटन ने सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण का नियम प्रतिपादित किया जिसके अनुसार, " किन्ही दो पिंडो (जिनके द्रव्यमान m_1 व m_2 है) के मध्य एक गुरुत्वीय आकर्षण बल लगता है जिसका मान द्रव्यमानों के गुणनफल के समानुपाती तथा उनके बीच कि दूरी के वर्ग के व्युत्क्रमानुपाती होता है।" इस नियम की व्यापकता परमाणु से लेकर गैलक्सी तक, सारे ब्रह्माण्ड में है। इसीलिए इसे 'सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण का नियम' कहा जाता है।

अतः

$$F \propto m_1 m_2$$

$$F \propto \frac{1}{r^2}$$

$$F = G\frac{m_1 m_2}{r^2} --(6)$$

जहाँ G एक नियतांक है जिसका मान पूरे ब्रह्माण्ड में नियत रहता है। अतः गुरुत्वाकर्षण बल पिंडो के बीच माध्यम पर निर्भर नहीं करता है। ज्ञातव्य है की इस बल के समकक्ष, दो आवेशों के मध्य लगने वाला कूलॉम बल उनके बीच माध्यम पर निर्भर करता है।

न्यूटन के इसी गुरुत्वाकर्षण नियम से गुरुत्वीय त्वरण g का मान ज्ञात किया जा सकता है। यदि किसी पिंड जिसका द्रव्यमान m है तो

पिंड का भार = पृथ्वी द्वारा पिंड पर लगाया गया बल

$$mg = G\frac{M_e m}{R_e^2}$$

$$g = \frac{GM_e}{R_e^2} -- (7)$$

उपरोक्त समीकरण से गैलीलियो द्वारा दिए गए उस कथन का भी सत्यापन हो जाता है जिसमें उन्होंने कहा था कि प्रत्येक वस्तु चाहे उसका द्रव्यमान कुछ भी हो, पृथ्वी की तरफ एक ही त्वरण से नीचे गिरती है, क्योंकि g का मान वस्तु के द्रव्यमान पर निर्भर नहीं करता। गुरुत्वीय त्वरण g का मान स्थान पर निर्भर करता है जिसे निम्न प्रकार से समझ सकते हैं।

1. पृथ्वी की सतह से ऊपर जाने पर: पृथ्वी की सतह से h दूरी पर g का मान

$$g = \frac{GM_e}{(R_e + h)^2} -- (8)$$

होता है। अतः जैसे–जैसे हम सतह से दूर जाते हैं, g का मान लगातार कम होता जाता है।

2. पृथ्वी की सतह पर: चूँकि पृथ्वी का आकर अंडाकार है अतः सतह पर g का मान बदलता रहता है। ध्रुवों पर पृथ्वी की त्रिज्या भूमध्य रेखा की तुलना में कम होने से, g का मान ध्रुवों पर अधिक होता है। सतह पर g के मान में परिवर्तन का एक और कारण पृथ्वी की अपनी कक्षा में घूर्णन गति भी है। जिसके कारण सतह पर रखी किसी वस्तु को भी वृत्तीय गति करनी पड़ती है जिसके लिए आवश्यक अभिकेंद्र बल, उपलब्ध गुरुत्वीय बल से ही प्राप्त होता है। परिणाम स्वरुप g का मान कुछ कम हो जाता है। यह कमी भूमध्य रेखा पर सबसे अधिक तथा ध्रुवों पर शून्य हो जाती है। इसे निम्न समीकरणों से समझा जा सकता है–

$$mg = m g' + m(R_e cos\theta)\omega^2$$

$$g' = g - (R_e cos\theta)\omega^2 -- (9)$$

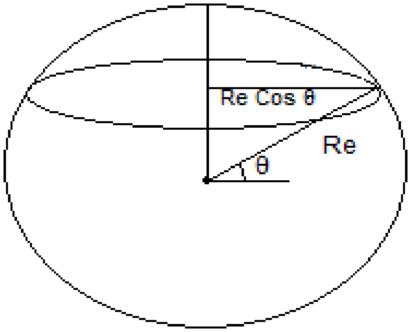

चित्र– 3

चित्र–3 से स्पष्ट है की भूमध्य रेखा पर θ का मान 0^0 तथा ध्रुवों पर 90^0 होता है।

अतः, $g' = g$ (ध्रुवों पर)

$$g' = g - R_e \omega^2 \quad \text{(भूमध्य रेखा पर)}$$

3. पृथ्वी की सतह से नीचे जाने पर: g का मान सतह से नीचे जाने पर घटता जाता है, यद्यपि पृथ्वी के केंद्र से दूरी घटती है। इसका कारण पृथ्वी की सतह से नीचे जाने पर इसके प्रभावी द्रव्यमान का घटना है। इसे निम्न समीकरण से समझ जा सकता है–

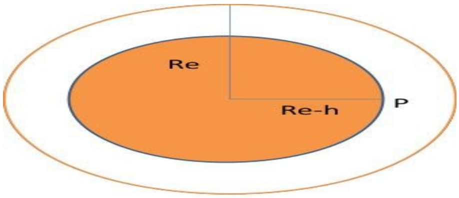

चित्र–4

सतह से h गहराई पर किसी बिंदु P पर गुरुत्वीय त्वरण g' है, तो

$$g' = \frac{GM_e'}{(R_e - h)^2}$$

जहाँ M_e' ,चित्र–4 में दर्शायी गयी छायांकित पृथ्वी का द्रव्यमान है

M_e' = पृथ्वी का घनत्व x छायांकित पृथ्वी का आयतन

$$M_e' = \frac{M_e}{\frac{4}{3}\pi R_e^3} \times \frac{4}{3}\pi\left(R_e - h\right)^3$$

$$= \frac{M_e\left(R_e - h\right)^3}{R_e^3}$$

ज्ञातव्य है कि P बिंदु पर शेष पृथ्वी द्वारा बन रहे गोलीय कोश द्वारा त्वरण शून्य होगा।
अतः,

$$g' = G\frac{M_e\left(R_e - h\right)^3}{\left(R_e - h\right)^2 R_e^3}$$

$$= \frac{G M_e}{R_e^2}\left(1 - \frac{h}{R_e}\right)$$

$$g' = g\left(1 - \frac{h}{R_e}\right) -- (10)$$

चूँकि पृथ्वी के केंद्र पर $h = R_e$ होगा अतः g का मान शून्य हो जाएगा।

गुरुत्वीय क्षेत्र की तीव्रता

गुरुत्वीय क्षेत्र के किसी बिंदु पर क्षेत्र की तीव्रता, प्रायोगिक द्रव्यमान पर लगने वाले गुरुत्वीय बल प्रति इकाई प्रायोगिक द्रव्यमान के बराबर होती है। चित्र–5 में गुरुत्वीय क्षेत्र की तीव्रता या गुरुत्वीय त्वरण g में होने वाले परिवर्तन को दर्शाया गया है।

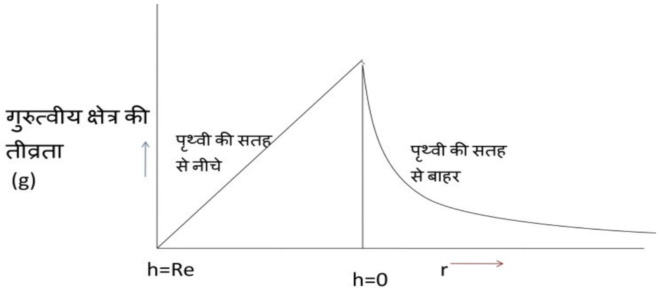

चित्र 5

गुरुत्वीय विभव

पृथ्वी के गुरुत्वीय क्षेत्र में किसी बिंदु पर गुरुत्वीय विभव का मान प्रायोगिक द्रव्यमान को अनंत से उस बिंदु तक लाने में प्राप्त कार्य प्रति इकाई प्रायोगिक द्रव्यमान द्वारा ज्ञात किया जाता है।

अतः गुरुत्वीय विभव $(V_{\text{गुरुत्वीय}}) = \frac{W_{\infty \text{ to } r}}{m_0}$

$$W_{\infty \text{ to } r} = \int_{\infty}^{r} F.dr = \int_{\infty}^{r} \frac{GM_e m_o}{r^2} dr = \frac{-GM_e m_o}{r}$$

$$\therefore V_{\text{गुरुत्वीय}} = \frac{-GM_e}{r} \quad \text{--------} \quad (11)$$

गुरुत्वीय विभव का ऋणात्मक होना यह दर्शाता है की गुरुत्वीय बल सदैव एक आकर्षण बल है अतः इस बल की उपस्थिति में कार्य सदैव प्राप्त होता है।

गुरुत्वीय स्थितिज ऊर्जा

चूँकि गुरुत्वीय बल एक संरक्षी बल है, (क्योंकि इस बल द्वारा किया गया कार्य विस्थापन के पथों पर निर्भर नहीं करता) अतः इस बल से उत्पन्न स्थितिज ऊर्जा का परिकलन किया जा सकता है। माना कि एक पिंड जिसका द्रव्यमान m है, पृथ्वी के केंद्र से r दूरी पर स्थित है। इस पिंड को $r = r_1$ से $r = r_2$ ($r_2 > r_1 > R_e$) तक ऊर्ध्वाधर पथ के अनुदिश ऊपर उठाने में किये गए कार्य का परिकलन करें तो–

$$W_{12} = \int_{r_1}^{r_2} \frac{GM_e m}{r^2} dr$$

$$W_{12} = -GM_e m\left(\frac{1}{r_2} - \frac{1}{r_1}\right) - -(12)$$

उपरोक्त समीकरण पिंड को $r = r_1$ से $r = r_2$ तक विस्थापित करने पर पिंड के अंदर संचित स्थितिज ऊर्जा में परिवर्तन को दर्शाता है। अब किसी बिंदु पर पिंड की स्थितिज ऊर्जा ज्ञात करने के लिए सन्दर्भ बिंदु अनंत पर लेते हैं जहाँ पर स्थितिज ऊर्जा का मान शून्य है, क्योंकि वहां गुरुत्वीय बल का प्रभाव ही नहीं है। अतः पिंड की पृथ्वी की सतह के बाहर किसी बिंदु P पर गुरुत्वीय स्थितिज ऊर्जा

$$U = \frac{-GM_e m}{r}$$

जहाँ $r_1 = \infty$ और $r_2 = r$ ऋणात्मक चिन्ह यह दर्शाता है कि किसी पिंड को अनंत से P बिंदु तक लाने में कार्य, हमें नहीं करना पड़ता, बल्कि प्राप्त होता है। ज्ञातब्य है कि m द्रव्यमान की वस्तु की पृथ्वी सतह से h दूरी पर गुरुत्वीय स्थितिज ऊर्जा का प्रचलित सूत्र mgh, दो स्थितियों (जिनके बीच दूरी h है) की गुरुत्वीय स्थितिज ऊर्जाओं का अंतर हैं अर्थात

$$mgh = U_{R_e+h} - U_{R_e}$$

जो कि धनात्मक होती है अर्थात पृथ्वी सतह से किसी वस्तु को ऊपर उठाने में कार्य करना पड़ता है।

पलायन चाल

सामान्यतया जब हम किसी वस्तु को पृथ्वी की सतह से बाहर की फेंकते हैं वह पुनः पृथ्वी पर वापस आ जाती है। अब हम यह विचार करते हैं कि यदि हम एक वस्तु को ऐसे फेंके की वह पुनः लौटकर वापस न आ सके, तो हम पातें हैं कि वस्तु को अनंत में फेंकना होगा। चूँकि अनंत पर किसी वस्तु की स्थितिज ऊर्जा शून्य होती है अतः कण को दी जाने वाली चाल, जिससे की उसकी गतिज ऊर्जा उस बिंदु पर उसके गुरुत्वीय स्थितिज ऊर्जा के बराबर हो जाये, तब उस कण की स्थितिज ऊर्जा शून्य हो जाएगी और वस्तु अनंत पर पहुँच जाएगी, अर्थात उसका पलायन हो जायेगा। किसी कण को दी जाने वाली न्यूनतम चाल, जिससे वह पुनः लौटकर वापस ना आए, पलायन चाल कहलाती है।

माना कि किसी कण जिसका द्रव्यमान m है तथा पृथ्वी के केंद्र से r ($>R_e$) दूरी पर स्थित है। यदि इसकी पलायन चाल v_e है तो,

$$\frac{1}{2} m v_e^2 = \frac{+GM_e m}{r}$$

$$v_e = \sqrt{\frac{2GM_e}{r}} --(14)$$

अतः समीकरण (14) से स्पष्ट है कि पलायन चाल का मान पलायन करने वाली वस्तु के द्रव्यमान पर निर्भर नहीं करता है।

भू–उपग्रह

भू–उपग्रह वह पिंड है जो पृथ्वी के परितः परिक्रमण करता है। ऐसे पिंडो कि गतियां भी ग्रहीय गतियों के समान कैप्लर के नियमों पर आधारित होती है। इन उपग्रहों कि कक्षाएं वृत्ताकार या दीर्घवृत्ताकार होती हैं। चन्द्रमा पृथ्वी का एक प्राकृतिक उपग्रह है जिसका परिक्रमण काल 27.3 दिन है जो कि उसकी अपने अक्ष में घूमने के घूर्णन काल के समान है। वर्ष 1957 के पश्चात् भारत सहित विभिन्न देशों ने मानव निर्मित भू–उपग्रह, पृथ्वी के परितः भिन्न–भिन्न कक्षाओं में प्रेक्षित किए हैं। इन कृत्रिम भू–उपग्रहों का उपयोग मौसम विज्ञान, दूर संचार व अन्य क्षेत्रों में किया जा रहा है जिससे मानव जीवन सुविधाजनक हुआ है।

अब हम पृथ्वी के केंद्र से (R_e+h) दूरी पर स्थित किसी उपग्रह कि चर्चा करेंगे। यदि उपग्रह का द्रव्यमान M_s तथा इसकी कक्षीय चाल v_o है तो इस कक्षा के लिए आवश्यक अभिकेंद्र बल

$$F_{(\text{अभिकेंद्र})} = \frac{M_s v_o^2}{(R_e+h)} \qquad ----(15)$$

होगा जो इसे गुरुत्वाकर्षण बल द्वारा प्राप्त होगा। अतः उपग्रह को परिक्रमण हेतु आवश्यक एवं पर्याप्त बल, गुरुत्वाकर्षण बल से प्राप्त हो जाता है और उसे करोड़ों किलोमीटर का पथ पार करने के लिए किसी अतिरिक्त ईंधन कि आवश्यकता नहीं होती।

$$F_{(\text{गुरुत्वाकर्षण})} = \frac{GM_e M_s}{(R_e+h)^2} \qquad ---(16)$$

अतः,

$$F_{(\text{अभिकेंद्र})} = F_{(\text{गुरुत्वाकर्षण})}$$

$$\frac{M_s v_o^2}{(R_e+h)} = \frac{GM_e M_s}{(R_e+h)^2}$$

$$v_o = \sqrt{\frac{GM_e}{R_e+h}} --(17)$$

अब हमें इस उपग्रह को इसकी कक्षा में [जिसकी त्रिज्या (R_e+h) है] उपरोक्त कक्षीय चाल से आरोपित करना होता है, तत्पश्चात यह उपग्रह अनवरत पृथ्वी के परितः परिक्रमा करता रहता है।

यदि $h << R_e$ है तो

$$v_o = \sqrt{\frac{GM_e}{R_e}} = \sqrt{gR_e} --(18)$$

तथा इसका आवर्तकाल

$$T = \frac{2\pi R_e}{\sqrt{gR_e}} \approx 85 \quad \text{मिनट}$$

यदि उपग्रह का आवर्तकाल, पृथ्वी के अपनी अक्ष के परितः घूर्णन काल (23 घंटे 56 मिनट 4 सेकंड) के बराबर हो जाये तथा इसकी वृत्तीय कक्षा पृथ्वी के विषुवत वृत्त के तल में हो, तो उपग्रह पृथ्वी के साथ–साथ चलते हुए इसके एक ही क्षेत्र के ऊपर बना रहेगा। ऐसे उपग्रह को भू–स्थैतिक या तुल्यकाली उपग्रह कहा जाता है। संचार क्षेत्र में इन्हीं उपग्रहों का उपयोग किया जाता है। इनकी पृथ्वी तल से ऊंचाई निम्न समीकरण से ज्ञात की जा सकती है–

$$T = \frac{2\pi \left(R_e + h\right)^{\frac{3}{2}}}{\sqrt{gR_e}} \quad = \text{23 घंटे 56 मिनट 4 सेकंड}$$

जो लगभग 35800 किलोमीटर होती है।

संचार के क्षेत्र में तुल्यकाली उपग्रहों का उपयोग करने से हम वहां भी रेडियो तरंगों को भेज सकते हैं जहाँ पृथ्वी की वक्रता के कारण तरंगे सीधी नहीं पहुँच सकती। 10 मेगा हट्र्ज़ से अधिक आवृत्ति वाली विद्युत तरंगें आयन मंडल से परावर्तित नहीं हो पाती, अतः दूरदर्शन आदि के सिग्नलों को इन्ही ऊँची आवृत्ति पर तुल्यकाली उपग्रह (जो स्थिर प्रतीत होता है) पर भेज दिया जाता है। वह इन सिग्नलों को ग्रहण कर वापस पृथ्वी के बड़े क्षेत्र में भेज देता है। भारत द्वारा अंतरिक्ष में भेजे गए इनसेट उपग्रह समूह ऐसे ही तुल्यकाली उपग्रह हैं जिसका प्रयोग भारत में दूरसंचार के लिए किया जा रहा है।

उपग्रह की दूसरी श्रेणी को ध्रुवीय उपग्रह कहते हैं। इनकी ऊंचाई 500 से 800 किलोमीटर तक होती है और ये पृथ्वी के ध्रुवों के परितः उत्तर–दक्षिण दिशा में घुमते हैं जबकि पृथ्वी अपने अक्ष पर पश्चिम से पूर्व की ओर घूर्णन करती है। चूँकि ऐसे उपग्रहों का आवर्तकाल काम (लगभग 100 मिनट) होता है अतः ये पृथ्वी के किसी क्षेत्र से दिन में कई बार गुजरते हैं। इन उपग्रहों पर लगे उच्च गुणवत्ता वाले कैमरों से पूरी पृथ्वी का सर्वेक्षण किया जा सकता है। इस प्रकार के उपग्रहों द्वारा प्राप्त सूचनाएं मौसम विज्ञान तथा पर्यावरणीय अध्ययन आदि में बहुत महत्वपूर्ण होती हैं।

भारहीनता

किसी पिंड का भार वह बल है जिससे पृथ्वी उस पिंड को अपनी ओर खींचती है। जब हम किसी सतह पर खड़े होते हैं तो हमें अपने भार का अनुभव इसलिए होता है कि वह सतह भार के विपरीत हमारे ऊपर एक बल लगाकर हमें विराम कि स्थिति में रखता है।

अब हम एक लिफ्ट के अंदर होने की कल्पना करते हैं। यदि लिफ्ट की रस्सी टूट जाये और लिफ्ट, गुरुत्वीय त्वरण g से नीचे की ओर गिरने लगे, तो लिफ्ट की सतह, जिस पर हम खड़े हैं, हमारे भार के विपरीत बल आरोपित नहीं कर पायेगी, क्योंकि हम भी गुरुत्वीय त्वरण g से नीचे गिर रहे होंगे। ऐसी स्थिति में हमें अपने भार का अनुभव नहीं होगा और इसी घटना को भारहीनता कहते हैं।

पृथ्वी के परितः परिक्रमण करने वाले किसी उपग्रह में प्रत्येक वस्तु उपग्रह के साथ घूम रही होती है और उस पर लगने वाला गुरुत्वाकर्षण बल, उसे पृथ्वी के परितः घुमाने के लिए आवश्यक अभिकेंद्र बल के रूप में प्रयोग हो जाता है। अतः उपग्रह के अंदर भी प्रत्येक वस्तु को भारहीनता का अनुभव होता है और इसके अंदर किसी व्यक्ति को बैठने के लिए कुर्सी की आवश्यकता नहीं होती।

➢ असिस्टेंट प्रोफेसर
भौतिकी
आर्मी कैडेट कॉलेज
इण्डियन मिलिटरी एकेडमी
देहरादून–248007

हमारा पर्यावरण एवं समस्याएैं

■ डॉ. रोली श्रीवास्तव

पर्यावरण पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व में एक बड़ी भूमिका निभाता है। यह मनुष्यों, पशुओं और अन्य जीवित चीजों को बढ़ने और स्वाभाविक रूप से विकसित होने में मदद करता है। पर्यावरण उन सभी भौतिक, रासायनिक एवं जैविक कारकों की समष्टिगत इकाई है जो किसी जीवधारी या परितंत्रीय आबादी को प्रभावित करते हैं। यह हमारे जीवन को प्रभावित करने वाले सभी घटनाओं के समुच्चय से निर्मित इकाई है। पर्यावरण के जैविक संघटकों में सूक्ष्म जीवाणु से लेकर कीड़े–मकोड़े, सभी जीव–जन्तु और पेड़–पौधे एवं उनसे जुड़ी सभी जैव–क्रियाएं आती हैं एवं अजैविक संघटकों में जीवनरहित तत्व और उनसे जुड़ी प्रक्रियाएं आती हैं जैसे– पर्वत, नदी, चट्टानें, हवा, पानी और जलवायु आदि।

वैश्विक पर्यावरण

विज्ञान और तकनीक के व्यापक प्रयोग से पर्यावरण में हो रहे परिवर्तन के कारण पर्यावरण को दो प्रखण्डों में विभाजित किया जा सकता है – प्राकृतिक या नैसर्गिक पर्यावरण और मानव निर्मित पर्यावरण अनेक विद्वानों ने पर्यावरण की परिभाषा अपने–अपने अनुसार की हैं उदाहरणार्थ प्रमुख पारिस्थितिकीविद् ए.जी. टांसले के अनुसार, "पर्यावरण प्रभावकारी दशाओं का सम्पूर्ण योग है जिसमें जीव रहते हैं।" भूगोलवेत्ता एच फिटिंग के अनुसार, “जीवों के पारिस्थितिक कारकों का योग पर्यावरण है।

जनसंख्या की तीव्र वृद्धि या प्राकृतिक संसाधनों के अन्धाधुन्ध दोहन से पर्यावरण सन्तुलन डगमगा चुका है।

मानव अपनी बुद्धि, कौशल, ज्ञान, विज्ञान, मीमांसा, तकनीकी प्रखरता के द्वारा पर्वतों को तोड़कर उसके पत्थर से सड़क बनाना, रेलमार्ग बनाना, नदियों को रोककर बांध बनाना, जंगलो को काटकर खेती करना, कारखाने बनाना जैसी विविध सामाजिक क्रियाओं के कारण हो रहे विकास के कारण पर्यावरण में हो रहा असंतुलन प्रदूषण को जन्म दे रहा है।

औद्योगिकीकरण एवं शहरीकरण ने प्रकृति की व्यवस्था डगमगा दी है। अन्न उत्पादन की अत्यधिक ललक के कारण रासायनिक उर्वरक एवं पेस्टीसाइड्स के बढ़ते अन्धाधुन्ध प्रयोग से मृदा प्रदूषण बढ़ने के कारण धरती कहीं अम्लीय तो कहीं क्षारीय होती जा रही है जिससे जल क्षमता का ह्रास हो रहा है एवं जल स्तर नीचे चला जा रहा है। इससे आने वाली पीढ़ी को स्वच्छ वायु एवं स्वच्छ जल मिल पाना सबसे बड़ी चुनौती होगी।

प्रदूषण पर्यावरणीय विश्वव्यापी समस्या है जो प्रकृति के मौलिक तत्वों जल, वायु तथा मिट्टी के अपने मौलिक अवस्था में न रहने के कारण उत्पन्न होती है। प्रदूषण गैसें मनुष्य एवं जीवधारियों में अनेक जानलेवा बीमारियों का कारण बन सकती हैं एक अध्ययन में ज्ञात हुआ कि वायु प्रदूषण से केवल 36 शहरों में प्रतिवर्ष लगभग 51,779 लोगों की अकाल मृत्यु हो जाती है। कोलकाता, कानपुर तथा हैदराबाद में वायु प्रदूषण से होने वाली मृत्युदर पिछले 3–4 सालों में दोगुनी हो गयी है रासायनिक कचरा और प्रदूषित पानी तथा शहरी कूड़ा–करकट नदियों में छोड़ दिया जाता है, इससे नदियां प्रदूषित होने लगी हैं। पानी में कार्बनिक पदार्थ मुख्यत: मल–मूत्र के सड़ने से अमोनिया और हाइड्रोजन सल्फाइड जैसी गैसें उत्सर्जित होती हैं और जल में घुली ऑक्सीजन कम हो जाती है, जिससे मछलियाँ मरने लगती हैं। प्रदूषित जल के रोगाणु से ब्लड कैंसर, जिगर कैंसर, त्वचा कैंसर, हड्डी रोग, हृदय एवं गुर्दा की तकलीफें एवं पेट की बीमारियाँ हो सकती हैं। विश्व में प्रतिवर्ष 1.1 करोड़ हेक्टेयर वन काटा जा रहा है। अकेले भारत में 10 लाख हेक्टेयर वन काटे जा रहे हैं इससे वन्यजीव लुप्त हो रहे हैं। कीटनाशकों के प्रयोग से जमीन के जैविक चक्र और मनुष्य के स्वास्थ्य को क्षति पहुँच रही है। हानिकारक कीटों के साथ मकड़ी, केचुऐं, मधुमक्खी आदि फसल के लिए उपयोगी कीट भी मर जाते हैं। फल, सब्जी, अनाज में कीटनाशक का जहर लगा रह जाता है, परम्परागत रूप से प्रदूषण में वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, रेडियोधर्मी प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण आते हैं। गम्भीर प्रदूषण उत्पन्न करने वाले प्रमुख स्रोत रासायनिक उद्योग, तेल रिफाइनरीज्, आण्विक अपशिष्ट स्थल, कूड़ाघर, प्लास्टिक उद्योग, कार उद्योग, पशुगृह, दाहगृह आदि हैं। आण्विक संस्थान, तेल टैंक, दुर्घटना होने पर गम्भीर प्रदूषण पैदा करते हैं। क्लोरीनेटेड हाइड्रोकार्बन्स, भारी तत्व, लेड, कैडमियम, क्रोमियम, जिंक, आर्सेनिक, बेन्जीन आदि प्रमुख प्रदूषक तत्व हैं।

'सुनामी' के पश्चात् अध्ययन से ज्ञात हुआ कि तटवर्ती मछलियों में भारी तत्वों का प्रतिशत बहुत बढ़ गया। विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ कैंसर, एलर्जी, अस्थमा आदि अधिक संख्या में होने लगी हैं। कुछ बीमारियों को उन्हें पैदा करने वाले प्रदूषक का ही नाम दे दिया गया है। मरकरी से उत्पन्न बीमारी को 'मिनामटा' कहा जाता है।

प्राकृतिक वातावरण हवा, ज्वालामुखी, समुद्री जानवरों, पक्षियों की आवाजों से भरा होता हैं। मनुष्य द्वारा निर्मित ध्वनियों में मशीनों, कारों, रेलगाड़ियों, हवाई जहाजों, पटाखों आदि से उत्पन्न ध्वनियाँ शामिल हैं, जो ध्वनि प्रदूषण का मुख्य कारण है। यह शोर न केवल चिड़चिड़ाहट एवं गुस्सा पैदा करता है बल्कि ध्वनियों से रक्त–प्रवाह को प्रभावित कर हृदय–संचालन की गति को तीव्र कर देता है। बढ़ता शोर स्नायविक बीमारी, नर्वस ब्रेक डाउन को जन्म देता है। मुम्बई संसार का तीसरा सबसे अधिक शोर वाला नगर है, यहाँ ध्वनि 90 डेसीमल से अधिक होती है। जब जहरीले पदार्थ झीलों, झरनों, नदियों, सागरों तथा अन्य जलाशयों में जाते हैं तो वह उसमें घुल जाते हैं तथा नीचे तलहटी में बैठ जाते हैं। इससे पानी प्रदूषित हो जाता है और जल प्रदूषण का कारण बन जाता है। प्रदूषित जल जलीय जीवन को नष्ट कर देता है। अतीत में मानव, पशुओं और वनस्पति तत्वों से बना साबुन सभी तरह की धुलाई के लिए प्रयोग करते थें किन्तु आज अधिकतर सफाई उत्पाद अप्राकृतिक डिटर्जेन्ट से बनते हैं जो पेट्रोरासायनिक उद्योग के अन्तर्गत आते है। इसमें फास्फेट होता है जो पानी को हल्का बनाता है तथा अन्य रसायन पानी में रहने वाले सभी प्रकार के जीवन को प्रभावित करते हैं। प्रदूषण का भयंकर प्रभाव मानव के साथ–साथ पशुओं, मछलियों एवं चिड़ियों पर भी पड़ता है।

वायु में हानिकारक पदार्थों को छोड़ने से वायु प्रदूषित हो जाती है। यह स्वास्थ्य समस्या पैदा करती है तथा पर्यावरण एवं सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाती है। उद्योग, वाहन, शहरीकरण, ताप विद्युत–गृह, सीमेण्ट उद्योग, लोहे के उद्योग, तेल–शोधक उद्योग, पेट्रोरासायनिक उद्योग वायु प्रदूषण में वृद्धि के मुख्य कारण हैं। हानिकारक गैसें ऊपर वातावरण में पहुँचकर अन्य गैसों के साथ मिलकर ओजोन पर्त को प्रभावित करती हैं जो सूर्य की हानिकारक अल्ट्रावायलेट किरणों को रोकने का कार्य करती हैं। यह अम्लीय वर्षा का कारण बनती है। यह पेट्रोल, डीजल, कोयले को जलाने से उत्पन्न होती है। बच्चों को सर्दियों में सांस की बीमारियों के प्रति संवेदनशील बनाती हैं। सस्पेंडेड पार्टिकुलेट मैटर हवा में धुआँ–धूल वाष्प के कण के रूप में लटके रहते हैं। यह धुंध पैदा करते हैं एवं दूर देखने की सीमा कम कर देते हैं। इन्हीं के महीन कण सांस लेने से फेफड़े में चले जाते हैं एवं श्वसन क्रिया को प्रभावित करते हैं।

विश्व के कई हिस्सों में व्हेल तथा डॉल्फिन जब बहकर समुद्र के किनारे लगी तो इसमें भारी मात्रा में खतरनाक रासायनिक पदार्थ मिले। रासायनिक प्रदूषण के विभिन्न स्रोत हैं घर से निकलने वाली नालियां, औद्योगिक निस्तारित कूड़ाघरों में होने वाला रिसाव, वातावरण

में झरने वाले कण, घरेलू अपशिष्ट, दुर्घटनाओं के कारण समुद्र में गिरने वाला तेल, उत्पाद क्षेत्रों से निकलने वाले खदानों के अपशिष्ट, कृषि अपशिष्ट इसके मुख्य कारण हैं। भोपाल गैस त्रासदी इसका एक मुख्य उदाहरण है। औद्योगिक क्षेत्रों में तरह–तरह के कैन्सर, विभिन्न त्वचा की बीमारियाँ, जन्मजात विकृतियाँ, आनुवंशिक असमानता लगातार बढ़ रही हैं साथ ही साथ स्वाभाविक रूप से सांस लेने में तकलीफ, पाचन, रक्तचाप तथा संक्रामक बीमारियों में भी बढ़ोत्तरी हुई है।

वर्तमान में भौतिकवाद की अंधाधुन्ध दौड़ और मानव के विकास के लिए प्राकृतिक संसाधनों का दोहन पर्यावरण संतुलन के लिए गम्भीर चुनौती है। इसके कारण बढ़ती कार्बन डाई–ऑक्साइड की मात्रा के कारण पृथ्वी का तापमान लगातार बढ़ रहा है जो ग्लोबल वार्मिंग या वैश्विक तापन का मुख्य कारण है। संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट के अनुसार आगामी वर्षों में विश्व के औसत तापमान में प्रतिदशक 0.3 प्रतिशत की वृद्धि होगी। इस दर से सन् 2100 तक पृथ्वी का तापमान लगभग 3.6 डिग्री सेल्सियस और बढ़ जायेगा। इसके लिए मानव द्वारा प्रकृति का अत्यन्त दोहन, पेड़ों का काटा जाना, पहाड़ों का नष्ट होना, जीवाश्म ईंधनो का अंधाधुन्ध प्रयोग, ग्लेशियरों का पिघलना आदि उत्तरदायी हैं।

पर्यावरण प्रदूषण

आज ग्लोबल वार्मिंग अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिज्ञों, पर्यावरणविदों, सामाजिक कार्यकर्ताओं एवं वैज्ञानिकों के बीच चिन्ता का विषय बना हुआ है। भारत सरकार ने कोपनहेगेन शिखर सम्मेलन के पहले ही अपनी ओर से सन् 2020 तक कार्बन उत्सर्जन क्षमता 20 से 25 प्रतिशत घटाने का प्रस्ताव दिया है। वर्तमान समय में पृथ्वी और हमारा जनजीवन अत्यन्त कठिन दौर से गुजर रहा है। युवा पीढ़ी होने के कारण स्कूल तथा कॉलेज के बच्चों एवं शिक्षकों की पर्यावरण की रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका है। इसलिए पर्यावरण के संरक्षण का संकल्प लेने का आह्वान करना होगा। विकास की रफ्तार को कायम रखते हुए पर्यावरण को बचाए रखना आज सबसे बड़ी चुनौती है। इसके लिए मुख्य रूप से ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन कम करना तथा वाहनों से निकलने वाले धुएं का प्रभाव कम करना होगा। इसका एक अन्य कारण सी.एफ.सी.

है जो रेफ्रीजरेटर्स एवं अग्निशामक यंत्रों से निकलती है। यह धरती के ऊपर बने एक प्राकृतिक आवरण ओजोन पर्त को नष्ट कर देती है इससे घातक पराबैंगनी किरणें धरती पर पहुँचकर उसे गर्म बनाती हैं।

पर्यावरण में बदलाव के कारण जलवायु परिवर्तन जैसे गर्मी के मौसम में बढ़ोत्तरी, वायु चक्रण के रूप में बदलाव, जेट स्ट्रीम, बिन मौसम बरसात, बर्फ की चोटियों का पिघलना, ओजोन का क्षरण, ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन, भयंकर तूफान, चक्रवात, बाढ़, सूखा आदि होते हैं। वर्ष 2007 का नोबेल शान्ति पुरस्कार पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में कार्य करने वाली संयुक्त राष्ट्र की संस्था (आई.पी.सी.सी.) और पर्यावरणवादी अमेरिका के पूर्व उपराष्ट्रपति अल गोर को दिया गया था। पर्यावरण संरक्षण के लिए हमें अनेकों प्रयास करने होंगे जैसे क्योटो संधि का पालन, पेट्रोल–डीजल और बिजली का कम प्रयोग, जंगलों की कटाई पर रोक, अधिक से अधिक पेड़ लगाना, ऐसे रेफ्रीजरेटर्स का निर्माण करना जिसमें सी.एफ.सी. का प्रयोग न हो एवं ऐसे वाहन बनाना जिसमें कम से कम धुआँ निकलें।

इसी विषय पर एक फिल्म 'इन इनकन्वीनिएन्ट ट्रुथ' बनायी गयी है। यदि पर्यावरण संरक्षित न रहा तो 'सुनामी लहरों का आतंक' हिमालय में गंगोत्री समेत हिमनदों का पिघलना, गुजरात के भुज में आए भूकम्प एवं विश्व में ज्वालामुखी का सक्रिय होने जैसी घटनाएं आम हो जायेंगी, इससे तट पर रहने वाले लोगों को पलायन करके दूसरी जगह शरण लेना पड़ेगा। इससे गृहयुद्ध की सम्भावना बढ़ेगी।

केदारनाथ त्रासदी एवं नेपाल में आया भयंकर भूकम्प इसके ताजे उदाहरण हैं। 2050 तक ग्लेशियरों के पिघलने से भारत, चीन, पाकिस्तान और अन्य एशियाई देशों में आबादी का निर्धन इलाका सबसे अधिक प्रभावित होगा। जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप विश्व के मानसूनी क्षेत्रों में वर्षा में वृद्धि होगी जिससे बाढ़, भूस्खलन तथा भूमि अपरदन जैसी समस्याएं उत्पन्न होंगी। जल की गुणवत्ता में गिरावट आएगी एवं पीने के पानी की कमी हो जाएगी।

आज का युग पर्यावरणीय चेतना का युग है। प्रत्येक व्यक्ति पर्यावरण के प्रति चिन्तित है। आज हर व्यक्ति स्वच्छ एवं प्रदूषणमुक्त पर्यावरण में रहने के लिए अपने अधिकारों के प्रति सजग होने लगा है। प्रकृति में पर्यावरण को शुद्ध एवं नियन्त्रित करने की अभूतपूर्व क्षमता होती है। प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करके पारिस्थितिक तंत्र के संतुलन को बिगाड़ना पर्यावरण प्रदूषण का मूल कारण है। पौधों एवं पक्षियों की हजारो प्रजातियाँ विलुप्त होती जा रही हैं गिद्ध और चील जैसे पक्षियों तथा कीट–पतंगो की संख्या में कमी आने से मृत पशुओं की सफाई, बीजों का प्रकीर्णन तथा परागण प्रभावित होता है।

पर्यावरण के रूखेदन के कारण तथा गर्मी की वजह से अमेजन के बरसाती जंगल नष्ट होते जा रहे हैं, साइबेरियाई क्षेत्र में जमी बर्फ पिघल रही है, समुद्री धाराओं के बहाव में परिवर्तन होने के कारण पहाड़ों पर गर्मी बढ़ती जा रही है।

अत: मानव को अपनी अस्मिता बचाए रखने के लिए बदलते पर्यावरण और बदतर होते मौसम के कारणों की समीक्षा करके गम्भीरता से उससे उभरने का उपाय सोचना होगा तभी मानव जीवन की रक्षा हो सकेगी तथा आगामी पीढ़ियों को भी सुरक्षित पर्यावरण प्राप्त हो सकेगा।

इंग्लैण्ड के अखबार 'आब्जर्वर' के अनुसार संसाधनों के दोहन से समुद्र से मछलियाँ गायब हो जायेंगी, कार्बन डाई आक्साइड सोखने वाले सारे जंगल उजड़ जाएंगे एवं शुद्ध पानी का भयानक संकट उत्पन्न हो जाएगा। जीवाश्म ईंधन के बढ़ते प्रयोग से जलवायु परिवर्तन हो रहा है।

इस संकट का सबसे बड़ा कारण सभ्यता, विकास और औद्योगिकीकरण के लिए कोयले और पेट्रोलियम जैसे जीवाश्म ईंधन का अन्धाधुन्ध उपयोग, जनसंख्यावृद्धि, जल का बेहिसाब उपयोग, वनों की अन्धाधुन्ध कटाई, वायुमण्डल के सुरक्षा कवच ओजोन पर्त का क्षीण होना, ये सब ऐसे कारण हैं जिससे विश्व का मानव समुदाय भयाक्रान्त है। बेटी एवं बेटे के जन्मदिन के दिन वृक्षारोपण अवश्य करें बेटी के पैदा होने पर पांच इमारती वृक्ष जैसे– सागौन, शीशम, साल, नीम, साखू आदि का वृक्षारोपण खुद की जमीन में एवं शासकीय जमीन पर करके उसकी परवरिश करें। 20 वर्षों के बाद, लड़की का विवाह होते समय शासन की ओर से 2 लाख का चेक देय हो। बेटे के जन्म पर पांच फलदार पौधे लगाएं जाएं। इसके लिए सरकार द्वारा नौकरी के लिए होने वाले साक्षात्कार में कुछ अंक बोनस के रूप में दिए जाएं। प्रशासन की ओर से पहल करने पर इसके दूरगामी सुखद परिणाम देखने को मिलेंगे। ऐसा न करने से प्रदूषण, बम विस्फोट से ज्यादा खतरनाक होगा। ओजोन की रक्षा कवच में छेद, अपक्षय के कारण पराबैंगनी किरणों से तेजाबी एवं काली वर्षा प्राय: हर जगह दिखने लगेगी।

इन चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रदूषणरहित टेक्नोलॉजी का निर्माण करना होगा। पौधरोपण के साथ–साथ उसका संरक्षण भी आवश्यक होगा तब कहीं जाकर 20–30 वर्षों में ग्लोबल वार्मिंग के कहर से बचा जा सकता है वरना आने वाले दिनों में बहुत जल्द मनुष्य को शुद्ध वायु के लिए जगह–जगह बने ऑक्सीजन बूथों पर जाना होगा। उन्मुक्त वातावरण में पूर्वजों के घूमने वाली बात तब शायद कहावत हो जाएगी।

वृक्ष है तो जल है, जल है तो कल है और जल से ही जीवन है। हवाई जहाज से सर्वाधिक प्रदूषण होता है। 46 हजार हेक्टेयर से जितनी ऑक्सीजन निकलती है, उतनी ही कार्बन डाई ऑक्साइड हवाई जहाज द्वारा एक दिन में वायुमण्डल में फैल जाती है। उद्योगों एवं मोटर वाहनों द्वारा धुएँ का बढ़ता उत्सर्जन एवं वृक्षों की निर्मम कटाई प्रदूषण बढ़ने के मुख्य कारण है। कारखानों, बिजलीघरों एवं मोटरवाहनों में खनिज ईंधनों (डीजल, पेट्रोल, कोयला आदि) के अन्धाधुन्ध प्रयोग से कार्बन डाई ऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड आदि गैसें निकलती हैं। इसके कारण हरित गृह प्रभाव उत्पन्न होता है एवं पृथ्वी के तापमान में वृद्धि एवं मौसम में आवांछनीय बदलाव होते हैं। अन्य औद्योगिक गतिविधियों, एयर कंडीशनर एवं रेफ्रीजरेटर से सी.एफ.सी. नामक मानव निर्मित गैस का उत्सर्जन होता है, जो उच्च वायुमण्डल के ओजोन परत को नुकसान पहुँचाती है। सूर्य के खतरनाक बैंगनी विकिरण से वायुमण्डल का तापमान लगभग 3 डिग्री सेल्सियस बढ़ने की संभावना है। लगातार बढ़ते तापमान से दोनों ध्रुवों पर बर्फ गलने लगेगी। इससे समुद्र का जलस्तर एक से तीन मिलीमीटर प्रतिवर्ष की दर से बढ़ेगा। इससे मालद्वीव और बांग्लादेश जैसे समुद्र के समीप के देश डूब जाएंगे।

कुछ क्षेत्रों में सूखा पड़ेगा, कुछ जगहों पर तूफान आएंगा और कहीं भारी वर्षा होगी। वैश्विक मत सर्वेक्षण दर्शाता है कि भारत वास्तव में ही टिकाऊ विकास एवं इसके तीन आयाम सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरण के प्रति प्रतिवद्ध है फिर भी आर्थिक परिस्थितियों को देखते हुए संसाधनों की अपेक्षित मात्रा प्राप्त करने के लिए चुनौतियां भी विकट हैं।

सन् 1972 में स्टाकहोम में मानव पर्यावरण पर एक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें विभिन्न प्रयासों द्वारा पर्यावरण की समस्याओं से जूझने की आवश्यकता पर बल दिया गया। आज की परिस्थितियों में विकास को प्राप्त करने के साथ–साथ पर्यावरण को भी सुरक्षित रखने के लिए सुरक्षा के उपायों को अपनाना जरूरी हो गया है।

आयातित तकनीकों पर आधारित अनेकों औद्योगिक इकाइयां नए–नए क्षेत्र में स्थापित की जा रही है इस क्रम में वनों को नष्ट किया जा रहा है। स्थानीय निवासी विस्थापित हो रहे हैं, औद्योगिक प्रदूषण बढ़ रहा है। पॉवर, रसायन, तेल आदि के उच्च तकनीक वाले उद्योग लग रहे हैं जिससे पर्यावरणीय सन्तुलन प्रभावित हो रहा है।

कुल ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन का बीस प्रतिशत सिर्फ वनों के विनाश के कारण हो रहा है। जंगलों को बचाने से, ये पर्यावरण और जलवायु को नुकसान पहुँचाएं बिना लगातार समुदायों एवं पारिस्थितिकी तंत्र की मदद करेंगे। वन ही हमारी जीविका, समाज, संस्कृति और जलवायु का आसरा है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के अनुसार ग्रीन इकोनामी वह है जिसमें

लोगों को मन चाही सेहत के साथ– साथ सामाजिक समानता हो और पर्यावरण के खतरे को कम करने के साथ उसकी कमियों को दूर करती हो।

रोकथाम

ध्वनि प्रदूषण से बचने के लिए घर में टी.वी. धीमी चलाएं, कार का हार्न अनावश्यक न बजाए, लाउडस्पीकर का प्रयोग न करें। ध्वनि प्रदूषण से सम्बन्धी कानून का पालन करें। वायु प्रदूषण को कम करने के लिए फैक्ट्री, वाहन के धुएँ पर नियंत्रण करें, पटाखों का प्रयोग न करें, कूड़े–कचरे को नियत स्थान पर डाले। जल प्रदूषण से बचने के लिए नालों, कुओं, तालाबों, नदियों में गन्दगी न हो, सार्वजनिक जल वितरण के साथ छेड़छाड़ न करें।

रासायनिक प्रदूषण से बचने के लिए औद्योगिक कचरों का विसर्जन नियत स्थान पर करें, रासायनिक खाद की जगह जैविक खाद का प्रयोग करें, प्लास्टिक की जगह कागज का प्रयोग करें, पालिस्टर के स्थान पर सूती कपड़े या जूट आदि का प्रयोग करें। कार के टायरों में हवा सही रखे, एयरफिल्टर जाम नहीं होने चाहिए, कार धोने के लिए कम पानी का प्रयोग करना चाहिए। पी.सी., मोबाइल, सीडी, टी.वी., रेफ्रीजरेटर, ए.सी. इत्यादि इलेक्ट्रॉनिक सामान हमारी जिन्दगी का अहम हिस्सा बन गए हैं। यूज एण्ड थ्रो का प्रचलन तेजी से बढ़ रहा है लेकिन पुराने सामान कबाड़ के रूप में काफी खतरनाक होते हैं, यह ई–वेस्ट समाज के लिए बड़ा खतरा बनते हैं। कचरे से निकलने वाले रासायनिक तत्व लीवर, किडनी को प्रभावित करने के अलावा कैंसर, लकवा इत्यादि बीमारियों का कारण बन रहे हैं। ई–वेस्ट से निकलने वाले जहरीले तत्व और गैसें मिट्टी व पानी में मिलकर उन्हें बंजर और जहरीला बना देते हैं। फसलों एवं पानी की सहायता से ये तत्व शरीर में पहुँचकर बीमारियों को जन्म देते हैं। ई–कचरे में उपस्थित कुछ रासायनिक तत्व जैसे–पारा, क्रोमियम–कैडमियम, सीसा, सिलिकॉन, निकिल, जिंक, मैंग्नीज, कॉपर आदि भूजल को प्रदूषित कर रहे हैं, उनकी रीसाइक्लिंग काफी महंगी है। भारत में ई–वेस्ट की रीसाइक्लिंग एवं डिस्पोजल सही तरीके से नहीं हो रहा है।

➢ एसोसिएट प्रोफेसर
रसायन विभाग
सी.एम.पी. कॉलेज
इलाहाबाद (उ.प्र.)

ऐरोमैटिकता

■ डॉ. अर्चना पाण्डेय

'ऐरोमा' एक ग्रीक भाषा का शब्द है। इसका अर्थ **'सुगन्ध'** होता है। ऐसे पदार्थ जिनमें एक प्रकार की तीव्र सुगन्ध होती थी, उनको ऐरोमैटिक यौगिक कहते हैं। जैसे–

बादाम में बेन्जलडिहाइड

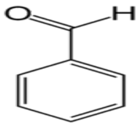

, लौंग में यूजीनॉल

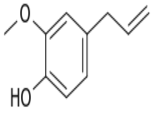

वैनिलीन में वनीला

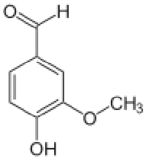

आदि।

कई बार बहुत से ऐरोमैटिक यौगिकों में सुगन्ध के स्थान पर दुर्गन्ध भी होती है।

जैसे– पिरिडीन

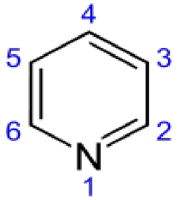

यही नहीं, यह आवश्यक नहीं है कि सभी ऐरोमैटिक पदार्थों में सुगन्ध या दुर्गन्ध हो। इस वर्ग को ऐसे बहुत से यौगिक हैं जिनमें किसी प्रकार की कोई गन्ध नहीं होती है जैसे– टॉलुइन।

सूंघकर या चखकर किसी पदार्थ के बारे में पता करना सही तरीका नहीं है। इस संदर्भ में कार्ल शीले नामक वैज्ञानिक का नाम लेना आवश्यक हो जाता है। उन्होंने कई महत्वपूर्ण तत्व खोजें जैसे– मॉलीबिडनम, टंगस्टन, बेरियम आदि। कुछ कार्बनिक अम्ल, टारटरिक, ऑक्जेलिक, यूरिक, लैक्टिक एवं साइट्रिक अम्लों का भी पता लगाया। हाइड्रोक्लोरिक, हाइड्रोस्यानिक व आर्सेनिक अम्लों के भी गुणधर्मों को ज्ञात किया। शीले में एक खराब आदत यह भी थी कि वे जिस पदार्थ की खोज करते थे, उसे सूंघते व चखते अवश्य थे। यही कारण था कि उनकी मृत्यु मात्र 43 वर्ष की अवस्था में हो गयी थी। डॉक्टर ने उनकी

मृत्यु का कारण पारे की विषाक्तता बताई थी। अत: रसायन शास्त्र पढ़ने वाले प्रत्येक विद्यार्थी को इस आदत से बचना चाहिए।

अब ऐरोमैटिक पदार्थों की परिभाषा बदल चुकी है। अब बेन्जीन या ऐसे सभी यौगिक जो रासायनिक रूप से बेन्जीन जैसे गुणधर्म रखते हैं, ऐरोमैटिक यौगिक कहलाते हैं। ऐरोमैटिक यौगिकों को मुख्यत: दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता हैं–

बेन्जीनॉयड यौगिक – ऐसे ऐरोमैटिक यौगिक जिनमें एक या एक से अधिक बेन्जीन वलय होते हैं उन्हें बेन्जीनॉयड यौगिक कहते हैं जैसे– बेन्जीन, टॉलुइन, फीनॉल व नैफ्थलीन आदि।

नॉन–बेन्जीनॉयड यौगिक – ऐसे ऐरोमैटिक यौगिक जिनमें बेन्जीन वलय नहीं होता है उन्हें नॉन–बेन्जीनॉयड यौगिक कहा जाता है। जैसे–ट्रोपिलियम आयन, फेरोसीन आदि।

ऐरोमैटिकता के बारे में जानने से पूर्व बेन्जीन की संरचना जानना अत्यन्त आवश्यक है–

बेन्जीन की संरचना– बेन्जीन ऐरोमैटिक वर्ग का यौगिक है। सर्वप्रथम सन् 1825 में माइकल फैराडे ने इसे खोजा था तथा वनस्पति तेलों के भंजक आसवन से इसे प्राप्त किया था। सन् 1945 में हॉफमैन ने इसे कोलतार से प्राप्त किया था।

इसका आण्विक सूत्र C_6H_6 है। इसके संगत हेक्सेन से इसमें 8H परमाणु कम हैं (C_6H_{14}) अत: विवृत श्रृंखलायुक्त संरचना संभव नहीं है।

केकुले संरचना– सन् 1865 में सर्वप्रथम केकुले ने बेन्जीन की वलय संरचना दी। उनके अनुसार बेन्जीन 6C परमाणुओं का एक वलय है और प्रत्येक कार्बन परमाणु से एक हाइड्रोजन परमाणु जुड़ा होता है। प्रत्येक कार्बन परमाणु की चौथी संयोजकता को प्रकट करने के लिए उन्होंने एकान्तर द्विबन्ध की उपस्थिति का सुझाव दिया। सन् 1872 में केकुले ने बेन्जीन की गतिक संरचना प्रस्तुत की जिसके अनुसार तीनों द्विबन्ध कार्बन परमाणुओं के मध्य सतत रूप से दोलायमान रहते हैं।

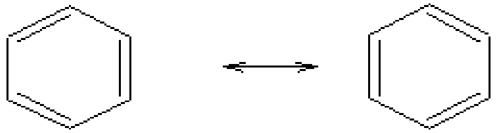

अनुनाद का सिद्धान्त – इस सिद्धान्त के अनुसार बेन्जीन को एक संरचना द्वारा नहीं प्रदर्शित कर सकते अत: इसको कई संरचनाओं द्वारा दिखाते हैं–

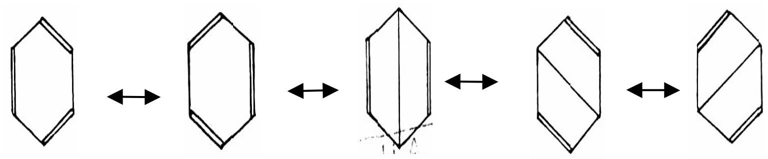

I II III IV V

केकुले संरचनाऐं **दीवार संरचनाऐं**

बेन्जीन की **I** व **II** संरचनाऐं इसके गुणधर्मों को सबसे अच्छी तरह समझाती हैं अत: इन्हें केनोनिकल संरचनाऐं भी कहते हैं। वास्तव में बेन्जीन को न तो **I** के द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है और न **II** के द्वारा । बेन्जीन की वास्तविक संरचना इन सभी संरचनाओं का अनुनाद संकर होती है जिसे कागज पर इस प्रकार दिखाया जा सकता है–

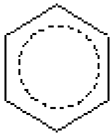

बेन्जीन का अनुनाद संकर केकुले की दोनों संरचना के मध्य की संरचना है। इसी आधार पर यह स्पष्टीकरण दिया जा सकता है कि क्यों बेन्जीन में सभी C – C बन्धों की लम्बाई एक ही यानि $1.39A^0$ होती है। केकुले संरचना **I** में जो C – C बन्ध एकल है वहीं **II** में द्विबन्ध है और **II** में जो C – C बन्ध एकल है वो **I** में द्विबन्धीय है। अत: C – C बन्ध अनुनाद के कारण न तो एकल होती है ($1.54A^0$) और न द्विबन्धीय ($1.34A^0$) वरन् इन दोनों की मध्य की बन्ध यानि $1.39A^0$ की हो जाती है। बेन्जीन की अनुनादी ऊर्जा 36 किलो कैलोरी/मोल होती है।

आण्विक कक्षक सिद्धान्त– इस सिद्धान्त के अनुसार बेन्जीन का प्रत्येक कार्बन परमाणु Sp^2 संकरित होता है। अत: कार्बन का प्रत्येक कार्बन परमाणु तीन **σ**–बन्ध बनाता है जिसमें से दो

σ–बन्ध दूसरे कार्बन परमाणुओं के साथ तथा तीसरा **σ**–बन्ध हाइड्रोजन परमाणु के साथ बनता है। इस प्रकार प्रत्येक कार्बन परमाणु पर एक 2p कक्षक असंकरित रहता है। छः कार्बन परमाणुओं के ये छः असंकरित 2p कक्षक समानान्तर होने के कारण आपस में अतिव्याप्त होकर **π**–आण्विक कक्षक बनाते हैं। इस कारण बेन्जीन अणु में दो इलेक्ट्रॉन मेघ होते हैं जो बेन्जीन अणु के तल के एक ऊपर तथा दूसरा नीचे होता है।

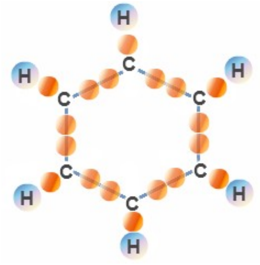

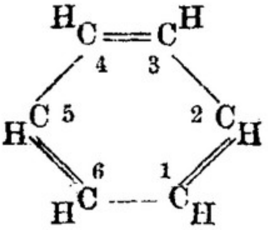

इस प्रकार बेन्जीन में 12 सिगमा बन्ध व 3 पाई बन्ध होते हैं।

1. C – C, **σ**–बन्ध जो Sp^2– Sp^2 कक्षकों की अतिव्याप्ति से बनते हैं और इनकी संख्या छः होती है।

2. C – H, **σ**–बन्ध Sp^2– S कक्षकों की अतिव्याप्ति से बनते हैं और ये भी संख्या में छः होते हैं।

3. तीन **π**–बन्ध असंकरित p–कक्षक की अतिव्याप्ति से बनते हैं।

<u>हकल का नियम</u>

जर्मनी में रहने वाले एरिक हकल (Eric Huckel) नामक भौतिकविद् ने ऐरौमैटिक यौगिकों के लिए कुछ नियम बनाए जो यौगिक इन नियमों का पालन करते हैं उन्हें ऐरोमैटिक यौगिकों की श्रेणी में रखा जाता हैं। नियम इस प्रकार है–

1. अणु अथवा आयन को समतल होना चाहिए।
2. अणु के ऊपर एवं नीचे **π**–इलेक्ट्रानों का चक्रीय मेघ होना चाहिए।
3. चक्रीय निकाय के सभी कार्बन अणुओं पर यह इलेक्ट्रान मेघ फैला हुआ होना चाहिए।

4. **π**–इलेक्ट्रानों की संख्या 4n+2 के हिसाब से होना चाहिए जहाँ n का मान 0,1,2,3....... आदि हो सकता है। हकल के नियम को (4n+2) **π** का नियम भी कहते हैं।

5. हकल के नियम से एक और तथ्य का ज्ञान भी होता है कि ऐरोमैटिक यौगिक में बेन्जीन वलय का होना आवश्यक नहीं है।

<u>उदाहरण</u> –

1. चक्रीय प्रोपिनिल धनायन – यह एक ऐरोमैटिक आयन है।

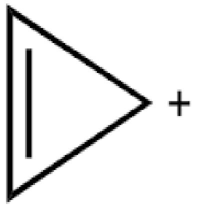

$$4n + 2 = 2$$

$$n = 0$$

2. चक्रीय पेन्टाडाइनिल ऋणायन – यह ऐरोमैटिक यौगिक है।

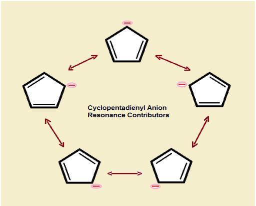

$$4n + 2 = 6$$

$$n = 1$$

3. चक्रीय हेप्टाट्राइनिल धनायन (ट्रोपिलियम आयन) – यह भी ऐरोमैटिक यौगिक है।

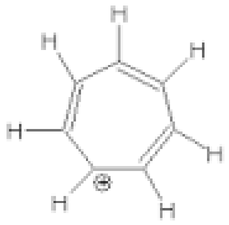

$$4n + 2 = 6$$

$$n = 1$$

4. विषम चक्रीय यौगिक – फ्यूरेन, पाइरॉल और थायोफीन के पाँच सदस्यीय वलय में चार कार्बन परमाणुओं के अलावा क्रम से ऑक्सीजन, नाइट्रोजन व सल्फर होता है। यद्यपि इन चक्रीय यौगिकों में दो **π**–बन्ध संयुग्मन में होते हैं तथापि विषम परमाणु अपने **π**–इलेक्ट्रानों को वलय को देकर 6**π**–तंत्र का निर्माण कर देते हैं और इस प्रकार ऐरोमैटिक यौगिकों की श्रेणी में आ जाते हैं।

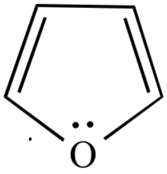

फ्यूरेन

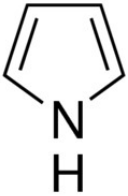

पाइरॉल

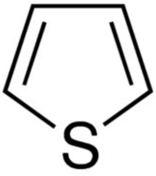

थायोफीन

5. बहुचक्रीय यौगिक – इस प्रकार के यौगिक भी ऐरोमैटिक हो सकते हैं। जैसे–

नैफ्थलीन –

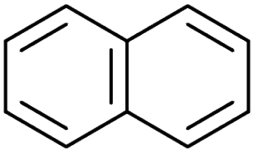

$$4n + 2 = 10$$

$$4n = 8$$

$$n = 2$$

6. एन्थ्रासीन –

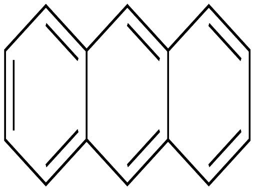

$$4n + 2 = 14$$

$$4n = 12$$

$$n = 3$$

7. फिनानथ्रीन –

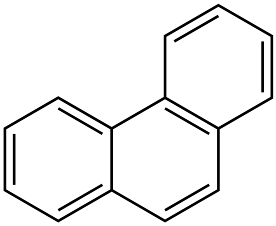

4n + 2 = 14

n = 3

<u>एन्टीऐरोमैटिक यौगिक</u> – जो अणु अनुनादी संरचनाएं बनाते हैं, वह बहुत स्थायी होते हैं। परन्तु एन्टीऐरोमैटिक यौगिक व आयन समतल, चक्रीय, संयुग्मित द्विबन्ध रखने के साथ–साथ अनुनादी भी होते हैं फिर भी ये बहुत अस्थायी होते हैं। इनमें इलेक्ट्रॉनों की संख्या (4n+2) **π** के स्थान पर (4n) **π** ही होती है। उदाहरणार्थ:

चक्रीयप्रोपिनिल ऋणायन

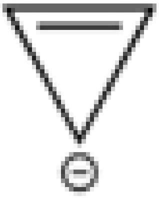

4n = 4

n = 1

चक्रीयहेफ्टाट्राइनिल ऋणायन

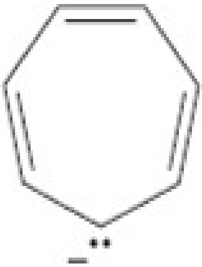

4n = 8

n = 2

चक्रीय पेन्टाडाइनिल धनायन

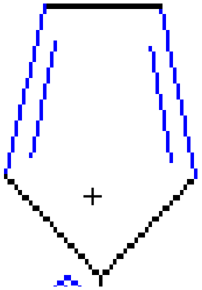

$4n = 4$

$n = 1$

चक्रीय ब्यूटाडाइन

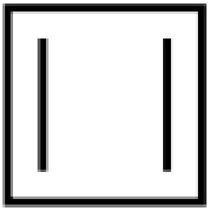

$4n = 4$

$n = 1$

नॉनऐरोमैटिक – इस प्रकार के यौगिक समतल नहीं होते हैं जैसे–चक्रीय ऑक्टाटेट्राईन। यद्यपि यह चक्रीय है, द्विबन्ध संयुग्मन में है पर यह न तो ऐरोमैटिक है और न ही एन्टीऐरोमैटिक। यह हकल के नियम के अनुसार ऐरोमैटिक नहीं है। इसमें n का मान 1.5 आता है। यदि यह समतल होता तो एन्टीऐरोमैटिक हो सकता था परन्तु समतल नहीं है। यह टब के आकार का होता है।

अत: इसे नॉन–ऐरोमैटिक कहते हैं।

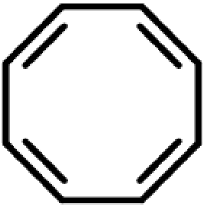

साइक्लोऑक्टेट्राईन

(8 इलेक्ट्रॉन)

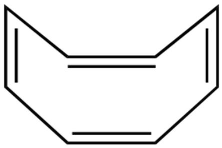

टब के आकार का साइक्लोऑक्टेट्राइन
(नॉन–ऐरोमैटिक)

➢ एसोसिएट प्रोफेसर
रसायन विभाग
सी.एम.पी. कालेज
इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश

आबंधन एवं संकरण का विज्ञान

■ डॉ. ज्योति पाण्डेय

द्रव्य एक या विभिन्न प्रकार के तत्वों से मिलकर बना होता है। सामान्य स्थितियों में, इस ब्रह्माण्ड पर अक्रिय गैसों के अलावा कोई अन्य तत्व एक स्वतंत्र परमाणु के रूप में विद्यमान नहीं होता हैं। परमाणुओं के समूह विशिष्ट गुणों वाले वर्ग के रूप में विद्यमान होते हैं। परमाणुओं के ऐसे समूह को 'अणु' कहते हैं। प्रत्यक्ष रूप में कोई बल अणुओं के घटक परमाणुओं को आपस में पकड़े रहता है। विभिन्न रासायनिक वर्ग में उनके अनेक घटकों (परमाणुओं, आयनों इत्यादि) को संलग्न रखने वाले आकर्षण बल को 'रासायनिक आबंधन' कहते हैं।

संयोजकता के विभिन्न सिद्धान्तों का विकास तथा रासायनिक आबंधों की प्रकृति की व्याख्या का सीधा सम्बन्ध वास्तव में परमाणु–संरचना, तत्वों के इलेक्ट्रॉनिक विन्यास तथा आवर्त सारणी से है। प्रकृति में प्रत्येक निकाय अधिक स्थायी होने का प्रयास करता है। यह आबंधन स्थायित्व पाने के लिए ऊर्जा को कम करने का प्राकृतिक तरीका है।

इलेक्ट्रॉनों द्वारा रासायनिक आबंधों के बनने की व्याख्या के लिए कई प्रयास किए गए, लेकिन सन् 1916 में कॉसेल और लुइस स्वतंत्र रूप से संतोषजनक व्याख्या देने में सफल हुए। उन्होंने सर्वप्रथम संयोजकता की तर्कसंगत व्याख्या की।

किसी अणु के बनने में परमाणुओं के केवल बाह्य कोश के इलेक्ट्रॉन रासायनिक संयोजन में हिस्सा लेते हैं। ये इनके संयोजकता इलेक्ट्रॉन कहलाते हैं। आंतरिक कोश इलेक्ट्रॉन अच्छी प्रकार से सुरक्षित होते हैं तथा सामान्यतः संयोजन प्रक्रिया में सम्मिलित नहीं होते हैं।

अष्टक नियम

सन् 1916 में कॉसेल तथा लूइस ने परमाणुओं के बीच रासायनिक संयोजन के एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त को विकसित किया। इसे **'रासायनिक आबंधन का इलेक्ट्रॉनिकी सिद्धांत'** कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, परमाणुओं का संयोजन संयोजक इलेक्ट्रानों के एक परमाणु दूसरे परमाणु पर स्थानांतरण के द्वारा अथवा संयोजक इलेक्ट्रॉनों के सहभाजन के द्वारा होता है। इस प्रक्रिया में परमाणु अपने संयोजकता कोश में अष्टक प्राप्त करते हैं। इसे **'अष्टक नियम'** भी कहते है।

आबंधो के प्रकार

अणुओं में विभिन्न परमाणुओं के बीच बनने वाले आबंध

1. आयनिक या वैद्युत संयोजी आबंध
2. सहसंयोजी आबंध
3. उप–सहसंयोजी आबंध
4. धात्विक आबंध

यौगिक में अणुओं के बीच बनने वाले आबंध

1. वान्डर वाल्स आबंध
2. हाइड्रोजन आबंध

<u>आयनिक या वैद्युत संयोजी आबंध</u>

आयनिक आबंध की व्याख्या कॉसेल ने की थी। उनके अनुसार इस आबंध का विरचन मुख्य रूप से निम्नलिखित तथ्यों पर निर्भर करेगा:

- उदासीन परमाणु से सम्बन्धित धनायनों एवं ऋणायनों के बनने की सरलता
- धनायनों एवं ऋणायनों की ठोस में व्यवस्थित होने की विधि अर्थात् क्रिस्टलीय यौगिक का जालक निर्मित होने की विधि।

धनायन का बनना आयनीकरण अर्थात् उदासीन परमाणु में से एक या एक से अधिक इलेक्ट्रॉनों के निष्कासन द्वारा सम्पन्न होता है। इसी प्रकार उदासीन परमाणु द्वारा इलेक्ट्रॉन ग्रहण करने से ऋणायन प्राप्त होता है।

$M(g) \rightarrow M^{+}(g) + e^{-}$; आयनन एंथैल्पी

$X(g) + e^{-} \rightarrow X^{-}(g)$; इलेक्ट्रॉनलब्धि एंथैल्पी

$$M^{+}(g) + X^{-}(g) \rightarrow MX(s)$$

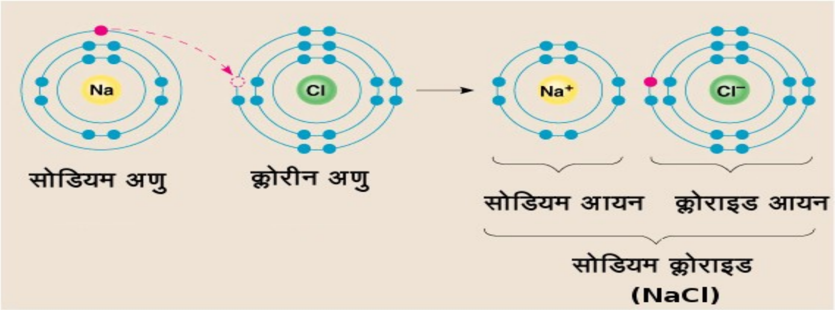

चित्र 1: सोडियम तथा क्लोरीन के अणुओं के मध्य आयनिक आबंध

आयनिक यौगिकों के गलनांक एवं क्वथनांक उच्च होते हैं एवं वे ध्रुवीय विलायकों में विलेय होते हैं।

सहसंयोजी आबंध

सन् 1919 में लैंगम्यूर ने सहसंयोजी आबंध की आवधारणा दी। दो परमाणुओं के मध्य इलेक्ट्रानों की सम साझेदारी से बना आबंध सहसंयोजी आबंध कहलाता है।

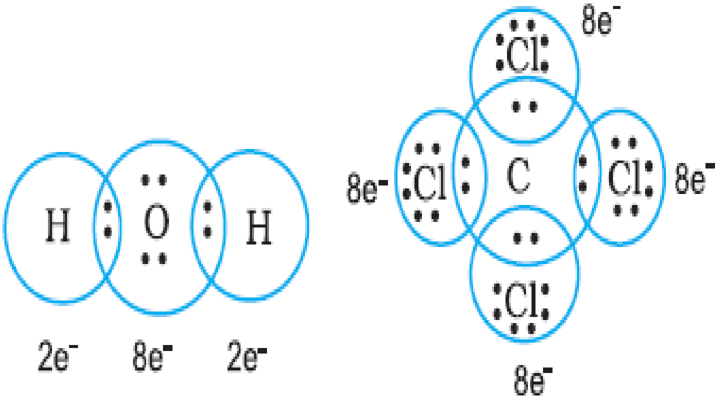

चित्र 2: जल तथा कार्बन टेट्राक्लोराइड के अणुओं के मध्य आबंध

एक इलेक्ट्रॉन युग्म द्वारा संयुग्मित दो परमाणु एकल सहसंयोजी आबंध द्वारा आबंधित कहलाते हैं। उदाहरणार्थ– जल तथा कार्बन टेट्राक्लोराइड के अणुओं के मध्य एक–आबंध उपस्थित होता है।

दो परमाणुओं के मध्य यदि दो इलेक्ट्रॉन युग्मों का सहभाजन होता है, तो उनके बीच का सहसंयोजी आबंध 'द्वि–आबंध' कहलाता है। उदाहरणार्थ कार्बन डाइ–ऑक्साइड अणु में कार्बन तथा ऑक्सीजन परमाणुओं के मध्य द्वि–आबन्ध उपस्थित होते हैं।

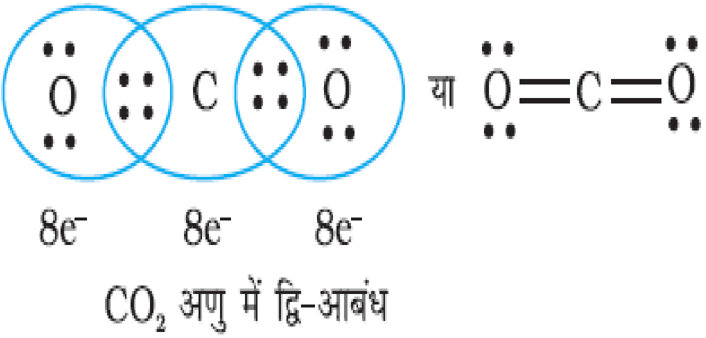

चित्र 3: कार्बन डाइ–ऑक्साइड अणु में कार्बन तथा ऑक्सीजन परमाणुओं के मध्य द्वि–आबंध

जब संयोजी परमाणुओं के मध्य तीन इलेक्टॉन युग्मों का सहभाजन होता है, जैसा N_2 अणु के दो नाइट्रोजन परमाणुओं के मध्य है, तब उनके मध्य एक त्रि–आबंध बनता है।

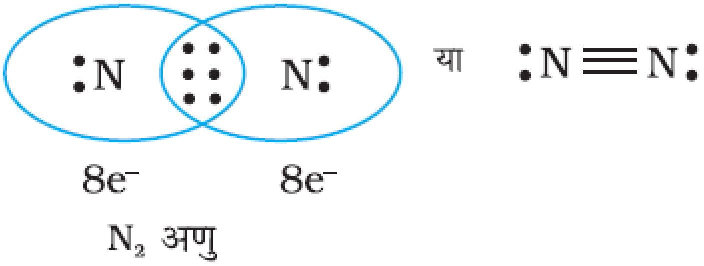

चित्र 4: दो नाइट्रोजन परमाणुओं के मध्य त्रि–आबंध

संयोजी यौगिकों के गलनांक एवं क्वथनांक कम होते हैं इनमें हीरा तथा ग्रेफाइट अपवाद हैं। संयोजी यौगिक अध्रुवीय विलायकों में विलेय होते हैं।

संयोजकता कोश इलेक्ट्रॉन युग्म प्रतिकर्षण (V.S.P.E.R) सिद्धान्त

सन् 1940 में सर्वप्रथम सिजविक तथा पॉवेल (Sidgwick and powell) ने वी.एस.ई.पी.आर. (V.S.P.E.R) सिद्धान्त सहसंयोजी आकृति को समझाने के लिए प्रतिपादित किया। यह सिद्धान्त परमाणुओं के संयोजकता कोश में उपस्थित इलेक्ट्रॉन युग्मों के बीच प्रतिकर्षण क्रियाओं के आधार पर प्रतिपादित किया गया था। इस विधि को नाइहोम तथा गिलेस्पी (Nyholm and Gillespie) ने सन् 1957 में और अधिक विकसित तथा संशोधित किया।

वी.एस.ई.पी.आर. (V.S.P.E.R) सिद्धान्त की मूलभूत धारणाएं हैं–

- अणु की आकृति, केन्द्रीय परमाणु के आसपास उपस्थित संयोजीकोश के इलेक्ट्रॉन युग्मों (संयोजित अथवा असंयोजित) की संख्या पर निर्भर करती है।

- केन्द्रीय परमाणु के संयोजकता कोश में उपस्थित इलेक्ट्रॉन युग्म एक–दूसरे को प्रतिकर्षित करते हैं, क्योंकि उनके इलेक्ट्रॉन अभ्र (Electron Cloud) पर ऋणात्मक आवेश होता है।

- ये इलेक्ट्रॉन युग्म त्रिविम में उन स्थितियों में अवस्थित होने का प्रयत्न करते हैं, जिसके फलस्वरूप उनमें प्रतिकर्षण कम से कम हो। इस स्थिति में उनके मध्य अधिकतम दूरी होती है।

- संयोजकता–कोश को एक गोले के रूप में माना जाता है तथा इलेक्ट्रॉन युग्म गोलीय सतह पर एक दूसरे से अधिकतम दूरी पर स्थित होते हैं।

- बहुआबंध को एक एकल इलेक्ट्रॉन युग्म के रूप में तथा इस बहुआबंध के दो या तीन इलेक्ट्रॉन युग्मों को एकल सुपर युग्म समझा जाता है।

- यदि अणु को दो या अधिक अनुनाद संरचनाओं द्वारा दर्शाया जा सके, तो इस स्थिति में वी.एस.ई.पी.आर. ऐसी प्रत्येक संरचना पर लागू होता है।

इलेक्ट्रॉन युग्मों के बीच प्रतिकर्षण अन्योन्य क्रियाएं निम्नलिखित क्रम में घटती हैं–

एकाकी युग्म – एकाकी युग्म > एकाकी युग्म – आबंधी युग्म > आबंधी युग्म – आबंधी युग्म

(lp–lp) > (lp–bp) > (bp–bp)

वी.एस.ई.पी.आर. मॉडल की सहायता से अणुओं की ज्यामितीय आकृतियों का पूर्वानुमान लगाने के लिए अणुओं को दो श्रेणियों में बांटा जाता है:

(i) वे अणु, जिनके केन्द्रीय परमाणु पर कोई भी एकाकी युग्म उपस्थित नहीं होता है (सारणी1)

(ii) वे अणु, जिनके केन्द्रीय परमाणु पर एक या एक से अधिक एकाकी युग्म उपस्थित होते हैं (सारणी2)

सारणी 1 : एकाकी युग्मरहित केन्द्रीय परमाणुयुक्त अणुओं की आकृतियाँ (ज्यामिति)

इलेक्ट्रॉन युग्मों की संख्या	इलेक्ट्रॉन युग्मों की व्यवस्था	आणविक ज्यामिति	उदाहरण
2	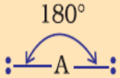 रैखीय	B—A—B रैखीय	$BeCl_2$, $HgCl_2$
3	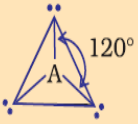 त्रिकोणीय समतली	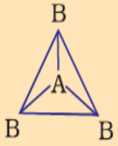 त्रिकोणीय समतली	BF_3
4	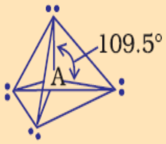 चतुष्फलकीय	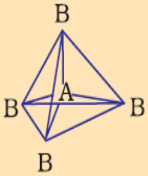 चतुष्फलकीय	CH_4, NH_4^+
5	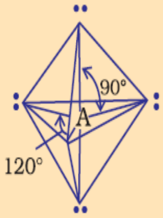 त्रिकोणीय द्विपिरामिडी	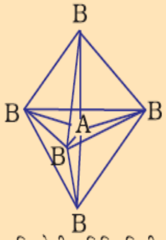 त्रिकोणीय द्विपिरामिडी	PCl_5
6	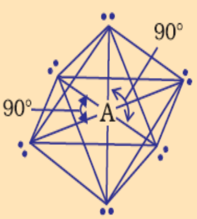 अष्टफलकीय	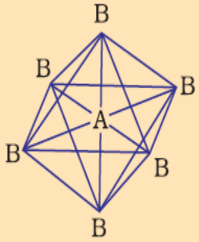 अष्टफलकीय	SF_6

सारणी 2 : कुछ सरल अणुओं/आयनों की आकृतियां (ज्यामिति), जिनके केन्द्रीय परमाणु पर एक या एक से अधिक एकाकी इलेक्ट्रॉन युग्म उपस्थित हैं।

अणुके प्रकार	आबंधी युग्मों की संख्या	एकाकी युग्मों की संख्या	इलेक्ट्रॉन युग्मों की व्यवस्था	आकृति	उदाहरण
AB_2E	2	1	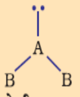 त्रिकोणीय समतली	मुड़ी हुई	SO_2, O_3
AB_3E	3	1	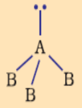 चतुष्फलकीय	त्रिकोणीय पिरामिडी	NH_3
AB_2E_2	2	2	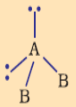 चतुष्फलकीय	मुड़ी हुई	H_2O
AB_4E	4	1	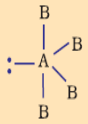 त्रिकोणीय द्विपिरामिडी	ढेंकुली	SF_4
AB_3E_2	3	2	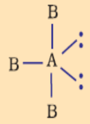 त्रिकोणीय द्विपिरामिडी	T-आकृति	ClF_3
AB_5E	5	1	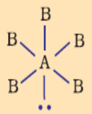 अष्टफलकीय	वर्ग-पिरामिडी	BrF_5
AB_4E_2	4	2	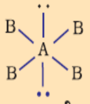 अष्टफलकीय	वर्ग समतली	XeF_4

परमाणु कक्षकों का अतिव्यापन

जब दो परमाणु आबंध विचरण के लिए पास आते हैं, तब उनके कक्षकों का अतिव्यापन धनात्मक, ऋणात्मक या शून्य हो सकता है। यह आर्बिटल तरंग फलन के आयाम (amplitude) की दिशा (स्पेस) और चिन्ह (फेज) पर निर्भर करता है (चित्र 5)।

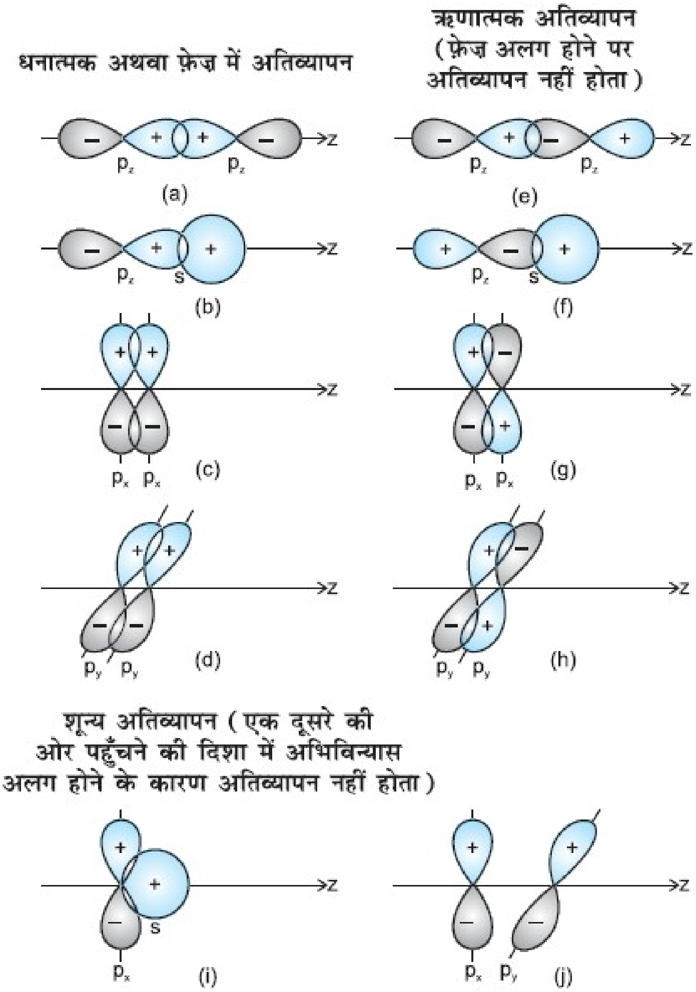

चित्र 5: s तथा p परमाणु कक्षकों के धनात्मक,ऋणात्मक या शून्य अतिव्यापन

सीमा–सतह आरेखों पर दर्शाए गए धनात्मक और ऋणात्मक चिन्ह तरंग फलन का चिन्ह (फेज) बतलाते हैं। इनका आवेश से कोई सम्बन्ध नहीं होता। आबंध बनाने के लिए ऑर्बिटलों का चिन्ह (फेज) और अभिविन्यास एक समान होना चाहिए। इसे धनात्मक अतिव्यापन कहते

हैं। *s* तथा *p* परमाणु कक्षकों के धनात्मक, ऋणात्मक या शून्य अतिव्यापन की विभिन्न अवस्थाएं, चित्र 5 में दर्शाई गई हैं।

अतिव्यापन के प्रकार तथा सहसंयोजी आबंध की प्रकृति

कक्षकों के अतिव्यापन के प्रकार के आधार पर सहसंयोजी आबंध दो प्रकार के होते हैं:

(i) सिग्मा (σ) आबंध तथा (ii) पाई (π) आबंध

(i) सिग्मा (σ) आबंध– इस प्रकार का सहसंयोजी आबंध, आबंधी कक्षकों के अंतर्नाभिकीय अक्ष पर सिरेवार (Head on) अतिव्यापन या अक्षीय (axial) अतिव्यापन कहते हैं। इस प्रकार का आबंध, परमाणु कक्षकों के निम्नलिखित में से किसी एक प्रकार के संयोजन द्वारा प्राप्त किए जा सकते हैं–

- ***s–s* अतिव्यापन–** इस प्रकार के संयोजन में दो अर्द्ध–भृत (Half Filled) *s*–कक्षक अंतर्नाभिकीय अक्ष पर अतिव्यापन करते हैं, जैसा नीचे दिखाया गया है–

- ***s–p* अतिव्यापन–** इस प्रकार का अतिव्यापन एक परमाणु की अर्द्ध–भृत *s*–कक्षक तथा दूसरे परमाणु का अर्द्ध–भृत *p*–कक्षक के बीच होता है।

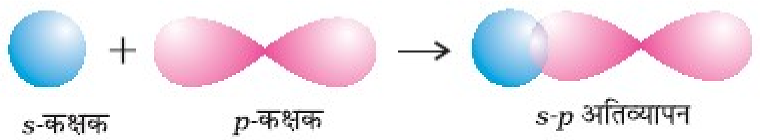

- ***p–p* अतिव्यापन–** इस प्रकार का अतिव्यापन दो परमाणुओं के अर्द्ध–भृत *p*–कक्षकों के बीच होता है।

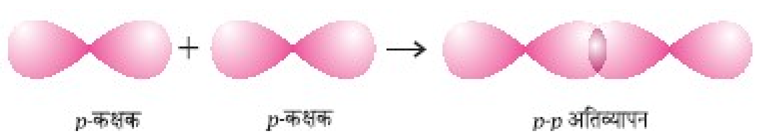

(ii) पाई (π) आबंध– पाई आबंध के बनने के आण्विक कक्षक इस प्रकार अतिव्यापन करते हैं कि उनके अक्ष एक दूसरे के समान्तर तथा अंतर्नाभिकीय कक्ष से लंबवत होते हैं।

इस प्रकार पार्श्व अतिव्यापन के फलस्वरूप निर्मित कक्षक में परमाणुओं के तल के ऊपर तथा नीचे दो प्लेटनुमा आवेशित अभ्र (cloud) होते हैं।

संकरण

CH_4, NH_3, H_2o जैसे बहुपरमाणुक अणुओं की विशिष्ट ज्यामितीय आकृतियों को स्पष्ट करने के लिए पॉलिंग ने परमाणु कक्षकों के संकरण का सिद्धान्त प्रस्तावित किया। पॉलिंग के अनुसार परमाणु कक्षक संयोजित होकर समतुल्य कक्षकों का समूह बनाते हैं। इन कक्षकों को **संकर कक्षक** कहते हैं। आबंध विरचन में परमाणु शुद्ध कक्षकों के स्थान पर संकरित कक्षकों का प्रयोग करते हैं। लगभग समान ऊर्जा तथा आकार वाले कक्षकों को बनाने की प्रक्रिया को **संकरण** कहते हैं। उदाहरण के लिए कार्बन का एक *2s* कक्षक तथा तीन *2p* कक्षक संकरण द्वारा चार नए sp^3 संकर कक्षक बनाते हैं।

संकरण के महत्वपूर्ण लक्षण इस प्रकार हैं–

1. संकर कक्षकों की संख्या संकरण की प्रक्रिया में भाग लेने वाले कक्षकों की संख्या के बराबर होती है।

2. संकर कक्षक सदैव समान ऊर्जा तथा आकार के होते हैं।

3. संकर कक्षक स्थायी आबंध बनाने में शुद्ध कक्षकों की अपेक्षा अधिक सक्षम होते हैं।

4. संकर कक्षक स्थायी व्यवस्था पाने के लिए त्रिविम में विशिष्ट दिशाओं में निर्देशित होते हैं। इसीलिए संकरण का प्रकार अणु की ज्यामिति दर्शाता हैं।

संकरण के प्रकार

s,p तथा d कक्षकों के संकरण निम्नलिखित प्रकार के होते हैं–

(I) *sp* संकरण– इस प्रकार के संकरण में एक *s* तथा एक *p* कक्षक संकरित होकर दो समान sp संकर कक्षकों का निर्माण करते हैं। प्रत्येक *sp* संकर कक्षक में 50% s–लक्षण

तथा 50% p–लक्षण होता है। यदि किसी अणु में केन्द्रीय परमाणु के संयोजकता कक्ष के कक्षक *sp* संकरित होते हैं तथा दो परमाणुओं से आबंध बनाते हैं, तो अणु की रैखिक ज्यामिति होती है। इसप्रकार के संकरण को 'विकर्ण संकरण' भी कहते हैं। उदाहरण– $BeCl_2$, C_2H_2

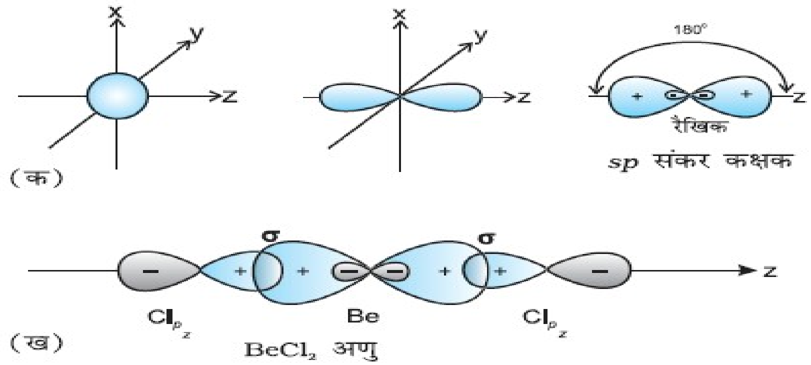

चित्र 6: (क) *s* तथा *p* कक्षकों द्वारा *sp* संकर कक्षकों का निर्माण

(ख) $BeCl_2$ रैखिक अणु का विरचन

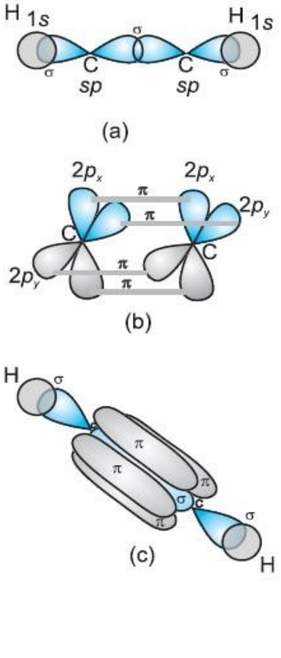

चित्र 7 : एथाइन में सिग्मा तथा पाई– आबंधों का बनना

(II) sp^2 संकरण– संकरण के इस प्रकार में एक *s* कक्षक तथा दो *p* कक्षक संकरित होकर तीन समान sp^2 संकर कक्षकों का निर्माण करते हैं। उदाहरण के लिए C_2H_2 , BCl_3 अणु की त्रिकोणीय समतली ज्यामिति होती है, जिसमें Cl–B–Cl आबंध कोण 120^0 का होता है।

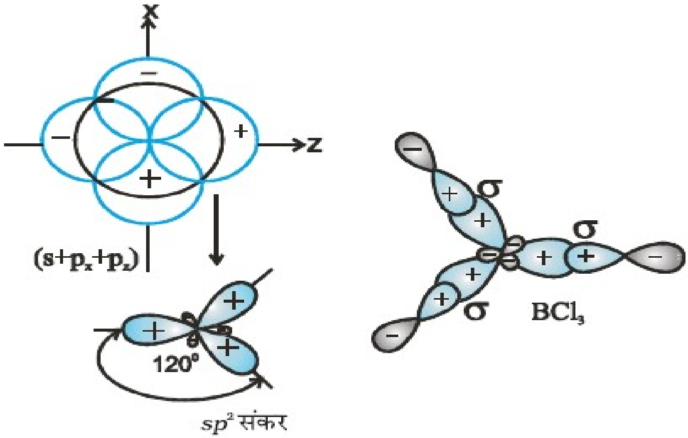

चित्र 8: sp^2 संकर कक्षकों तथा BCl_3 अणु का निर्माण

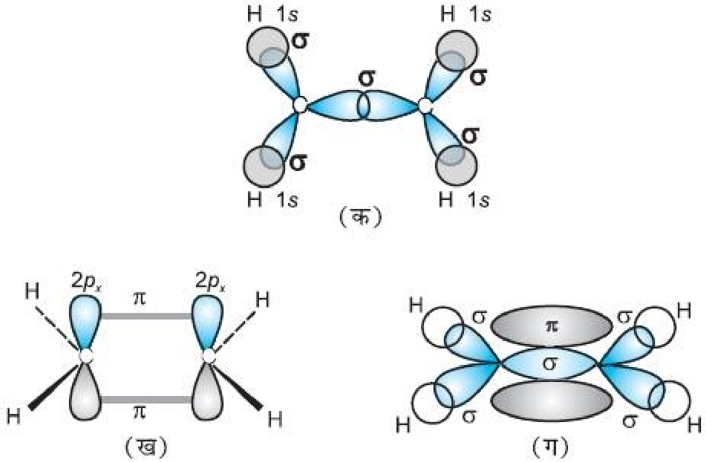

चित्र 9: एथाइन में सिग्मा तथा पाई आबंधों का बनना

(III) sp^3 संकरण– इसमें सहसंयोजी कक्ष के एक *s* कक्षक तथा दो *p* कक्षकों के संकरण से चार sp^3 संकर कक्षक बनते हैं। ये कक्षक समान ऊर्जा तथा आकार के होते हैं। प्रत्येक sp^3 कक्षक में 25% s–लक्षण तथा 75% *p*–लक्षण होता है। sp^3 संकरण द्वारा प्राप्त चार sp^3 संकर कक्षक चतुष्फलक के चार कोनों की ओर होते हैं। उदाहरण के लिए CH_4 अणु जिसमें sp^3 संकर कक्षकों के बीच कोण का मान 109.5^0 होता है। NH_3 जिसमें आबंध कोण 109.5^0 से घटकर 107^0 हो जाता है एवं H_2O जिसमें आबंध कोण 109.5^0 से घटकर 104.5^0 हो जाता है।

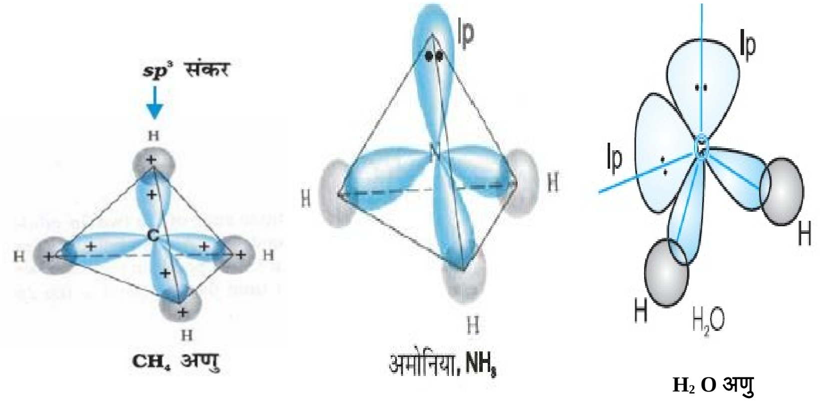

चित्र 10 : CH_4 ,NH_3 तथा H_2O अणुओं का sp^3 संकरण द्वारा निर्माण

d–कक्षकों वाले तत्वों का संकरण

तृतीय आवर्त में *s* तथा *p* कक्षकों के साथ–साथ *d* कक्षक भी उपस्थित होते हैं। इन *d* कक्षकों की ऊर्जा *3s, 3p* एवं *4s, 4p* कक्षकों की ऊर्जा के समतुल्य होती हैं। *3p* और *4s* कक्षकों की ऊर्जा में अधिक अंतर होने के कारण *3p, 3d* एवं *4s* कक्षकों का संकरण संभव नहीं हैं। *s,p* तथा *d* कक्षकों के संकरण के मुख्य प्रकारों को यहाँ सारणी–3 में सारांश में दिया गया हैं–

सारणी3 : ***s,p*** तथा ***d*** कक्षकों के संकरण के मुख्य प्रकार

अणु/आयन की आकृति	संकरण का प्रकार	परमाण्विक कक्षक	उदाहरण
वर्ग-समतली	dsp^2	d+s+p(2)	$[Ni(CN)_4]^{2-}$, $[Pt(Cl)_4]^{2-}$
त्रिकोणीय द्विपिरामिडी	sp^3d	s+p(3)+d	PF_5, PCl_5
वर्ग पिरामिडि	sp^3d^2	s+p(3)+d(2)	BrF_5
अष्टफलकीय	sp^3d^2 d^2sp^3	s+p(3)+d(2) d(2)+s+p(3)	SF_6, $[CrF_6]^{3-}$ $[Co(NH_3)_6]^{3+}$

<u>उप–सहसंयोजी आबंध</u>

पार्किन के अनुसार उप–सहसंयोजी आबंध एक विशेष प्रकार का सहसंयोजी आबंध है जिसमें साझे का इलेक्ट्रॉन–युग्म केवल एक परमाणु प्रदान करता है। वह परमाणु जो इलेक्ट्रॉन–युग्म देता है, उसे दाता (donor) कहते है तथा जो परमाणु इलेक्ट्रॉन–युग्म लेता है वह ग्राही (acceptor) कहलाता है। उदाहरण के लिए NH_3 व BF_3 से $NH_3.BF_3$ का बनना–

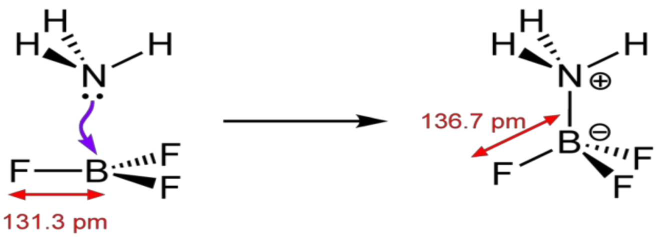

चित्र 11 : NH_3 व BF_3 अणुओं का उप–सहसंयोजी आबंध द्वारा $NH_3.BF_3$ का निर्माण

इन यौगिकों के गलनांक एवं क्वथनांक विद्युत संयोजी तथा सहसंयोजी यौगिकों के मध्य होते हैं एवं वे ध्रुवीय विलायकों में कम विलेय होते हैं।

धात्विक आबंध

धातुओं में परमाणुओं के मध्य विद्युत संयोजी तथा सहसंयोजी आबंध नहीं होते हैं। चूँकि धातु में उपस्थित सभी परमाणु समान विद्युत ऋणात्मकता के होते हैं अत: वे एक विशेष प्रकार के आबंधों द्वारा जुड़े होते हैं, जिन्हें धात्विक आबंध कहते हैं। धात्विक आबंध की व्याख्या ड्रुड ने 1990 में इलेक्ट्रॉन अभ्र (Electron Cloud) सिद्धान्त द्वारा की। इसके अनुसार धातु में धनात्मक आवेश इलेक्ट्रॉन अभ्र में उपस्थित होते हैं।

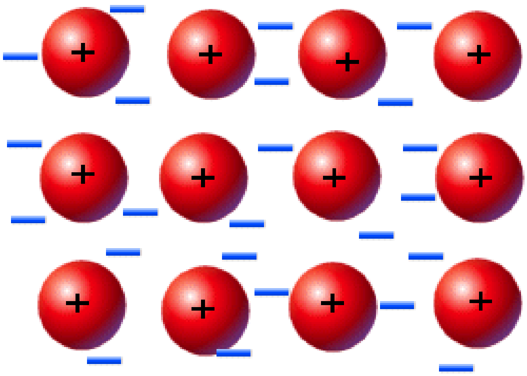

चित्र 12 : धात्विक आबंध

हाइड्रोजन आबंधन

नाइट्रोजन, ऑक्सीजन तथा फ्लुओरीन– ये तीन अत्यधिक विद्युत ऋणात्मक तत्व जब परमाणु सहसंयोजक आबंध द्वारा हाइड्रोजन परमाणु से जुड़े होते हैं, तब सहसंयोजी आबंध के इलेक्ट्रॉन अधिक विद्युत ऋणात्मक तत्व की ओर स्थानांतरित हो जाते हैं। फलस्वरूप प्राप्त आंशिक धनावेशित हाइड्रोजन परमाणु किसी दूसरे विद्युत ऋणात्मक परमाणु के साथ एक नया आबंध बनाता है। इस आबंध को 'हाइड्रोजन आबंध' कहते है।

हाइड्रोजन आबंध दो प्रकार के होते हैं–

(i) अंतर–अणुक हाइड्रोजन आबंध

(ii) अंतरा–अणुक हाइड्रोजन आबंध

(i) अंतर–अणुक हाइड्रोजन आबंध– ये आबंध समान अथवा विभिन्न यौगिकों के दो अलग–अलग अणुओं के बीच बनते हैं, उदारणार्थ– HF अणु, एल्कोहॉल या जल के अणुओं के बीच हाइड्रोजन आबंध। इसे इस प्रकार दर्शाया जा सकता है–

$$.......H^{\delta+} - F^{\delta-}.......H^{\delta+} - F^{\delta-}.......H^{\delta+} - F^{\delta-}$$

(ii) अंतरा–अणुक हाइड्रोजन आबंध– ये आबंध एक ही अणु में उपस्थित हाइड्रोजन परमाणु तथा अधिक विद्युत ऋणात्मक परमाणु (F,O,N) के बीच बनता है। उदाहरणार्थ– O–नाइट्रोफीनॉल में हाइड्रोजन, जो ऑक्सीजन के मध्य रहता है।

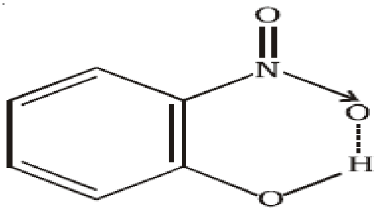

चित्र 12: O–नाइट्रोफीनॉल अणु में अंतर–अणुक हाइड्रोजन आबंध

➢ असिस्टेन्ट प्रोफेसर
रसायन विभाग
बाबासाहब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय
रायबरेली रोड,
लखनऊ – 260025 (उ.प्र.)

जीवों में विविधता का अध्ययन

■ सुनील कुमार गौड़

भारत के संविधान में नागरिकों के मूल कर्तव्य : भाग 4 क, अनुच्छेद 51'क' में वर्णित किए गए हैं। मूल कर्तव्य 51 'क' (ज) में उल्लिखित है कि भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह– **"वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।"** संविधान में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास पर बल दिया गया है। सभी भारतीयों में जिज्ञासा की भावना, दुनिया भर में क्या हो रहा है उसके बारे में जानने की और उससे कुछ सीखने की उत्कंठा जाग्रत हो। प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण और जिज्ञासा की प्रवृत्ति को बढ़ावा दे ताकि हम दुनिया के साथ चल सकें। संविधान यह भी अपेक्षा करता है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के साथ–साथ मानवता के दृष्टिकोण को भी अपनाएं रखें क्योंकि अंततः सभी क्रियाकलापों का उद्देश्य मानव का विकास तथा उसके जीवन और संबंधों में गुणात्मक सुधार लाना ही है। (सुभाष काश्यप 2013, हमारा संविधान)

भारत के प्रत्येक नागरिक के इस कर्तव्य के आलोक में विज्ञान शिक्षा का यह उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है कि "विज्ञान शिक्षा ऐसी हो जो विद्यार्थी को इस योग्य बना दे जिससे वह 'वैज्ञानिक स्वभाव' विकसित करना सीख जाए तथा उन तरीकों और प्रक्रियाओं को समझ सके जिनसे वैज्ञानिक ज्ञान का सृजन किया जा सके।" (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, विज्ञान शिक्षण, आधार पत्र 1.1)

विज्ञान शिक्षा की समझ बनाने के लिए विज्ञान की प्रकृति को समझना आवश्यक है। विज्ञान के अन्तर्गत प्रमुखतः दो पक्ष– 'प्रक्रिया' तथा 'उत्पाद' होते हैं। विज्ञान में 'प्रक्रिया' के द्वारा 'उत्पाद' प्राप्त होते हैं। 'प्रक्रिया' के अंतर्गत विज्ञान के कौशल (अवलोकन, वर्गीकरण, अनुमान, परिकल्पना, प्रयोग आदि) आते हैं। 'प्रक्रिया' के द्वारा प्राप्त तथ्य, अवधारणा, नियम, सिद्धान्त आदि विज्ञान के उत्पाद हैं। विज्ञान शिक्षा के इस प्रमुख उद्देश्य की संप्राप्ति के लिए हमें विज्ञान के 'प्रक्रिया पक्ष पर आधारित शिक्षण– अधिगम कराना आवश्यक है।

विज्ञान के अंतर्गत वैज्ञानिक पद्धति का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। विज्ञान के प्रकरणों को वैज्ञानिक पद्धति से ही सीखा जाना आवश्यक है। समस्या, परिकल्पना, प्रयोगीकरण, अवलोकन तथा निष्कर्ष वैज्ञानिक पद्धति के प्रमुख चरण हैं। इन चरणों का कोई निश्चित क्रम नहीं है, कभी कोई निष्कर्ष या सिद्धान्त हमें नये प्रयोग का रास्ता दिखा देता है,

तो कभी कोई प्रयोग किसी नए सिद्धान्त को बता जाता है (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005)। वैज्ञानिक पद्धति से ही विज्ञान के क्षेत्र में नवीन उपलब्धियां प्राप्त हुई हैं। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विज्ञान सीखने की प्रक्रिया को प्रभावी बनाने के लिए विज्ञान शिक्षण–अधिगम की बालकेन्द्रित विधियों– अनुसंधान विधि (ह्यूरिस्टिक विधि), परियोजना विधि, समस्या–समाधान विधि, आगमन विधि का उपयोग किया जाना उचित होगा क्योंकि ये सभी शिक्षण विधियां क्रियात्मक तथा प्रयोग आधारित हैं। इनमें रटने का कोई स्थान नहीं हैं (गौड़, सुनील कुमार 2015)। विज्ञान में शोध आधारित शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया इन्हीं शिक्षण विधियों पर आधारित है।

विज्ञान में शोध आधारित शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया

विज्ञान में शोध आधारित शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया (Research based teaching–learning process) का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। बच्चों में शोध की मूल प्रवृत्ति पाई जाती हैं। वे अवलोकन और खोजबीन करते हैं, उनमें जिज्ञासा होती हैं, वे अनुमान लगाते हैं तथा नियम बनाते हैं। विज्ञान के शिक्षण–अधिगम में हमें बच्चों की इस प्रवृत्ति का लाभ उठाना चाहिए। शोध अधारित शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया द्वारा विद्यार्थी अन्वेषक के रूप में कार्य करके नवीन ज्ञान की खोज भी करते हैं। यह प्रक्रिया ज्ञान को स्कूल के बाहरी जीवन से जोड़ती है, पढ़ाई को रटन्त प्रणाली से मुक्त करती है, पाठ्यपुस्तकों पर आधारित न होकर विद्यार्थियों के स्वभाव के अनुकूल जिज्ञासा तथा खोजी प्रवृत्ति पर आधारित होती है, जिससे विद्यार्थियों के चहुँमुखी विकास (All round development) में मदद मिलती है।

प्रयोग (Experiment)

'शोध आधारित शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया' आगमनात्मक विधि (Inductivist method) तथा विज्ञान की प्रकृति के प्रक्रिया पक्ष पर आधारित है। इसमें क्रियाकलाप (Activity)/ प्रयोग किए जाते हैं। इस प्रक्रिया के द्वारा शिक्षण–अधिगम करने के लिए सरल तथा खोजी प्रवृत्ति पर आधारित क्रियाकलाप निर्मित किए जाते हैं, जैसे– "जीवों में विविधता" का अध्ययन करने के लिए निम्नवत प्रयोग किया जा सकता है–

1. भिगोए हुए चने, गेहूँ, मक्का, मटर और इमली के बीज लीजिए। भीगे हुए बीज जल अवशोषण के कारण फूल जाते हैं। इन बीजों को दो भाग में बांटिए। क्या इनमें सभी

बीज फटकर दो भागों में बँट जाते हैं?

2. जिन बीजों में दो दालें दिखाई देती हैं, वे द्विबीजपत्री और जो नहीं फूटते और दालें नहीं दिखाई देती वे एकबीजपत्री कहलाते हैं।

- **अब इन पौधों की जड़ों, पत्तियों और फूलों को देखें–**

1. क्या ये जड़ें मूसला हैं या फिर रेशेदार?
2. क्या पत्तियों में समानांतर अथवा जालिकावत् शिरा विन्यास है?
3. इन पौधों के फूलों में कितनी पंखुड़ियाँ हैं?
4. अपने अवलोकन के आधार पर एकबीजपत्री और द्विबीजपत्री पौधों के और अधिक लक्षण लिखिए।

विज्ञान में शोध आधारित शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया द्वारा 'जीवों में विविधता'

'शोध आधारित शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया' द्वारा "जीवों में विविधता" (Diversity in living organism) का अध्ययन सुगमता से किया जा सकता है, जिसके अन्तर्गत व्हिटेकर द्वारा प्रस्तावित "जीवों का पाँच जगत आधारित वर्गीकरण" का आगमनात्मक (Inductivist) तथा अनुसंधान विधि द्वारा गतिविधि आधारित शिक्षण–अधिगम किया जाना समीचीन होगा। इस शिक्षण प्रक्रिया के द्वारा विद्यार्थी मोनेरा, प्रोटिस्टा, फंजाई, प्लांटी और एनीमेलिया जगत की विशेषताओं का प्रतिपादन स्वयं कर सकेंगे। प्लांटी तथा एनीमेलिया को उनकी क्रमिक शारीरिक जटिलताओं के आधार पर आगे वर्गीकृत किया गया है। पौधों को पाँच वर्गों– शैवाल, ब्रायोफाइटा, टेरिडोफाइटा, जिम्नोस्पर्म और ऐंजियोस्पर्म में बाँटा गया है। जन्तुओं को दस फाइलम – पोरीफेरा, सीलेंटरेटा, प्लेटीहेल्मिन्थीज, निमेटोडा, एनीलिडा, आर्थोपोडा, मोलस्का, इकाइनोडर्मेटा, प्रोटोकार्डेटा और कार्डेटा में विभक्त किया गया है।

कक्षा 9 हेतु एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली की विज्ञान पाठ्यपुस्तक के अध्याय 7– "जीवों में विविधता'' (Diversity in living organisms) **का अध्ययन**

जीवों की कोशिकीय संरचना, पोषण के स्रोत और तरीके तथा शारीरिक संगठन के आधार पर व्हिटेकर द्वारा प्रस्तावित वर्गीकरण में पाँच जगत हैं–

1. मोनेरा, 2. प्रोटिस्टा, 3. फंजाई 4. प्लांटी, 5.एनीमेलिया।

व्हिटेकर द्वारा प्रस्तुत पाँच जगत वर्गीकरण (Five Kingdom Classification) **की प्रमुख विशेषताएं–**

1. मोनेरा – इस जगत के जीवों का शरीर एक कोशिकीय होता है। इसमें प्रोकैरियोटिक जीव आते हैं। प्रोकैरियोटिक जीवों की कोशिका में केन्द्रीय पदार्थ केन्द्रक झिल्ली में नहीं घिरे रहते हैं। इनमें संगठित केन्द्रक तथा कोशिकांग नहीं पाए जाते हैं। कुछ जीवों में कोशिका भित्ति पाई जाती है तथा कुछ में नहीं पाई जाती है। ये स्वपोषी तथा विषमपोषी दोनों प्रकार के होते हैं। **उदाहरण–** जीवाणु, नीले–हरे शैवाल, सायनोबैक्टीरिया, माइकोप्लाज्मा।

2. प्रोटिस्टा – इनमें एक कोशिकीय यूकैरियोटिक जीव आते हैं। यूकैरियोटिक जीवों में सुस्पष्ट केन्द्रक पाया जाता है। केन्द्रीय पदार्थ केन्द्रक झिल्ली से घिरे रहते हैं। इस वर्ग में गमन के लिए सीलिया, फ्लैजेला पाए जाते हैं। ये स्वपोषी तथा विषमपोषी दोनों प्रकार के होते हैं। **उदाहरण –** एक कोशिकीय शैवाल, डाइएटम, प्रोटोजुआ।

3. फंजाई या कवक – ये विषमपोषी (Heterotrophic), यूकैरियोटिक जीव होते हैं अर्थात् ये सड़े–गले कार्बनिक पदार्थों से अपना पोषण प्राप्त करते हैं इसलिए इन्हें मृतजीवी कहते हैं। इनमें काइटिन नामक जटिल शर्करा से बनी हुई कोशिका–भित्ति पाई जाती है। **उदाहरण –** यीस्ट, मशरूम।

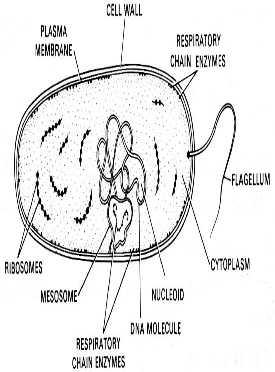

जीवाणु

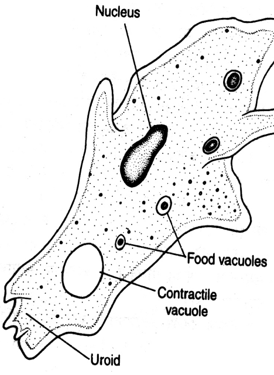

अमीबा

ऐगेरिकस

4. प्लांटी – इनमें कोशिका–भित्ति पाई जाती है। ये बहुकोशिकीय यूकैरियोटिक जीव होते हैं। ये स्वपोषी होते हैं, अर्थात् प्रकाश संश्लेषण के लिए क्लोरोफिल का उपयोग करके अपना पोषण स्वयं करते हैं। इस वर्ग में सभी पौधों को रखा गया है।

प्लांटी के वर्गीकरण का आधार–

- पादप अंगो का विकास तथा विभेदन,
- जल एवं अन्य पदार्थों का संवहन करने के लिए विशिष्ट ऊतकों की उपस्थिति,
- बीज धारण की क्षमता,
- बीज फल के अन्दर विकसित है या नहीं।

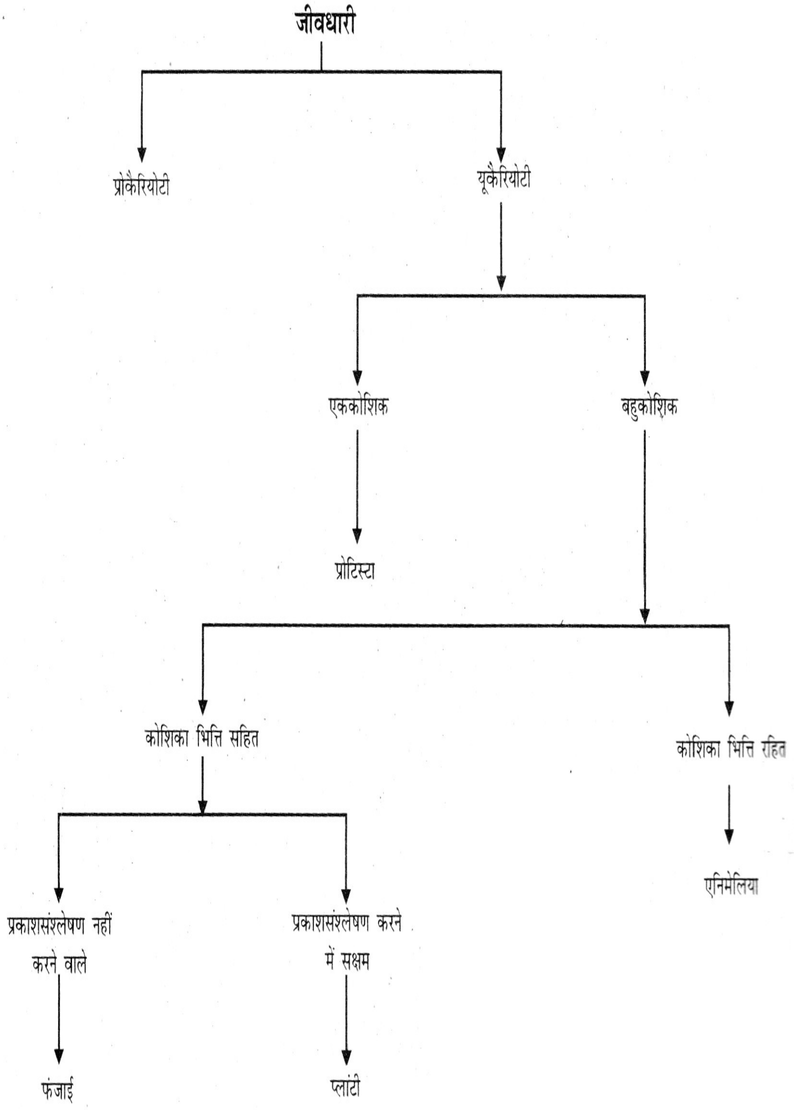

चित्र– पाँच जगत वर्गीकरण

प्लांटी को निम्नवत् वर्गों में विभाजित किया गया है–

थैलोफाइटा – इन पौधों की शारीरिक रचना में विभेदीकरण नहीं पाया जाता है। इन्हें सामान्यत: शैवाल कहते हैं। ये जल में पाए जाते हैं। **उदाहरण –** यूलोथ्रिक्स, स्पाइरोगाइरा, कारा आदि।

ब्रायोफाइटा – इस वर्ग के पौधों को पादप वर्ग का उभयचर कहा जाता है। ये तने तथा पत्तियों जैसी रचना में विभाजित रहते हैं। इनमें जल तथा भोज्य पदार्थों के संवहन के लिए विशिष्ट ऊतक (जाइलम तथा फ्लोएम) नहीं पाए जाते। **उदाहरण –** मॉस (फ्यूनेरिया), मार्केन्शिया।

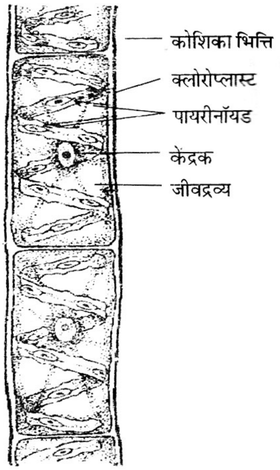

स्पाइरोगाइरा

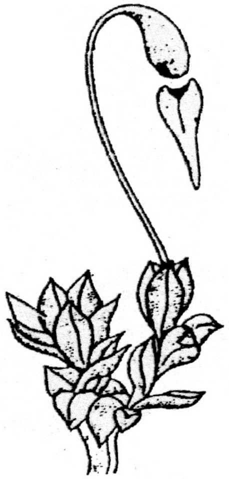

मॉस (फ्यूनेरिया)

टेरिडोफाइटा –

इस वर्ग के पौधों का शरीर जड़, तना तथा पत्ती में बँटा होता है। इसमें पौधों के एक भाग से दूसरे भाग तक जल तथा अन्य पदार्थों के संवहन के लिए संवहन ऊतक पाए जाते हैं। **उदाहरण –** मार्सीलिया, फर्न आदि।

- **क्रिप्टोगैम –** थैलोफाइटा, ब्रायोफाइटा और टेरिडोफाइटा में नग्न भ्रूण पाए जाते हैं जिन्हें बीजाणु (Spore) कहते हैं। इन पौधों में जननांग अप्रत्यक्ष होते हैं। इन पौधों

में बीज उत्पन्न करने की क्षमता नहीं होती, इसलिए इन्हें क्रिप्टोगैम कहते हैं।

- **फैनरोगैम** – ऐसे पौधे जिनमें जनन ऊतक पूरी तरह विकसित और विभेदित होते हैं, इन्हें फैनरोगैम कहते हैं। इनमें जनन क्रिया के बाद बीज बनते हैं। बीज के अन्दर भ्रूण के साथ संचित खाद्य पदार्थ भी पाया जाता है जिसका उपयोग अंकुरण के समय होता है।

बीज की अवस्था के आधार पर इस वर्ग के पौधों को दो वर्गों में बांटा गया है–

1. **जिम्नोस्पर्म** – ये नग्न बीज उत्पन्न करने वाले पौधे होते हैं अर्थात् इनमें बीज फल के अंदर नहीं होते। ये पौधे बहुवर्षीय सदाबहार तथा काष्ठीय होते हैं। **उदाहरण** – पाइनस (चीड़) तथा साइकस।

2. **ऐंजियोस्पर्म** – **ऐंजियो** का अर्थ है – ढका हुआ, **स्पर्मा** का अर्थ है – बीज। इन पौधों के बीज फल के अंदर होते हैं। इन्हें पुष्पी पादप भी कहते हैं। इनके बीजों का विकास अण्डाशय में होता है जो बाद में फल बन जाता है। इनमें भोजन का संचय बीजपत्रों या भ्रूणपोष में होता है।

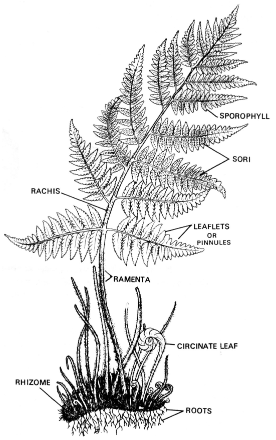

फर्न

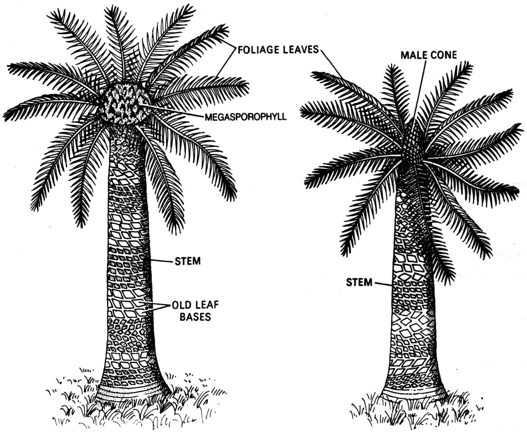

साइकस

बीजपत्रों की संख्या के आधार पर ऐंजियोस्पर्म को दो भागो में बांटा गया है–

- **एकबीजपत्री –** इनके बीज में एक पत्र पाया जाता है, जैसे – गेहूँ, मक्का।
- **द्विबीजपत्री –** इनके बीजपत्र में दो पत्र पाए जाते हैं, जैसे – चना, सेम।

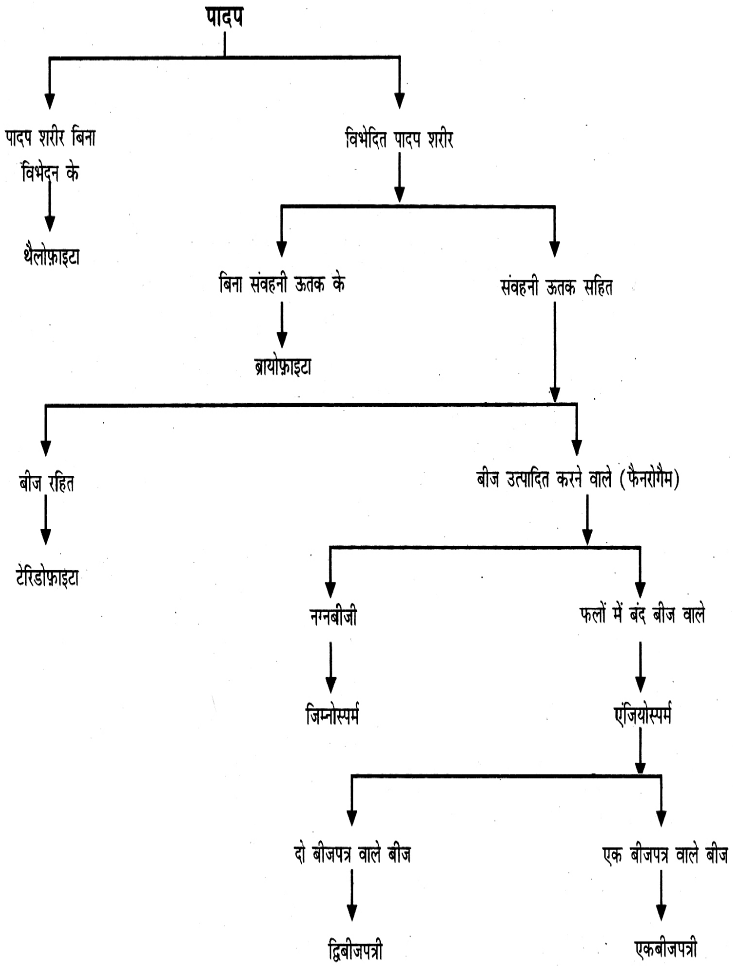

चित्र– पादपों का वर्गीकरण

5. **ऐनिमेलिया –** इस वर्ग में यूकैरियोटिक, बहुकोशिक और विषमपोषी जीव रखे गए हैं। इनकी कोशिकाओं में कोशिका–भित्ति नहीं पाई जाती। अधिकतर जंतु चलायमान होते हैं।

ऐनिमेलिया के वर्गीकरण हेतु क्रियाकलाप (Activity)

निम्नलिखित जंतुओं का उनके प्रमुख लक्षणों के आधार पर वर्गीकरण कीजिए–

स्पॉजिला, हाइड्रा, फीताकृमि, गोलकृमि, केंचुआ, मक्खी, घोंघा, तारा मछली,

बैलेनोग्लोसस, रोहू, मेंढक, छिपकली, गौरैया, कुत्ता।

(प्रत्येक जन्तु के तीन–तीन ऐसे प्रमुख लक्षण लिखिए, जिनके आधार पर उसका वर्गीकरण किया गया है। **जैसे –** मछली जल में पाई जाती है, जल से बाहर निकालने पर वह मर जाती है क्योंकि यह जल में घुलित आक्सीजन का उपयोग करके गलफड़ों (Gills) के द्वारा श्वसन क्रिया करती है। शरीर पर शल्क पाए जाते हैं तथा शरीर नौकाकार होता है।)

- **शारीरिक रचना तथा विभेदीकरण के आधार पर एनीमेलिया का वर्गीकरण**

1. पोरीफेरा – पोरीफेरा का अर्थ है– छिद्रयुक्त प्राणी। ये अधिकतर समुद्री जल में पाए जाते हैं। ये अचल जीव हैं जो किसी आधार पर चिपके रहते हैं। इनमें नाल प्रणाली पाई जाती है। इनके पूरे शरीर में अनेक छिद्र पाए जाते हैं। ये छिद्र शरीर की नाल प्रणाली (Canal System) से जुड़े रहते हैं। नाल प्रणाली के माध्यम से शरीर में जल, ऑक्सीजन तथा भोज्य पदार्थों का संचरण होता है। इनका शरीर बाह्य कंकाल से ढका रहता है। इनमें ऊतकों का विभेदन नहीं होता। **उदाहरण –** स्पंज, जैसे– साइकॉन, यूप्लेक्टेला, स्पांजिला।

2. सीलेंट्रेटा – ये जलीय जंतु हैं, इनमें एक देहगुहा (Coelom) पाई जाती है। इनका शरीर आंतरिक एवं बाह्य परत का बना होता है। इनकी कुछ जातियां समूह में रहती हैं। **उदाहरण –** हाइड्रा, समुद्री एनीमोन, जैली फिश।

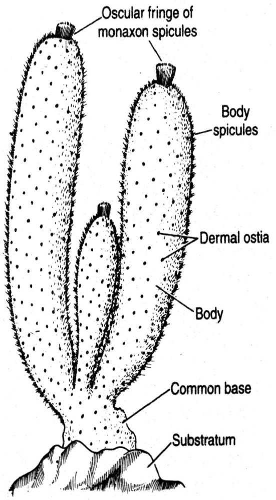

साइकॉन

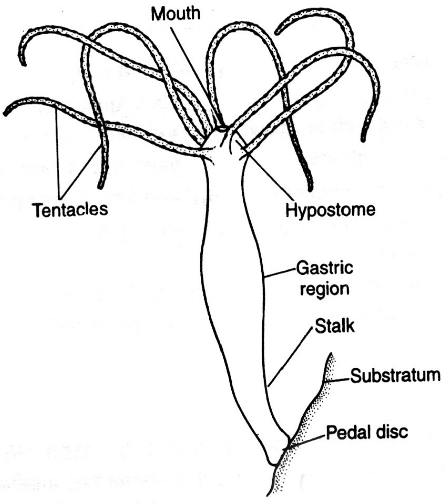

हाइड्रा

3. **प्लेटीहेल्मिन्थीज** – इनका शरीर चपटा होता है इसलिए इन्हें चपटेकृमि भी कहते हैं। इनमें वास्तविक देहगुहा का अभाव होता है। ये अधिकतर परजीवी होते हैं। **उदाहरण** – फीताकृमि, लिवरफ्लूक।

4. **निमेटोडा** – इनका शरीर बेलनाकार होता है। इनमें अंगतंत्र पूर्ण रूप से विकसित नहीं होते। ये अधिकतर परजीवी होते हैं। ये जन्तुओं में रोग उत्पन्न करते हैं। **उदाहरण** – गोलकृमि, पिनकृमि, फाइलेरिया।

5. **एनीलिडा** – इनमें वास्तविक देहगुहा पाई जाती है। इनमें पाचन, परिसंचरण, उत्सर्जन तथा तंत्रिका तंत्र पाए जाते हैं। इनका शरीर गोल एवं खण्डयुक्त होता है। **उदाहरण** – केंचुआ, नेरीस, जोंक।

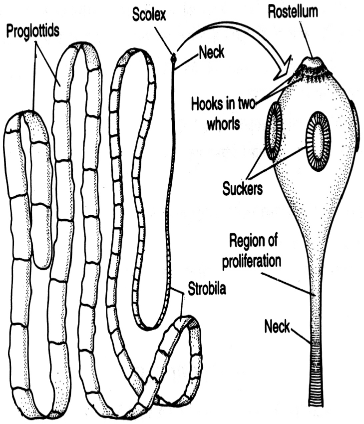

फीताकृमि

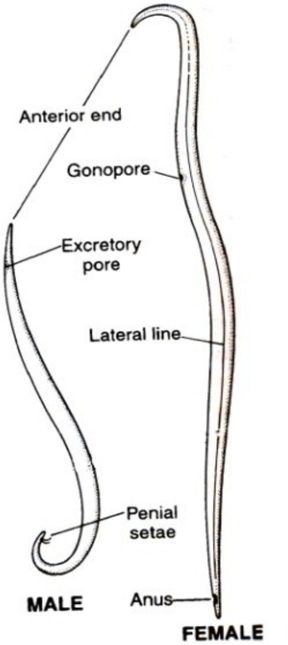

गोलकृमि

6. **आर्थोपोडा** – इनमें खुला परिसंचरण तंत्र पाया जाता है। अतः रूधिर, वाहिकाओं में नहीं बहता। देहगुहा रक्त से भरी रहती है। इनमें संधियुक्त पैर पाए जाते हैं। यह जंतु जगत का सबसे बड़ा संघ है। **उदाहरण** – तितली, मकड़ी, बिच्छू, मक्खी, केकड़े।

7. मोलस्का – इनका शरीर कोमल होता है, जो कैल्शियमयुक्त कवच से सुरक्षित रहता है। इनमें खुला संवहन–तंत्र पाया जाता है। **उदाहरण –** घोघा, सीप, आक्टोपस।

8. इकाइनोडर्मेटा – इन जंतुओं की त्वचा काँटेदार होती है। इनमें जल संवहन नाल तंत्र (Water vascular system) पाया जाता है। इनमें कैल्सियम कार्बोनेट का कंकाल एवं काँटे पाए जाते हैं। **उदाहरण –** तारा मछली (स्टारफिश्), समुद्री अर्चिन।

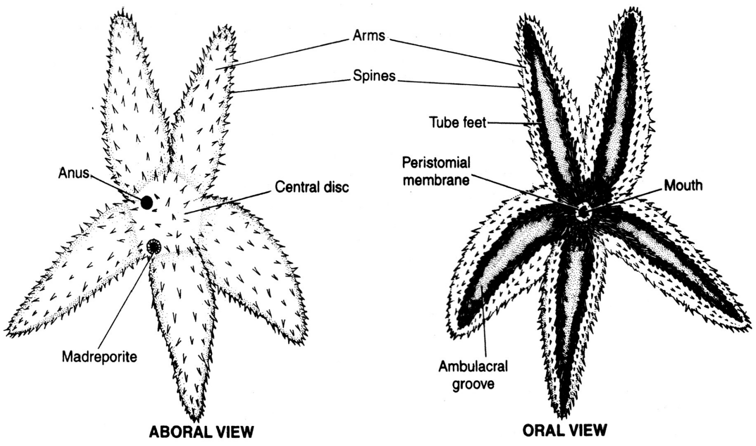

तारा मछली

9. **प्रोटोकार्डेटा –** ये देहगुहायुक्त जन्तु होते हैं। इनमें प्रारम्भिक अवस्था में नोटोकार्ड पाई जाती है। ये समुद्री जन्तु हैं। **उदाहरण –** बैलैनाग्लोसस, हर्डमेनिया, एम्फियोक्सस।

10. **वर्टीब्रेटा (कशेरूकी) –** इन जंतुओं में मेरूदण्ड तथा अन्त: कंकाल पाया जाता है। पेशियाँ कंकाल से जुड़ी रहती हैं, जो चलने में सहायक होती हैं। इनमें ऊतकों और अंगो का विभेदन होता है। इनमें मेरूरज्जु पाई जाती है।

वर्टीब्रेटा को पाँच वर्गों में विभाजित किया गया है–

- **मत्स्य –** इस वर्ग में समुद्री जल तथा मीठे जल (Marine water and fresh water) में पाई जाने वाली मछलियाँ रखी गयी हैं। इनकी त्वचा शल्क (Scales) अथवा प्लेटों से ढकी रहती है। ये अपनी मांसल पूँछ तथा पख (Fin)

की सहायता से पानी में तैरती हैं। इनका शरीर नौकाकार होता है। ये क्लोम (Gills) के द्वारा श्वसन क्रिया करती हैं। ये असमतापी होती हैं, अर्थात् इनके रक्त का तापमान जल के तापमान के साथ घटता–बढ़ता रहता है। इनके हृदय में दो कक्ष पाए जाते हैं। ये अंडे देती हैं। **उदाहरण –** रोहू, हिप्पोकैम्पस, एनाबास।

- **एम्फीबिया –** ये जंतु जल तथा स्थल दोनों पर रह सकते हैं। इनकी त्वचा पर शल्क नहीं पाए जाते तथा श्लेष्म ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं। इनका हृदय त्रिकक्षीय होता है। इनमें बाह्यकंकाल नहीं पाया जाता। क्लोम अथवा फेफड़ों द्वारा श्वसन होता है। इनमें वृक्क (Kidney) पाई जाती हैं। **उदाहरण** – मेंढक, सैलामेण्डर, टोड।

- **सरीसृप वर्ग** – ये असमतापी जन्तु हैं। इनका शरीर शल्कों से ढका रहता है। इनमें श्वसन फेफड़ों द्वारा होता है। इनका हृदय त्रिकक्षीय होता है, लेकिन मगरमच्छ का हृदय चार कक्षीय होता है। इनके अण्डे कठोर कवच से ढके रहते हैं। इन्हें अपने अण्डे जल में देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। **उदाहरण** – कछुआ, साँप, छिपकली, मगरमच्छ।

- **पक्षी वर्ग** – ये समतापी जंतु हैं अर्थात् इनके शरीर का तापमान वातावरण के तापमान के अनुसार घटता–बढ़ता नहीं है अपितु निश्चित रहता है। इनका हृदय चार कक्षीय होता है। इनका शरीर पंखों से ढका रहता है। श्वसन फेफड़ों द्वारा होता है। **उदाहरण –** सभी प्रकार के पक्षी।

- **स्तनधारी वर्ग** – इस वर्ग के जंतुओं के शरीर पर बाल पाए जाते हैं। त्वचा में स्वेद ग्रन्थियाँ तथा तेल ग्रन्थियाँ भी पाई जाती हैं। ये शिशुओं को जन्म देते हैं। शिशुओं के पोषण के लिए दुग्ध ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं। **उदाहरण** – बिल्ली, चमगादड़, व्हेल।

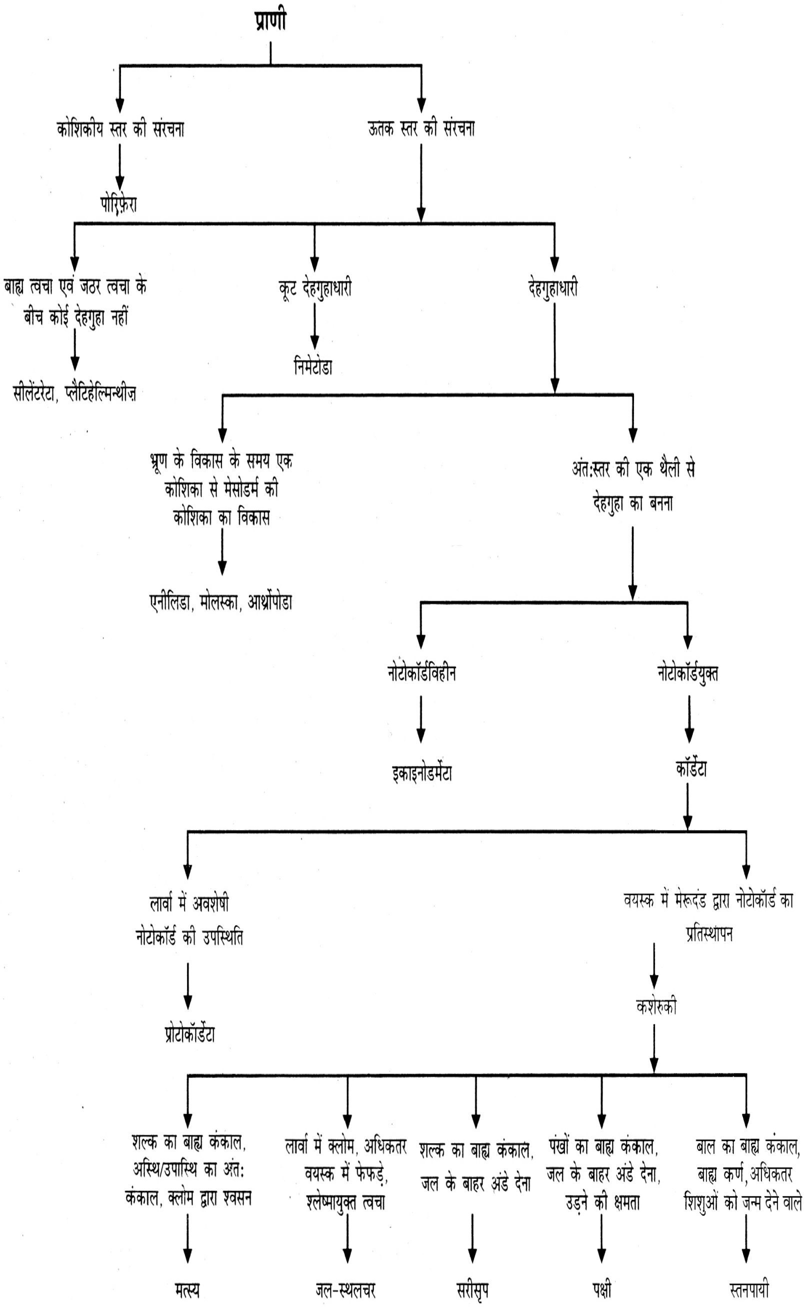

चित्र– एनीमेलिया का वर्गीकरण

शोध आधारित शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया द्वारा इस प्रकार से "जीवों में विविधता" का अध्ययन करके विद्यार्थियों में जीवों के वर्गीकरण के आधार की भी समझ बनेगी और वे "जीवों में विविधता" की अवधारणा को आत्मसात् कर सकेंगे। इस प्रकार से किया गया विज्ञान का शिक्षण–अधिगम नवाचार तथा गुणवत्तायुक्त होगा।

➢ शिक्षक प्रशिक्षक
पाठ्यचर्या विभाग
राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद उत्तराखंड
तपोवन रोड
देहरादून–248008
ई–मेल: gaursk9@gmail.com

पियानो की अभिगृहीतियाँ

■ डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मिश्र

महान गणितज्ञ कार्ल फ्रेडिरिक गाउस (सन् 1755–1855) की उक्ति है – 'विज्ञान की रानी गणित है और गणित की रानी अंकगणित है।'

अंकगणित के सौन्दर्य पर मुग्ध प्रसिद्ध गणितज्ञ लियोपोल्ड क्रोनेखर ने कहा – 'पूर्णांकों का सृजन ईश्वर ने किया है, शेष सब आदमी ने खोजा है।'

गाउस

लियोपोल्ड क्रोनेखर

जब पूर्णांकों की बात चलती है तब संख्या सिद्धान्त के विस्तृत एवं जटिल आकाश के इस आधारभूत समुच्चय के विषय में कुछ प्रश्न उठते हैं– प्राकृतिक सख्याएँ क्या हैं?, धनपूर्णांकों का योग साहचर्य और क्रम–विनिमेय आदि नियमों का पालन क्यों करता है? आदि।

इन सभी और ऐसे अनेक प्रश्नों के तर्कपूर्ण उत्तर देने के उद्देश्य से इटली के प्रसिद्ध गणितज्ञ जी. पियानो (सन् 1858 – 1932) ने सन् 1899 में, प्राकृतिक संख्याओं के विकास के संबंध में एक अभिगृहीती दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। वास्तव में पियानो संपूर्ण गणित को तार्किक कलन के द्वारा व्यक्त करना चाहते थे, जिस गणितीय चिंतन के परिणामस्वरूप प्राकृतिक संख्याओं पर आधारित प्रमेयों एवं कथनों का समाधान तार्किक प्रतीकों द्वारा प्रस्तुत हुआ। इस प्रकार पारपरिमित आगमन (transfinite induction) सिद्धान्त के सुस्पष्ट कथन का श्रेय भी पियानो को ही है।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पियानो ने एक अमूर्त समुच्चय (abstract set) N की कल्पना की और उसके अवयवों को प्राकृतिक संख्याएं कहा। इन संख्याओं के सम्बंध में पाँच अभिगृहीतियाँ ली जिन्हें 'पियानो की अभिगृहीतियाँ कहा जाता है।

पियानो की अभिगृहीतियाँ –

P_1. $1 \in N$

P_2. $\forall\ n \in N\ \ \exists$ अद्वितीय $n^+ \in N$

(जहाँ n^+ इस प्रसंग में ली गई प्राकृतिक संख्या n की उत्तरवर्ती या क्रमानुयायी है।)

P_3. $\forall\ n \in N,\ n^+ \neq 1$

P_4. $m^+ = n^+ \Rightarrow m = n;\ m, n \in N$

P_5. यदि N का कोई उपसमुच्चय M इस प्रकार है कि

(i) $1 \in M$

(ii) $\forall\ m \in M \Rightarrow m^+ \in M$; तो $M = N$

इन अभिगृहीतों के आधार पर, पियानो की तार्किक कलन की धारणा के अनुरूप, उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर आसानी से मिल गए।

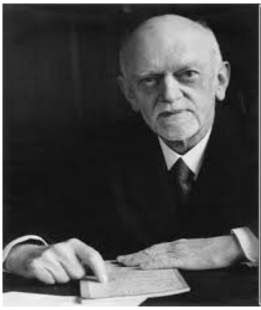

जी. पियानो

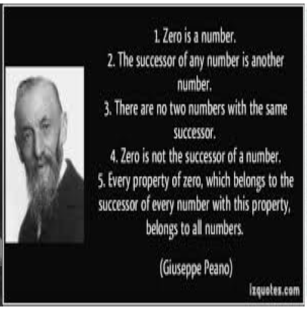

पियानो और मूल अभिगृहीत

पियानो की स्मृति में जारी डाक टिकट

उपरोक्त पांचवी अभिगृहीत (P_5) को **पियानो की आगमन अभिगृहीत** (Axiom of induction) कहते हैं। इसी पांचवी अभिगृहीत से गणितीय आगमन का सिद्धान्त (Principle of mathematical induction) स्पष्ट रूप से स्थापित होता है। **गणितीय आगमन का प्रथम सिद्धान्त** इस स्तर और लक्षित विषयवस्तु का एक अवयव है, अत: यह प्रकरण वहीं तक केन्द्रित रहेगा।

गणितीय आगमन का प्रथम सिद्धान्त – प्राकृतिक संख्या n के लिए कहा गया कोई कथन P(n) सभी प्राकृतिक संख्याओं के लिए सत्य होगा यदि–

(i) कथन n=1 के लिए सत्य है।

(ii) कथन n=r के लिए सत्य है तो वह $n=r^+$ के लिए सत्य है।

ध्यातव्य है कि पियानो की अभिगृहीतियों के आधार पर प्राकृतिक संख्याओं के विस्तार, उनकी योग आदि संक्रियाओं और नियमों को स्पष्ट किया जाता है, किन्तु 'गणितीय आगमन का सिद्धान्त' धन पूर्णांकों पर आधारित अनेक जटिल कथनों की सत्यता सिद्ध करने के लिए अकाट्य माना जाता है।

पियानो की अभिगृहीतियों पर आधारित कुछ आधारभूत प्रमेय :–

प्रमेय 1 :– यदि $m, n \in N$ तो

(i) $m = n \Rightarrow m^+ = n^+$

(ii) $m \neq n \Rightarrow m^+ \neq n^+$

उपपत्ति : (i) $m \in N \Rightarrow m^+ \in N$ ....P(2) से

$n \in N \Rightarrow n^+ \in N$

अत: $m = n \Rightarrow m^+ = n^+$

(ii) यदि ऐसा सम्भव है तो मान लिया कि

$m \neq n \Rightarrow m^+ = n^+$

$\Rightarrow m = n$ ....P(4) से

यह असंभव है, अत: हमारी परिकल्पना $m = n \Rightarrow m^+ = n^+$ असत्य है। अत:

$m \neq n \Rightarrow m^+ \neq n^+$

प्रमेय 2 :– प्राकृतिक संख्याओं के समुच्चय में 1 ही ऐसा अद्वितीय अवयव है जो किसी संख्या का क्रमानुयायी नहीं है।

प्रमेय 3 :– गणितीय आगमन का प्रथम सिद्धान्त – प्राकृतिक संख्या n के लिए कहा गया कोई कथन P(n) सभी प्राकृतिक संख्याओं के लिए सत्य होगा यदि–

(i) कथन n=1 के लिए सत्य है।

(ii) कथन n=r के लिए सत्य है तो वह $n=r^+$ के लिए सत्य है।

उपपत्ति :– माना N का कोई उपसमुच्चय M है और कोई कथन P(m), $\forall m \in M$; सत्य है, तो यदि

(i) P(1)सत्य है $\Rightarrow 1 \in M$, और

(ii) P(r) के सत्य होने पर यदि P (r^+) सत्य है, तब

$$r \in M \Rightarrow r^+ \in M$$

अत: M=N (A_5 से)

और कथन सभी धन पूर्णांक मानों के लिए सत्य है।

प्रमेय 4 :- कोई प्राकृतिक संख्या अपने क्रमानुयायी के बराबर नहीं होती अर्थात्

$$n \neq n^+, \quad n \in N$$

प्राकृतिक संख्याओं की संरचना :

प्राकृतिक संख्याओं के समुच्चय N का एक अवयव 1 है अर्थात् $1 \in N$, तो पियानो की अभिगृहीतियों से

$1 \in N \Rightarrow 1^+ \in N$, $1^+ \in N \Rightarrow (1^+)^+$ N , $(1^+)^+ \in N \Rightarrow ((1^+)^+)^+ \in N$--- आदि।

यदि 1^+ को 2 कहें $(1^+)^+ = 2^+$ को 3 कहें तो आगे इसीप्रकार क्रमश: सभी पूर्णांक अपने पूर्व के पूर्णांक के उत्तरवर्ती के रूप में प्राप्त होते हैं।

प्राकृतिक संख्याओं में योग की संक्रिया :

परिभाषा : योग की प्राकृतिक संख्याओं में योग की क्रिया एक अद्वितीय संक्रिया है, जिसमें

A_1. $m+1 = m^+ , \quad \forall m \in N$

A_2. $m+n^+ = (m+n)^+ , \quad \forall m,n \in N$

योग की संक्रिया के नियमों का प्रमाणन

पियानो ने उक्त अभिगृहीतों और उक्त चार प्रमेयों के आधार पर प्राकृतिक संख्याओं के उन गुणधर्मों को आसानी से सिद्ध करके दिखाया जिन्हें उस समय तक कुछ उदाहरणों अथवा अपने अन्तर्ज्ञान के आधार पर सत्य मान लिया जाता था। यहाँ, योग के संवरक नियम को स्थापित सत्य मानकर केवल साहचर्य और क्रमविनिमेय के नियमों की सत्यता के प्रमाण दिए जा रहे हैं–

योग का साहचर्य नियम : यदि l, m, n तीन प्राकृतिक संख्याएं है तो –

$$(l+m)+n = l+(m+n)$$

उपपत्ति: माना कथन $P(n): (l+m)+n = l+(m+n), \quad \forall n \in N$ है, तब

(i) $n = 1$ के लिए

$P(1) : (l+m)+1 = (l+m)^{+}$ .... (A_1से)

$= l + m^{+}$ .... (A_2से)

$= l+(m+1)$ .... (A_1से)

$\Rightarrow (l+m)+1 = l+(m+1)$ अत: $P(1)$ सत्य है।

अब माना $n=r$ के लिए $P(r) : (l+m)+r = l+(m+r)$ सत्य है, तब –

$P(r)$ सत्य है $\Rightarrow (l+m)+r = l+(m+r)$

$\Rightarrow [(l+m)+r]^{+} = [l+(m+r)]^{+}$

$\Rightarrow (l+m)+r^{+} = l+(m+r)^{+}$

$\Rightarrow (l+m)+r^{+} = l+(m+r^{+})$

$\Rightarrow P(r^{+})$ सत्य है।

अत: $P(n): (l + m) +n = l + (m + n)$ सत्य है।

योग का क्रम विनिमेय नियम : यदि m, n दो प्राकृतिक संख्याएं है तो

$$m + n = n + m$$

उपपत्ति : माना यह कथन किसी प्राकृतिक संख्या m के लिए इस प्रकार है–

$P(n) : m + n = n + m, \quad \forall n \in N$

(a) यदि $n = 1$, तब $P(1) : m + 1 = 1 + m$

अब सिद्ध करना है कि P(1) सत्य है, तो माना m के लिए यह कथन है–

$E(m) : m + 1 = 1 + m$

(i) $m=1 \Rightarrow E(1) : 1+1 = 1+1$ जो सत्य है।

(ii) $m=r$ के लिए माना $E(r): r+1=1+r$ सत्य है, तब

E(r) सत्य है $\Rightarrow r+1 = 1+r$

$\Rightarrow (r+1)^+ = (1+r)^+$ (प्रमेय 1 से)

$\Rightarrow r+1^+ = 1+r^+$ (A_2 से)

$\Rightarrow r+(1+1) = 1+(r+1)$ (A_1 से)

$\Rightarrow (r+1)+1 = 1+(r+1)$ (साहचर्य नियम से)

$\Rightarrow r^+ + 1 = 1 + r^+ \Rightarrow E(r^+)$ सत्य है।

इस प्रकार E(m) सत्य है। अर्थात् P(1) सत्य है।

(b) सिद्ध करना है कि $P(r) \Rightarrow P(r^+)$ सत्य है।

कथन $P(n) : m + n = n + m$

$n = r$ के लिए

माना $P(r) : m + r = r + m$ सत्य है। (प्रमेय 1 से)

अत: P(r) सत्य है $\Rightarrow m + r = r + m$

$\Rightarrow (m + r)^+ = (r + m)^+$

$\Rightarrow m + r^+ = r + m^+$ [A_2 से]

$\Rightarrow m + r^+ = r + (m+1)$ [A_1 से]

$\Rightarrow m + r^{+} = r + (1 + m)$ [योग का क्रमविनिमेय]

$\Rightarrow m + r^{+} = (r+1) + m$ [साहचर्य से]

$\Rightarrow m + r^{+} = r^{+} + m$

$\Rightarrow$ P(r) सत्य है।

अत: $P(n) : m + n = n + m, \quad \forall n \in N$ सत्य है।

गणितीय आगमन के सिद्धान्त द्वारा प्रमाणित कुछ कथन–

उदाहरण 1: गणितीय आगमन द्वारा सिद्ध कीजिए कि $11^{n+2} + 12^{2n+1}$, $n \in N$; 133 से विभाज्य है।

हल: $P(n) = 11^{n+2} + 12^{2n+1}$ में $n=1$ रखने पर

$$P(1) = 11^{1+2} + 12^{2+1} = 11^{3} + 12^{3} = 3059 = 133x23$$

$\Rightarrow$ P (1) के लिए कथन सत्य है।

माना कि कथन $n=r$ के लिए सत्य है अर्थात्

$P(r) = 11^{r+2} + 12^{2r+1} = 133k, \ k \in N$

तब $P(r+1) = 11^{(r+1)+2} + 12^{2(r+1)+1} = 11^{r+3} + 12^{2r+3}$

$= 11.11^{r+2} + 12^{2}.12^{2r+1} = 11.11^{r+2} + 144.12^{2r+1}$

$= 11.11^{r+2} + 133.12^{2r+1} + 11.12^{2r+1}$

$= 11.11^{r+2} + 11.12^{2r+1} + 133.12^{2r+1}$

$= 11 (11^{r+2} + 12^{2r+1}) + 133.12^{2r+1}$

$= 11 \ P(r) + 133 \ . \ 12^{2r+1} = 11 \ . \ 133k + 133 \ . \ 12^{2r+1}$

$= 133\ (11k + 12^{2r+1}) \Rightarrow P(r+1)$ भी 133 से विभाज्य है।

अत: प्रत्येक $n \in N$ के लिए $11^{n+2} + 12^{2n+1}$, 133 से विभाज्य है।

उदाहरण 2: गणितीय आगमन द्वारा सिद्ध कीजिए कि व्यंजक

$x\,(x^{n-1} - na^{n-1}) + a^n(n-1),\ n>1,\ n \in N$ के लिए सदैव $(x-a)^2$ से विभाज्य है।

हल: माना

$$P(n) = x\,(x^{n-1} - na^{n-1}) + a^n(n-1),\ \ n>1,\ \ n \in N \ ....(1)$$

चूँकि $n > 1$ अत: $n=2$ के लिए विभाज्यता की जाँच आवश्यक है। अब $n=2$ के लिए

$$P(2) = x\,(x^{2-1} - 2a^{2-1}) + a^2(2-1)$$

$$= x(x-2a) + a^2$$

$$= x^2 - 2ax + a^2$$

$$= (x-a)^2$$

अत: $P(2);\ (x-a)$ से विभाज्य है।

अब माना कि $n=r,\ r>2$ के लिए $P(r),\ (x-a)^2$ से विभाज्य है तब

$$P(r) = x\,(x^{r-1} - ra^{r-1}) + a^r(r-1) = (x-a)^2 . f(x)$$

$$\Rightarrow x\,(x^{r-1} - ra^{r-1}) + a^r(r-1) = (x-a)^2 . f(x)$$

$$\Rightarrow x^r = r\,x\,a^{r-1} - a^r(r-1) + (x-a)^2 . f(x) \ ....(2)$$

तब $n = r+1$ के लिए

$$P(r+1) = x[\,x^r - (r+1)\,a^r] + a^{r+1}\,r = x\,.\,x^r - (r+1)\,x\,a^r + r\,a^{r+1}$$

$$= x[r\,x\,a^{r-1} - a^r\,(r-1) + (x-a)^2\,f(x)\,] - (r+1)xa^r + r\,a^{r+1}$$

$$= r\,x^2\,a^{r-1} - x\,a^r\,(r-1) + x\,(x-a)^2 f(x) - (r+1)\,x\,a^r + r\,a^{r+1}$$

$= r x^2 a^{r-1} - x a^r (r-1+ r+1)+x (x-a)^2 f(x) +r a^{r+1}$

$= r x^2 a^{r-1} - 2 r x a^r + r a^{r+1} +x (x-a)^2 f(x)$

$= r a^{r-1}(x^2 - 2xa + a^2) +x (x-a)^2 f(x)$

$= r a^{r-1} (x - a)^2 +x (x-a)^2 f(x)$

$= \{r a^{r-1} +x f(x)\} (x-a)^2$

$\Rightarrow P(r+1)$ भी $(x-a)^2$ से विभाज्य है।

अत: गणितीय आगमन के सिद्धान्त से P(n) , n $\in N$ के लिए $(x-a)^2$ से विभाज्य है।

उदाहरण : आगमन के सिद्धान्त से सिद्ध कीजिए कि

$$(\cos\theta + i \sin\theta)^n = \cos n\theta + i \sin n\theta \;;\; , \;\; \forall \;\; n \in N$$

हल: $(\cos\theta + i \sin\theta)^n = \cos n\theta + i \sin n\theta$ में n=1 रखने पर

$$(\cos\theta + i \sin\theta)^1 = \cos 1.\theta + i \sin 1.\theta = \cos\theta + i \sin\theta$$

जो सत्य है।

अब माना कि कथन n=r के लिए सत्य है,

$$\Rightarrow (\cos\theta + i \sin\theta)^r = \cos r\theta + i \sin r\theta$$

दोनों पक्षों में $\cos\theta + i \sin\theta$ से गुणा करने पर

$$(\cos\theta+i \sin\theta)(\cos\theta + i \sin\theta)^r=(\cos r\theta +i \sin r\theta)(\cos\theta+i \sin\theta)$$

$$(\cos\theta + i \sin\theta)^{r+1} = (\cos\theta \cos r\theta - \sin\theta \sin r\theta)$$

$$+ i (\sin\theta \cos r\theta + \cos\theta \sin r\theta)$$

$$= \cos (r+1) \theta + \sin (r+1)\theta$$

⇒ कथन n=r+1 के लिए भी सत्य है।

अतः दिया गया कथन सत्य है।

इसी प्रकार प्राकृतिक संख्याओं और उनके नियमों की स्थापना एवं उन्हें सिद्ध करने के लिए पियानो की अभिगृहीतियाँ गणितीय आधार हैं। साथ ही धनपूर्णांकों पर आधारित किसी भी कथन जैसे : $\sum_{1}^{n} n = \frac{n(n+1)}{2}$, ∀ n ∈ N ;

$\sum_{1}^{n} ar^{n-1} = \frac{a(r^n - 1)}{r-1}$, ∀ n ∈ N, r>1 ;

$\frac{2n!}{2^{2n}(n!)^2} \leq \frac{1}{(3n+1)^{\frac{1}{2}}}$, ∀ n ∈ N आदि की अकाट्य प्रमाणिकता के लिए गणितीय आगमन के सिद्धान्त का आश्रय लेते हैं।

गणितीय आगमन का सिद्धान्त ऐतिहासिक दृष्टि में :- गणनाओं में इस तरह के उपयोग के प्रमाण 600 ई.पू. पाइथागोरस के अनुयायियों और भारत में भाष्कराचार्य द्वितीय (1114-1185 ई.) की कृतियों में मिलते हैं। सिद्धान्त के रूप में इसकी मूल सोच का श्रेय ब्लेज पास्कल (1623-1662 ई.) को दिया जाता है। इस सिद्धान्त का उक्त नाम आगस्ट डिमार्गन (1806-1871 ई.) ने दिया जो 1838 ई. में 'पेनी साइक्लोपीडिया लंदन' में अंकित हुआ, किन्तु आगमन के सिद्धान्त का स्पष्ट कथन जी. पियानो ने 1899 ई. में दिया जो अंको पर आधारित गणितीय प्रमेयों को तार्किक कलन के द्वारा, सिद्ध करने का साधन बना।

➤ विज्ञान परिषद प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद-211002
उत्तर प्रदेश

कार्बनिक हाइड्रॉक्सी यौगिक – ऐल्कोहॉल एव फीनॉल

■ डा. बबिता अग्रवाल

जब ऐलिफैटिक और ऐरोमैटिक हाइड्रोकार्बन से कोई हाइड्रोजन का परमाणु हाइड्रॉक्सिल समूह द्वारा प्रतिस्थापित होता है तो कार्बनिक हाइड्रॉक्सी यौगिक बनते हैं, ये क्रमश: ऐल्कोहॉल एवं फीनॉल कहलाते हैं। ऐल्केन का हाइड्रॉक्सी व्युत्पन्न ऐल्कोहॉल (R–OH) है एवं बेंजीन का हाइड्रॉक्सी व्युत्पन्न फीनॉल (Ar–OH) है।

ऐल्कोहॉल	फीनॉल
R–H	C_6H_6
R–OH	C_6H_5 OH

ऐल्कोहॉल में एक अथवा अधिक –OH समूह संतृप्त कार्बन (sp^3 हाइब्रिडाइज्ड) से सीधे जुड़े होते हैं, जबकि फीनॉल में –OH समूह बेंजीन रिंग के कार्बन से सीधे जुड़ा होता है। जब –OH समूह SP^2 हाइब्रिडाइज्ड कार्बन से जुड़ा होता है वे इनॉल (enol) कहलाते हैं।

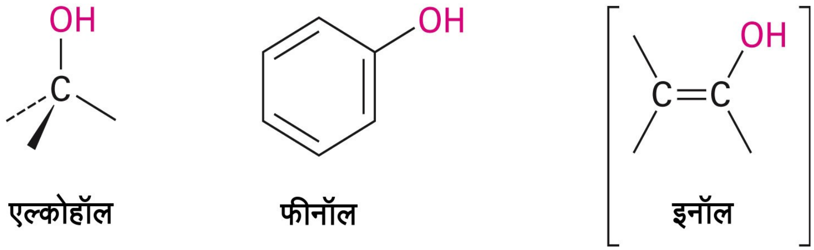

ये अत्यन्त महत्वपूर्ण विलायक एवं रासायनिक संश्लेषण मध्यवर्ती (Synthetic intermediate) हैं। मेथेनॉल (CH_3–OH) जिसे मेथिल ऐल्कोहॉल कहते है एक विलायक है तथा ईधन में प्रयुक्त करने के लिये बड़ी मात्रा में उत्पादित किया जाता है। एथेनॉल (C_2H_5OH) या स्प्रिट का उपयोग विलायक के रूप में, चिकित्सा में, जीवाणुनाशक एवं फर्नीचर पॉलिश के थिनर के रूप में होता है। फीनॉल (C_6H_5OH) के भी विविध उपयोग हैं तथा पूरे समूह को फीनॉल नाम दिया गया है।

ऐल्कोहॉल एवं फीनॉल का वर्गीकरण

ऐल्कोहॉलों एवं फीनॉलों का वर्गीकरण उनमें उपस्थित –OH समूह की संख्या के आधार पर किया जाता है।

ऐल्कोहॉलों का वर्गीकरण

1. **मोनो हाइड्रिक ऐल्कोहॉल** – जिनमें एक –OH समूह उपस्थित हो जैसे मेथेनॉल (CH_3OH), एथेनॉल (C_2H_5OH) इत्यादि। मोनो हाइड्रिक ऐल्कोहॉल प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक कार्बन से जुड़ाव के आधार पर तीन प्रकार के होते हैं।
2. **डाइ हाइड्रिक ऐल्कोहॉल** – जिनमें दो OH समूह पाए जाते हैं जैसे $CH_2OH.CH_2OH$ (ग्लाइकोल)
3. ट्राई हाइड्रिक ऐल्कोहॉल– जिनमें तीन –OH समूह होते हैं जैसे $CH_2OH.CHOH.CH_2OH$ (ग्लिसराल)।
4. **पॉली हाइड्रिक ऐल्कोहॉल** – जिनमें तीन से अधिक –OH समूह होते हैं।

मोनो हाइड्रिक ऐल्कोहॉल का वर्गीकरण

OH समूह किस प्रकार के कार्बन से जुड़ा है इस पर मोनो हाइड्रिक ऐल्कोहॉल का वर्गीकरण आधारित होता है।

1– प्राथमिक ऐल्कोहॉल – जब OH समूह प्राथमिक कार्बन (कार्बन में 2H एवं 1 ऐल्किल) से जुड़ा हो।

2– द्वितीयक ऐल्कोहॉल – जब OH समूह द्वितीयक कार्बन (कार्बन में 1H एवं 2 ऐल्किल समूह) से जुड़ा हो।

3– तृतीयक ऐल्कोहॉल – जब OH समूह तृतीयक कार्बन (कार्बन में 3 ऐल्किल समूह) से जुड़ा हो।

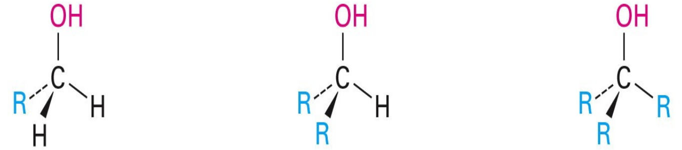

प्राथमिक(1°)ऐल्कोहॉल   द्वितीयक(2°)ऐल्कोहॉल   तृतीयक(3°)ऐल्कोहॉल

4– ऐलिलिक ऐल्कोहॉल – जब OH समूह C=C से अगले SP^3 संकरित कार्बन अर्थात ऐलिलिक कार्बन से जुड़ा हो।

5– बेंन्जिलिक ऐल्कोहॉल – जब OH समूह ऐरोमेटिक रिंग से अगले SP^3 संकरित कार्बन से जुड़ा हो।

6– ऐलिलिक एवं बेंन्जिलिक भी प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक हो सकते हैं।

7– वाइनिलिक ऐल्कोहॉल– जब OH समूह SP^2 संकरित कार्बन जैसे वाइनिलिक कार्बन से जुड़ा हो।

$CH_2=CH–OH$ (vinyl alcohol)

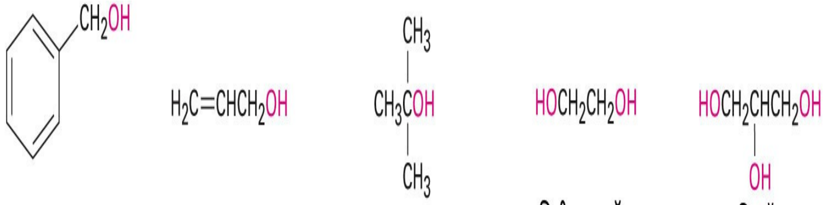

बेन्जिल ऐल्कोहॉल (फेनिल मेथेनॉल) | एलिल ऐल्कोहॉल (2-प्रोपिन-1-ऑल) | तृतीयक ऐल्कोहॉल (2-मेथिल-2-प्रोपेनॉल) | एथिलीन ग्लाइकॉल (1,2-एथेन डाईऑल) | ग्लिसरॉल (1,2,3-प्रोपेन ट्राईऑल)

फीनॉलों का वर्गीकरण एवं नामपद्धति

1– इसी प्रकार फीनॉल भी मोनो हाइड्रिक, डाइ हाइड्रिक एवं ट्राई हाइड्रिक होते हैं। जब हाइड्रॉक्सिल समूह ऐरोमैटिक रिंग से जुड़ा होता है तो ये **फीनॉल** (Ar–OH) कहलाते हैं।

2– बेंजीन का सबसे सरलतम हाइड्रॉक्सी व्युत्पन्न फीनॉल (C_6H_5OH) है। यही इसका सामान्य तथा IUPAC नाम है। इसे कार्बोलिक अम्ल भी कहते है। सर्वप्रथम इसका पृथक्करण उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में कोलतार से किया गया था।

3– बेंजीन के अन्य मोनो हाइड्रॉक्सी व्युत्पन्न हैं– O–क्रिसॉल, m–क्रिसॉल. एवं p–क्रिसॉल आदि। बेंजीन के डाइ हाइड्रॉक्सी व्युत्पन्न हैं केटेकॉल, रिसार्सिनॉल, क्विनॉल आदि।

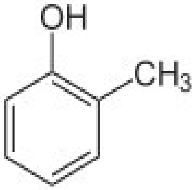

O–क्रिसॉल

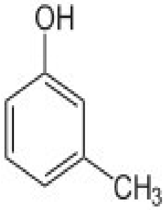

m–क्रिसॉल

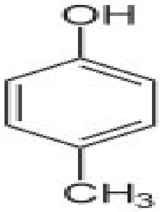

p–क्रिसॉल

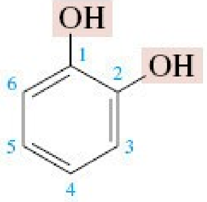

1,2–बेन्जीन डाईऑल
(पाइरोकैटेकोल)

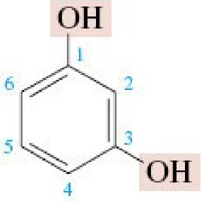

1,3–बेन्जीन डाईऑल
(रिसार्सिनॉल)

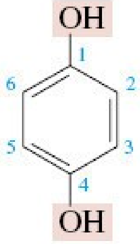

1,4– बेन्जीन डाईऑल
(हाइड्रोक्विनोन)

4– इसके प्रतिस्थापन यौगिकों के नामकरण में बेंजीन का नामकरण पद्धति का उपयोग करते हुये अंत में फीनॉल लगाते हैं एवं जिस कार्बन से OH समूह जुड़ा है वहीं से संख्या 1 शुरु होती है।

सामान्य नाम	– फीनॉल	O– क्रीसॉल	m– क्रीसॉल	p– क्रीसॉल
IUPAC नाम	– फीनॉल	2–methyl phenol	3–methyl phenol	4–methyl phenol

ऐल्कोहॉल की नामपद्धति

- ऐल्कोहॉल के नामकरण की दो पद्धतियाँ हैं : समान्य पद्धति एवं IUPAC पद्धति
- समान्य पद्धति से ऐल्कोहॉल का नामकरण करने के लिये ऐल्किल समूह के सामान्य नाम के साथ ऐल्कोहॉल शब्द जोड़ा जाता है।
- IUPAC पद्धति से नामकरण के लिये ऐल्केन के अंतिम –e को हटाकर –ol लगाते हैं।

यौगिक	सामान्य नाम	**IUPAC नाम**
CH_3OH	मेथिल ऐल्कोहॉल	Methanol
CH_3-CH_2-OH	एथिल ऐल्कोहॉल	Ethanol
$CH_3-CH_2-CH_2-OH$	n- प्रोपिल एल्कोहॉल	Propan–1–ol

नामकरण के कुछ नियम

- सर्वप्रथम OH समूह युक्त कार्बन की सबसे लम्बी चेन चुनते हैं एवं उक्त ऐल्केन के अंतिम –e को हटाकर –ol लगाते हैं
- चेन क्रमांकन उस सिरे से करते हैं जो –OH समूह के समीप हो।
- OH समूह तथा अन्य प्रतिस्थापियों की स्थिति उन कार्बन परमाणुओं के क्रमांक को प्रस्तुत कर दर्शाई जाती है जिससे वे जुड़े हों।
- एक से अधिक प्रतिस्थापियों की स्थिति में अ ब स क्रम में (alphabetical order) में प्रतिस्थापियों को लिखा जाता है।

$$CH_3-CH_2-CH_2-CH_2-OH \quad \text{Butan–1–ol}$$

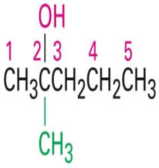

2-Methyl-2-pentanol
(New: 2-Methylpentan-2-ol)

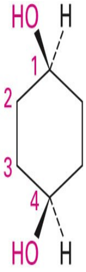

***cis*-1,4-Cyclohexanediol**
(New: *cis*-Cyclohexane-1,4-diol)

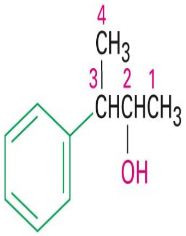

3-Phenyl-2-butanol
(New: 3-Phenylbutan-2-ol)

ऐल्कोहॉलों एवं फीनालों के गुणधर्म

1– **क्वथनांक (boiling point)**: ऐल्कोहॉलों एवं फीनॉलों के क्वथनांक लगभग समान Mol. Wt वाले ऐल्केन एवं ऐल्किल हेलाइड की तुलना में उच्चतर होते हैं।

H_2O	$CH_3-CH_2-CH_2-CH_3$	$CH_3-CH_2-CH_2-CH_2Cl$	$CH_3-CH_2-CH_2-CH_2-OH$
MW=18	MW=58	MW=92.5	MW=74
bp=100°C	bp=0 °C	bp=77 °C	bp=116 °C
C_6H_6	C_6H_5OH	$C_6H_5CH_3$	$C_6H_5CH_2O$
MW=78	MW=94	MW=92	MW=108
bp=80 °C	bp=182 °C	bp=110 °C	bp=203 °C

2– **हाइड्रोजन बन्ध–** जल की तरह ऐल्कोहॉल एवं फीनॉल हाइड्रोजन बंध बनाते हैं। ये अंतरआण्विक (Intermolecular H–bond) हाइड्रोजन बंध बनाते हैं। यह अंतरआण्विक हाइड्रोजन बंध द्रव अवस्था (विलयन) में उपस्थित होता है परन्तु गैसीय अवस्था में टूट जाता है अर्थात जब क्वथनांक के समीप होता है। अंतर आण्विक हाइड्रोजन बंध की उपस्थिति के कारण ही एल्कोहॉलों एवं फीनॉलों के क्वथनांक उच्च होते हैं। क्योंकि हाइड्रोजन बंध तोड़ने के लिये अतिरिक्त उर्जा की, आवश्यकता होती है।

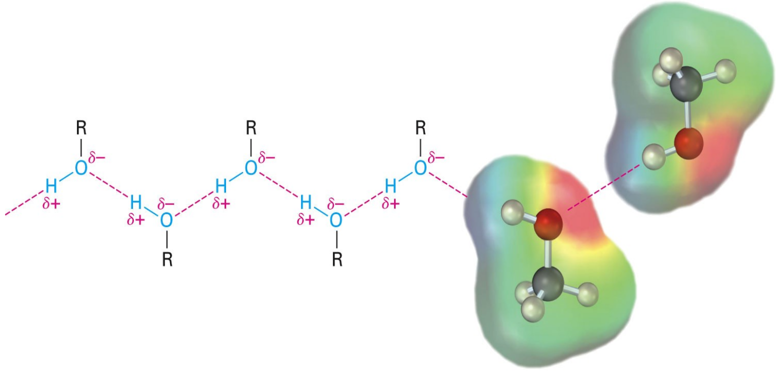

हाइड्रोजन बन्ध

ऐल्कोहॉलों एवं फीनॉलों की अम्लता एवं क्षारकता

- ऐल्कोहॉल एवं फीनॉल दुर्बल अम्ल है
- जल को प्रोटॉन देकर H_3O^+ (हाइड्रोनियम आयन) एवं ऐल्कॉक्साइड आयन (RO^-) या फीनॉक्साइड आयन (Aro^-) बनाते हैं।

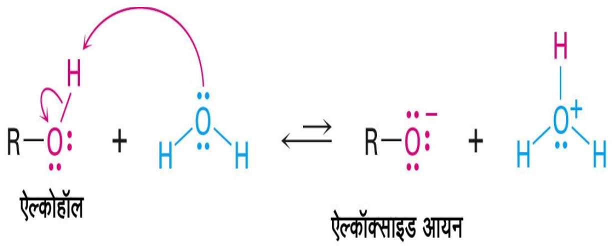

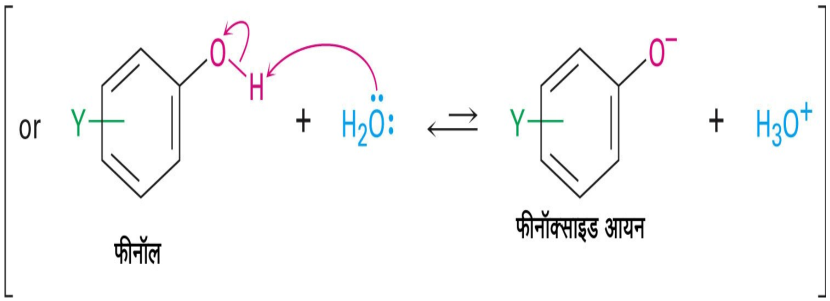

ऐल्कोहॉल

- ऐल्कोहॉल दुर्बल अम्ल है अर्थात प्रबल क्षारकों को प्रोटॉन प्रदान कर ऐल्कॉक्साइड बनाते हैं।
- प्रबल क्षारक जैसे NaH, $NaNH_2$ एवं RMgX ग्रिगनार्ड अभिकर्मक
- सक्रिय धातुओं जैसे – सोडियम, पोटैशियम तथा एल्युमिनियम के साथ ऐल्कॉक्साइड एवं हाइड्रोजन देते हैं।

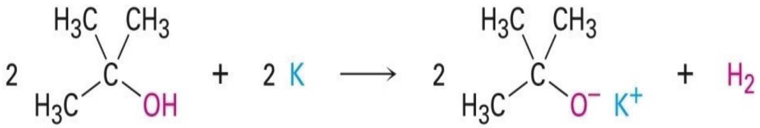

तृतीयक ब्यूटिल ऐल्कोहॉल
(2-मेथिल-2-प्रोपेनॉल)

पोटैशियम तृतीयक-ब्यूटॉक्साइड
(पोटैशियम 2-मेथिल-2-प्रोपेनोएट)

$$CH_3OH + NaH \longrightarrow CH_3O^- Na^+ + H_2$$

मेथेनॉल

सोडियम मेथॉक्साइड
(सोडियम मेथेनोएट)

$$CH_3CH_2OH + NaNH_2 \longrightarrow CH_3CH_2O^- Na^+ + NH_3$$

एथनॉल

सोडियम एथॉक्साइड
(सोडियम एथेनोएट)

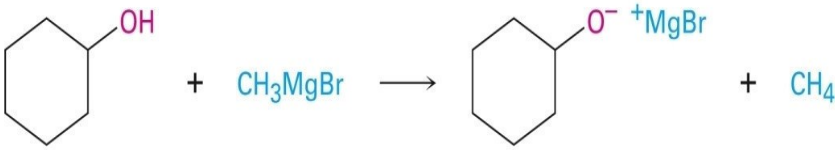

साइक्लोहैक्सानॉल

ब्रोमो मैग्नीशियम
साइक्लोहैक्सानोएट

फीनॉल

- फीनॉल भी सक्रिय धातुओं से अभिक्रिया करते हैं तथा फीनॉक्साइड एवं हाइड्रोजन देते हैं।

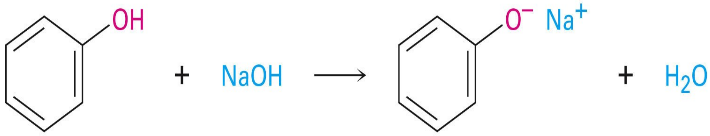

फीनॉल

सोडियम फीनॉक्साइड
(सोडियम फीनोएट)

- फीनॉल जलीय सोडियम हाइड्राक्साइड के साथ अभिक्रिया करके सोडियम फीनॉक्साइड बनाते हैं। (ऐल्कोहॉल जलीय NaOH से अभिक्रिया नहीं करते)
- अत: फीनॉल, ऐल्कोहॉलों एवं जल की अपेक्षा प्रबल अम्ल है।
- फीनॉल (pK_a–10) की अम्लता ऐल्कोहॉल (pK_a– 16) से अधिक होती है। क्योंकि फीनॉक्साइड आयन resonance stabilized होता है।
- इस प्रकार का resonance stabilization ऐल्कोहॉल में नहीं पाया जाता है

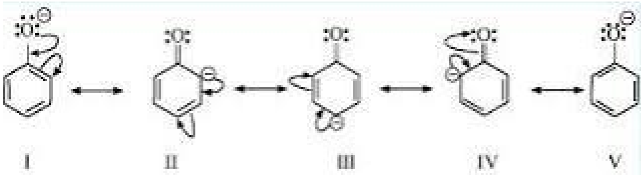

नाइट्रो फीनॉल

- नाइट्रोफीनॉल की अम्लीयता फीनॉल की अपेक्षा अधिक होती है।
- –I समूह फीनॉल की अम्लीयता बढ़ाते हैं।
- –I समूह ऋण आवेश का विस्थापन (delocalization of negative charge) करते हैं अत: फीनॉक्साइड आयन को स्थाई करते हैं ।
- + I समूह फीनॉल की अम्लीयता घटाते हैं।
- +I समूह ऋण आवेश का विस्थापन (delocalization of negative charge) रोकते हैं अत: फीनॉक्साइड आयन को अस्थाई बनाते हैं।
- अत: नाइट्रो फीनॉल (आर्थो, मेटा एवं पैरा) की अम्लीयता फीनॉल से अधिक है।

$$O_2N–C_6H_4–OH > C_6H_5OH$$

- पैरा– नाइट्रो फीनॉल > आर्थो– नाइट्रो फीनॉल > मेटा – नाइट्रो फीनॉल > फीनॉल

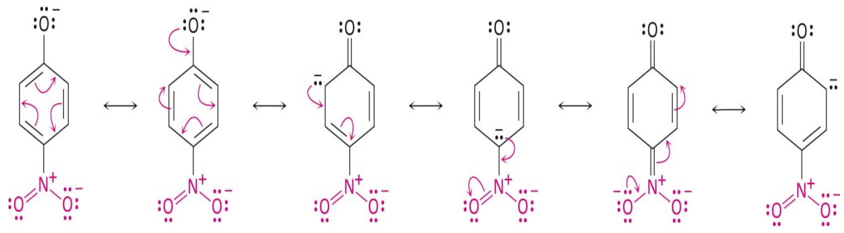

- क्रीसॉल की अम्लीयता फीनॉल से कम है।

$$C_6H_5OH > CH_3-C_6H_4-OH$$

- ऐल्कोहॉल दुर्बल क्षार (Bronsted base) हैं, प्रबल अम्ल के साथ उसका प्रोटॉन लेकर Oxonium ion (ROH_2^+) बनाते हैं।

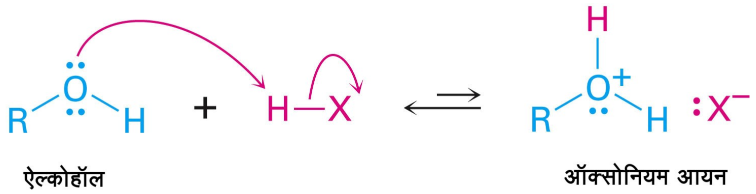

$$\left[\text{or} \quad ArOH \quad + \quad HX \quad \rightleftharpoons \quad Ar\overset{+}{O}H_2 \quad X^- \right]$$

ऐल्कोहॉल : बनाने की विधियॉ एवं गुणधर्म: एक अवलोकन

- ऐल्कोहॉल कई प्रकार के यौगिकों से बनाए जा सकते हैं।
- ऐल्कोहॉल से विभिन्न यौगिकों को प्राप्त किया जा सकता है
- अत: ऐल्कोहॉल रासायनिक संश्लेषण अभिक्रियाओं में बहुत उपयोगी है।

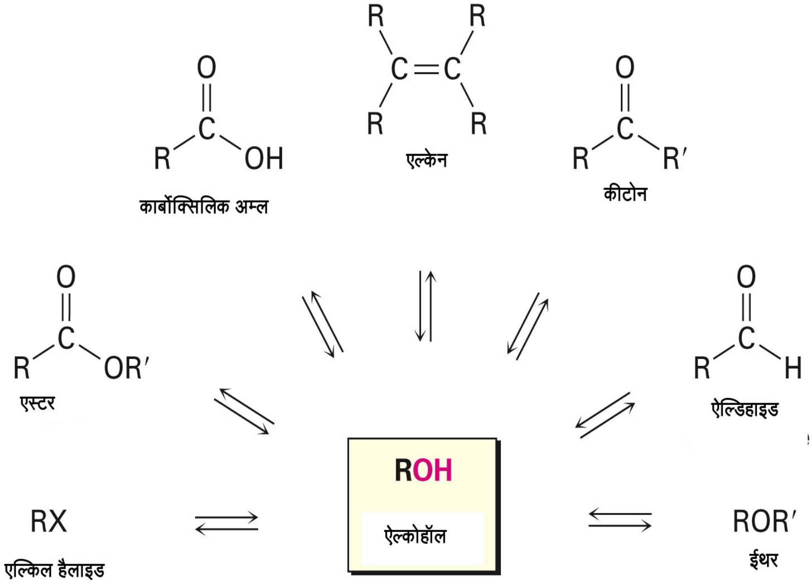

दैनिक जीवन में ऐल्कोहॉल का महत्व

दैनिक जीवन में अनेक ऐल्कोहॉलिक हाइड्रॉक्सी यौगिकों का अनुप्रयोग हम करते हैं। ऐल्कोहॉल का सबसे प्रचलित उदाहरण स्प्रिट (एथेनॉल, C_2H_5OH) है जिसका उपयोग चिकित्सा में, जीवाणुनाशक एवं विलायक के रूप में एवं फर्नीचर पॉलिश के थिनर के रूप में होता है। हमारा भोजन मुख्यतः कार्बोहाइड्रेट है जैसे– ग्लूकोस, फ्रक्टोज, स्टार्च (आलू, चावल), सुक्रोस (गन्ने की शर्करा), लेक्टोस (दुग्ध शर्करा) आदि। इन सभी में ऐल्कोहॉलिक –OH समूह विद्यमान होता है। पादपों की कोशिका भित्ति सेल्यूलोस की बनी होती है, यह भी ऐल्कोहॉलिक –OH समूह युक्त कार्बोहाइड्रेट है। हम सभी जानते हैं कि लकड़ी से ही कागज बनता है। साथ ही सूती कपड़ों को निर्मित करने वाली रुई लगभग शुद्ध सेल्यूलोस है अर्थात् सूती वस्त्र एवं कागज सेल्यूलोस यानी –OH समूह युक्त यौगिकों से निर्मित होते हैं।

दैनिक जीवन में फीनॉलों का महत्व

फीनॉलिक समूह का भी हमारे जीवन में अत्यंत महत्व है। फलों, सब्जियों, एवं अनाजों में पाए जाने वाले ऐसे हजारों कार्बनिक यौगिक हैं जिनमें फीनॉलिक –OH समूह उपस्थित होता है, ये पॉलीफीनॉल कहलाते हैं। पॉलीफीनॉल को मुख्यतः चार समूहों में विभाजित किया गया है– फीनॉलिक एसिड, फ्लैवोनॉयड. लिग्नेन एवं स्टिलबीन। पॉलीफीनॉल में प्रतिऑक्सीकारक गुण (antioxidant properties) पाए जाते हैं यह एंजाइम कार्यप्रणाली का नियमन करते हैं एवं अभिग्राही कोशिका उद्दीपक होते हैं। ऐसे पेड़–पोधे जिनमें पॉलीफीनॉल यौगिक पाए जाते हैं वे आयुर्वेदिक एवं चीनी चिकित्सा पद्धति में प्राचीनकाल से ही उपयोग में लाए जा रहे हैं।

➢ एसोसिएट प्रोफेसर
रसायन विभाग
सी.एम.पी. कालेज
इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश

एकीकृत परिपथ – इलेक्ट्रॉनिकी की रीढ़

■ डॉ. ओउम् प्रकाश शर्मा

सारांश

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बढ़ते कदमों के साथ हमें नित नए इलेक्ट्रॉनिक उपकरण मिलते जा रहे हैं। इन उपकरणों के आकार एवं भार में कम होने के साथ साथ, इनकी कार्य कुशलता में अत्यधिक सुधार हो रहा है। उदाहरण के लिए जिस कम्प्यूटर को आज हम कहीं भी कैसे भी इस्तेमाल कर सकते हैं, एक समय वही कम्प्यूटर एक बड़े कमरे के आकार तथा बहुत भारी होता था और इसकी प्रोसेसिंग स्पीड भी बहुत कम होती थी। लेकिन आज कम्प्यूटर न केवल छोटे और हल्के हो गए हैं, बल्कि इनकी कार्य क्षमता भी हजारों गुना बढ़ गई है। इसका श्रेय जाता है, एकीकृत परिपथों यानि इंटीग्रेटेड सर्किट्स को। दरअसल, एकीकृत परिपथ, जिसे आमतौर पर हम चिप या माइक्रोचिप के नाम से भी जानते हैं, हजारों–लाखों प्रतिरोधों, संधारित्रों, ट्रांजिस्टरों तथा डायोड आदि से बने अनेक इलेक्ट्रॉनिक परिपथों का एकीकृत एवं अति सूक्ष्म परिपथ होता है। जब 1958 में टैक्सास इन्स्ट्रूमेंट्स में कार्य करने वाले जैक किल्बी ने पहली बार एकीकृत परिपथ की खोज की तो शायद ही किसी ने यह सोचा होगा कि आने वाले समय में एकीकृत परिपथ इलेक्ट्रॉनिकी जगत की रीढ़ बन जाएगा। उसके बाद से तो इस क्षेत्र में हो रही खोजों के फलस्वरूप सूक्ष्म से सूक्ष्मतम एकीकृत परिपथ बनाए जा रहे हैं, जिसके फलस्वरूप इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का न केवल आकार एवं वजन कम हुआ है, बल्कि ये सस्ते, अधिक दक्ष और अधिक व्यावहारिक भी हो गए हैं। सिलिकॉन जैसे अर्द्धचालक पदार्थों से बनी हमारे अंगूठे के नाखून के आकार से भी छोटी चिप्स पर फोटोलिथोग्राफी प्रक्रिया द्वारा हजारों–लाखों इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों वाले परिपथ बनाए जाते हैं, जिन्हें एकीकृत परिपथ कहते हैं। सूचना प्रौद्योगिकी से लेकर इलेक्ट्रॉनिकी के हर क्षेत्र में चिप्स के रूप में एकीकृत परिपथों का उपयोग किया जाता है। । चाहे कम्प्यूटर हो या लैपटॉप, मोबाइल हो या टैबलेट, सीसीटीवी कैमरा हो या इलेक्ट्रॉनिक पेन या फिर रिमोट कंट्रोल हो या मेमोरी चिप, ऐसे सभी इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों में तरह–तरह के एकीकृत परिपथ इस्तेमाल होते हैं।

परिचय

एकीकृत परिपथ यानि इंटीग्रेटेड सर्किट (IC) को यदि आधुनिक इलेक्ट्रॉनिकी की रीढ़ कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। आपने अपने मोबाइल फोन की सिम तो देखी ही होगी। यह एक IC ही है। यदि कभी अपने कम्प्यूटर या लैपटॉप को खोलकर देखा हो तो उसमें बहुत सी पतली–पतली रेखाओं वाली आकृतियों का जाल सा बना होता है। यह भी एकीकृत परिपथ ही होता है। सूचना प्रौद्योगिकी से लेकर इलेक्ट्रॉनिकी के हर क्षेत्र में चिप्स के रूप में एकीकृत परिपथों का उपयोग किया जाता है। । चाहे कम्प्यूटर हो या लैपटॉप, मोबाइल हो या टैबलेट, सीसीटीवी कैमरा हो या इलेक्ट्रॉनिक पेन या फिर रिमोट कंट्रोल हो या मेमोरी चिप, ऐसे सभी इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों में तरह–तरह के एकीकृत परिपथ इस्तेमाल होते हैं।

दरअसल, एकीकृत परिपथ सिलिकॉन जैसे किसी अर्द्धचालक पदार्थ के अन्दर बना हुआ एक इलेक्ट्रॉनिकी परिपथ होता है, जिसमें प्रतिरोध, संधारित्र आदि जैसे पैसिव कम्पोनेन्ट यानि निष्क्रिय अवयवों के अलावा डायोड, ट्रान्जिस्टर जैसे अर्द्धचालक अवयव परिपथ के रूप में लगे होते हैं। **एकीकृत परिपथ** को माइक्रोसर्किट यानि सूक्ष्मपरिपथ, सूक्ष्मचिप, सिलिकॉन चिप, या केवल चिप के नाम से भी जाना जाता है।

इलैक्ट्रिक एवं इलेक्ट्रोनिक परिपथ

विभिन्न विद्युत अवयवों जैसे कि वोल्टेज स्रोत, प्रतिरोध, प्रेरकत्व, संधारित्र एवं कुंजियों आदि को चालक तारों के साथ जोड़कर जो संयोजन बनता है उसे इलैक्ट्रिक सर्किट यानि **विद्युत परिपथ** कहते हैं। इसमें स्विच, मोटर, बल्ब, पंखा, स्पीकर जैसे विद्युतयांत्रिक अवयव भी लगे होते हैं।

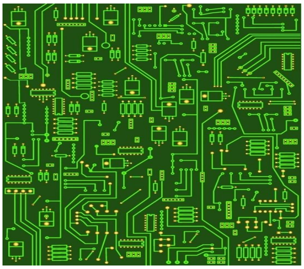

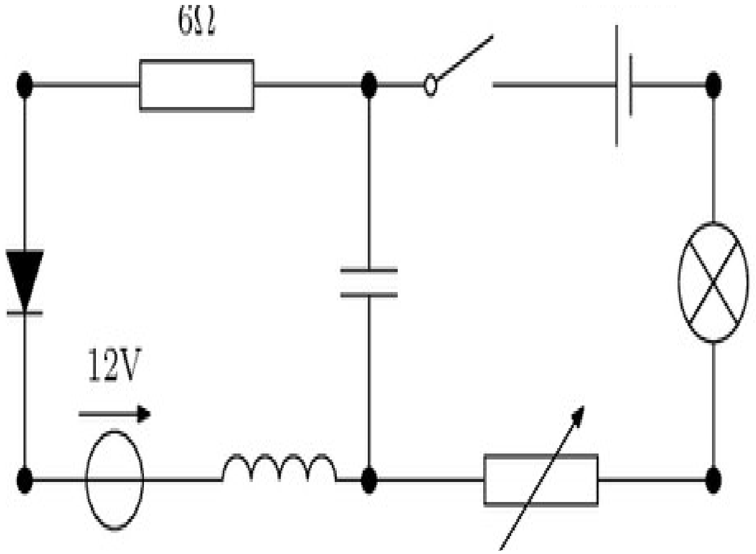

लेकिन जब किसी परिपथ में प्रतिरोधक, संधारित्र, तथा प्रेरकत्व के अलावा डायोड, ट्रान्जिस्टर आदि लगे होते हैं तो उसे **इलेक्ट्रॉनिक परिपथ** कहा जाता है। इलेक्ट्रोनिक परिपथ मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं – एनालॉग परिपथ और डिजिटल परिपथ। जिस परिपथ में एनालॉग और डिजिटल दोनों का मिश्रण होता है उसे मिक्स्ड सर्किट या हाइब्रिड सर्किट यानि संकर परिपथ कहते हैं।

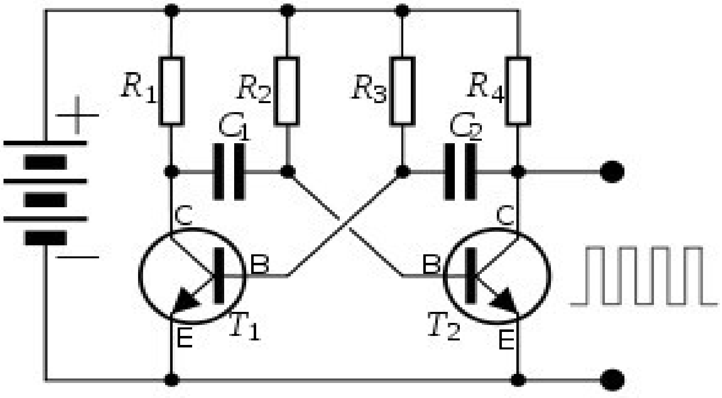

यदि हम इलैक्ट्रिकल एवं इलेक्ट्रोनिक परिपथों के अंतर को समझने की कोशिश करें तो पाते हैं कि :

- इलैक्ट्रिकल परिपथ बहुत विशाल क्षेत्र में फैले हो सकते हैं; जैसे कि विद्युत–शक्ति के उत्पादन, ट्रान्समिसन, वितरण एवं उपभोग का नेटवर्क। जबकि अधिकतर इलेक्ट्रोनिक परिपथ अत्यन्त लघु आकार के होते हैं।
- प्रायः इलैक्ट्रिकल परिपथ उच्च वोल्टेज पर कार्य करते हैं, जैसे कि कुछ वोल्ट से हजारों वोल्ट तक। जबकि इलेक्ट्रोनिक परिपथ बहुत कम वोल्टेज पर कार्य करते हैं (0.5 वोल्ट से 15 वोल्ट) ।
- इलैक्ट्रिकल परिपथ में लगे अवयवों जैसे कि प्रतिरोध, संधारित्र आदि के मान का काफी महत्व होता है, जबकि इलेक्ट्रोनिक परिपथों में लगे अवयवों के स्पेसिफिकेशन का ज्यादा महत्व नहीं होता है।
- इलैक्ट्रिकल परिपथों में आमतौर से ऊर्जा का आदान–प्रदान होता है, जबकि इलेक्ट्रोनिक परिपथों में सूचना या संकेतों का आदान–प्रदान होता है।

क्या होते हैं एकीकृत परिपथ ?

सामान्यतः हम जानते हैं कि डायोड तथा ट्रांजिस्टर जैसे अर्द्धचालकों से बने सक्रिय अवयवों को विभिन्न इलेक्ट्रोनिक परिपथों में इस्तेमाल किया जाता है। जब इन्हें प्रतिरोध तथा संधारित्र जैसे निष्क्रिय अवयवों के साथ जोड़कर इलेक्ट्रोनिक परिपथ बनाया जाता है तो उस परिपथ को डिसक्रीट परिपथ कहते हैं। आवश्यकता पड़ने पर इन परिपथों में लगे अवयवों को अलग–अलग भी किया जा सकता है। यहाँ एक ऑपरेशनल एम्प्लीफायर का डिसक्रीट परिपथ दिया है। लेकिन विज्ञान और प्रोद्योगिकी के बढ़ते कदमों के साथ अब ऐसी तकनीक का विकास कर लिया गया है जिसमें इलेक्ट्रॉनिक परिपथों का निर्माण सामान्य परिपथ की तरह न करके एक अर्द्धचालक के एक पतले वेफर पर सभी आवश्यक अवयवों जैसे कि डायोड, ट्रान्जिस्टर, प्रतिरोध तथा संधारित्र आदि को एक साथ ही एक विशिष्ट प्रक्रिया का पालन करते हुए निर्मित किया जाता है।

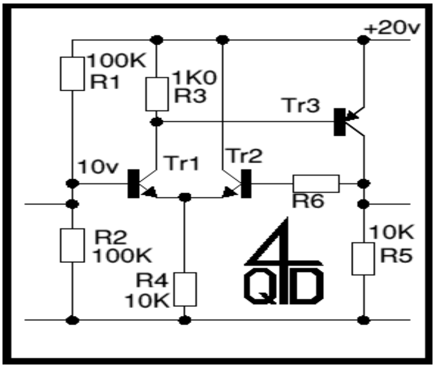

विशेष युक्तियों द्वारा इन अवयवों को आवश्यक परिपथ के हिसाब से जोड़ा जाता है। इस तरह, अर्द्धचालक पदार्थ के छोटे से टुकड़े पर अनेक इलेक्ट्रोनिक परिपथों को इंटीग्रेट यानि एकीकृत किया जा सकता है और इस तरह बने परिपथों को एकीकृत परिपथ कहते हैं। यहाँ एक ऑपरेशनल एम्प्लिफायर का एकीकृत परिपथ दिया है।

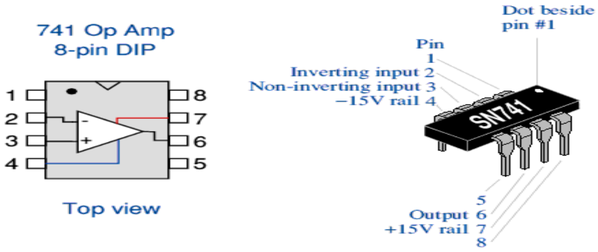

The most usual 741 package

इंटीग्रेटेड सर्किट की विकास यात्रा

वैसे तो सन् 1947 में ट्रांजिस्टर के आविष्कार के साथ ही एकीकृत परिपथ के विकास का रास्ता साफ हो गया था। परंतु वास्तव में इंटीग्रेटेड सर्किट बनाने की टेक्नालजी की खोज टेक्सास इंस्ट्रूमेन्ट्स में काम करने वाले जैक किल्बी (Jack Kilby) और फेयरचाइल्ड सेमीकंडक्टर कारपोरेशन के सह–संस्थापक रॉबर्ट नॉयस (Robert Noyce) ने सन् 1950 में की। दोनों ने अलग–अलग कार्य करते हुये लगभग एक ही समय में लगभग एक ही तरह की आईसी विकसित की। वे अलग–अलग काम कर रहे थें और एक–दूसरे के काम से अनभिज्ञ थें। दोनों का एक ही उद्देश्य था कि बहुत सारे परिपथों को एकीकृत परिपथ के रूप में छोटे से छोटे आकार में बनाया जाए। सही मायनों में आईसी की खोज इलेक्ट्रॉनिकी

के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी खोज रही है। इसके विकास के साथ ही न केवल इलेक्ट्रॉनिकी उपकरणों की कीमत में बहुत कमी आई है, बल्कि इन्होने इलेक्ट्रॉनिकी डिवाइस की डिजाइन आदि को भी बदल दिया है।

जैक किल्बी

रॉबर्ट नॉयस

एकीकृत परिपथों के लाभ

एकीकृत परिपथों के अनेक लाभ होते हैं, जैसे कि–

- बड़े–बड़े परिपथों की अपेक्षा इनमें अत्यंत कम ऊर्जा की खपत होती हैं।
- इनका आकार इतना छोटा होता है, कि एक इंच के वर्गाकार चिप पर लगभग 20 हजार इलेक्ट्रोनिक परिपथ आ जाते हैं।
- कम आकार का होने के कारण इनका वजन भी बहुत कम होता है और इनकी कीमत भी बहुत ही कम होती है।
- चूंकि इनको बनाने के लिए बड़े बड़े परिपथों की तरह कनेक्शन जोड़ने के लिए किसी भी प्रकार की सोल्जरिंग की आवश्यकता नहीं होती है, इसलिए अत्यंत भरोसेमंद एवं टिकाऊ होते हैं।
- आजकल आईसी इतने छोटे बनाए जा रहे हैं कि बिना सूक्ष्म दर्शी के इनके अवयवों को देख ही नहीं सकते हैं।
- इतने सारे अवयवों को आपस में जोड़ने में बहुत ही कम समय लगता है ।
- परिपथ का आकार बहुत छोटा हो जाता है जिससे छोटे आकार के इलेक्ट्रॉनिक चीजें बनायी जा सकती हैं।
- बड़े परिपथ इस प्रकार योजना किए जा सकते हैं कि वे कम से कम शक्ति (पॉवर) से

काम कर सकें।

- यदि कोई आईसी खराब हो जाता है तो इसे आसानी से बदलकर दूसरा आईसी लगाया जा सकता है।

एकीकृत परिपथों का वर्गीकरण

अन्य इलेक्ट्रॉनिक परिपथों की तरह, एकीकृत परिपथों को भी उनके अनुप्रयोगों तथा उनके अन्दर के परिपथ की प्रकृति के आधार पर मुख्यतः तीन वर्गों में रखा जा सकता हैं–

1. **एनालॉग आईसी** (Analog IC) – इनमें इनपुट तथा आउटपुट दोनों ही सिग्नल कंटिन्युअस होते हैं, इन्हें लिनियर आईसी यानि रैखिक एकीकृत परिपथ भी कहते हैं। इनका उपयोग मुख्यतः ऑडियो फ्रिक्वेन्सी एम्प्लीफायर तथा रेडियो फ्रिक्वेन्सी एम्प्लीफायर में किया जाता है। इसके अलावा, ऑपरेशनल एम्प्लिफायर, वोल्टेज रेग्युलेटर तथा तिमर आदि में एनालॉग आईसी का उपयोग किया जाता है। uA741 आईसी एक आपरेशनल एम्प्लिफायर है जोकि एक एनालॉग आईसी है।
2. **डिजिटल आईसी** (Digital IC) – डिजिटल आईसी शून्य (0) तथा एक (1) बाइनरी डाटा के आधार पर कार्य करते हैं। सामान्यतः डिजिटल सर्किट में 0 का मतलब 0V होता है, तथा 1 का मतलब +5V होता है। विभिन्न लॉजिक गेट्स (जैसे– एंड गेट, ऑर गेट, नॉट गेट, नैण्ड गेट, नॉर गेट आदि) तथा माइक्रोप्रोसेसर आदि डिजिटल आईसी के उदाहरण हैं।
3. **मिश्रित संकेत आईसी** (Mixed signal IC) – कोई ऐसा एकीकृत परिपथ जिसमें एनालॉग और डिजिटल दोनों ही परिपथ मौजूद हों तो वह मिश्रित संकेत आईसी कहलाता है। उदाहरण के लिये कुछ माइक्रोकन्ट्रोलरों पर दोनों तरह के परिपथ होते हैं। एनालॉग टू डिजिटल कन्वर्टर (ADC) तथा डिजिटल टू एनालॉग कन्वर्टर (DAC) के एकीकृत परिपथ इस श्रेणी में आते हैं।

ट्रांजिस्टरों की संख्या के आधार पर वर्गीकरण

डिजिटल एकीकृत परिपथों को उनमें इस्तेमाल किए जाने वाले ट्रांजिस्टरों की सख्या के आधार पर मुख्यतः निम्नलिखित 5 वर्गों में बांटा जा सकता है:

1. **स्माल स्केल इंटीग्रेटेड** (SSI) : इसमें एक आईसी चिप पर लगभग 100 ट्रांजिस्टर तक लगाए जा सकते हैं।

2. **मिडियम स्केल इंटीग्रेटेड** (MSI) : इसमें एक आईसी चिप पर 100 से 1000 तक ट्रांजिस्टर तक लगाए जा सकते हैं।
3. **लार्ज स्केल इंटीग्रेटेड** (LSI) : इसमें एक आईसी चिप पर 1000 से 20000 ट्रांजिस्टर तक लगाए जा सकते हैं।
4. **वेरी लार्ज स्केल इंटीग्रेटेड** (VLSI) : इसमें एक आईसी चिप पर 20000 से दस लाख ट्रांजिस्टर लगाए जा सकते हैं।
5. **अल्ट्रा लार्ज स्केल इंटीग्रेटेड** (ULSI) : इसमें एक आईसी चिप पर दस लाख से एक करोड़ ट्रांजिस्टर लगाए जा सकते हैं।

आईसी में लगे एक्टिव डिवाइस के आधार पर इन्हें पुनः बाइपोलर आईसी तथा यूनिपोलर आईसी में वर्गीकृत किया जा सकता है। बाइपोलर आईसी में मुख्यतः बाइपोलर जंक्शन ट्रान्जिस्टर लगाए जाते हैं, जबकि यूनिपोलर आईसी में मुख्यतः फील्ड इफैक्ट ट्रान्जिस्टर (MOSFET) लगाए जाते हैं।

निर्माण प्रौद्योगिकी के आधार पर–

आईसी बनाने की तकनीक के आधार पर इन्हें तीन वर्गों में बांटा जा सकता है:

- **मोनोलिथिक आईसी** (Monolithic Ics) – इन्हें एक अकेले सिलिकॉन के क्रिस्टल पर बनाया जाता है। अधिकांशतः मोनोलिथिक आईसी का उपयोग किया जाता है।

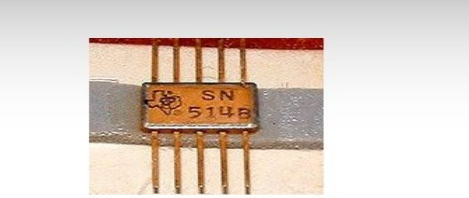

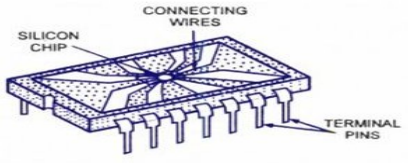

Monolithic IC in Plastic Package

- **थिक फिल्म आईसी** (Thick film Ics) : ये मोनोलिथिक आईसी से बड़े परंतु

डिसक्रीट परिपथों से छोटे होते है। जब ज्यादा पावर की आवश्यकता होती है, तो इनका उपयोग किया जाता है।

- **थिन फिल्म आईसी** (Thin film ICs)

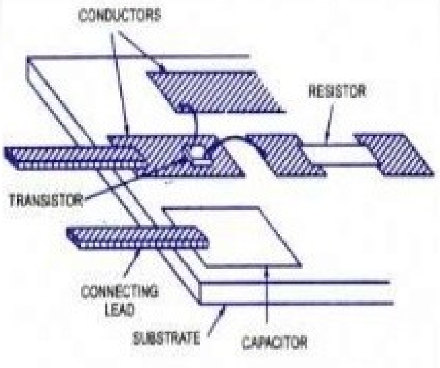

Enlarged Portion of Thick-Film IC

- इनके अलावा हाइब्रिड या मल्टीचिप आईसी (Hybrid or multi–chip ICs) भी हो सकती हैं। ये भी लघु आकार के एकीकृत परिपथ होते हैं किन्तु वे अलग–अलग अवयवों को एक छोटे बोर्ड पर जोड़कर बनाये जाते हैं। अतः ये *मोनोलिथिक आईसी* से भिन्न होते हैं।

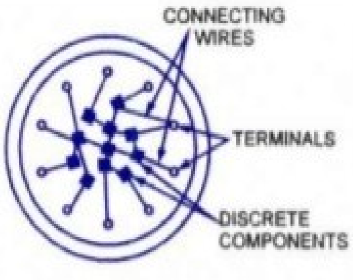

Hybird or Multichip IC

कुछ प्रसिद्ध एकीकृत परिपथ

वैसे तो लगभग प्रत्येक इलेक्ट्रॉनिक उपकरण में आईसी का इस्तेमाल किया जाता है, परंतु,

उनमें से कुछ ऐसे आईसी हैं जिनका काफी उपयोग किया जाता है। कुछ प्रसिद्ध आईसी के उदाहरण नीचे दिये गए हैं:

- **555 टाइमर आईसी** – यह एक लोकप्रिय टाइमर आईसी है। इसका आविष्कार सन् 1971 में किया गया। इसमें एक बाह्य प्रतिरोध–संधारित्र नेटवर्क की सहायता से समय अंतराल को नियंत्रित किया जाता है। यह अन्य कामों के अलावा मुख्यतः ए–स्टेबल मल्टीवाइब्रेटर एवं मोनो–स्टेबल मल्टीवाइब्रेटर बनाने के लिये काम आता है। 8 पिन वाले 555 चिप के अलावा 556 डुयल टाइमर आईसी भी मिलता है जिसमें दो 555 टाइमर आईसी को 14 पिन वाले एक आईसी में प्रस्तुत किया जाता है।
- 741 **ऑपरेशनल प्रवर्धक**– यह एक 8 पिन वाला ऑपरेशनल एम्प्लिफायर है, इसको सबसे पहले सन् 1968 में तैयार किया गया था।
- LM324 : यह भी एक ऑपरेशनल एम्प्लिफायर है।
- 78xx **वोल्टेज रेग्युलेटर** : यह घटती बढ़ती वोल्टेज को एक निश्चित मान की वोल्टेज में बदलने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।
- 74xx **श्रृंखला के आईसी** – ये लॉजिक यानि तार्किक फेमिली के आईसी है।
- Intel 4004– यह विश्व का पहला माइक्रोप्रोसेसर है।
- MOS Technology **6502** और Zilog **Z80** माइक्रोप्रोसेसर जो सन् 1980 के दशक में अनेकों घरेलू कम्प्यूटरों में प्रयुक्त हुए।

एकीकृत परिपथों के उपयोग

एकीकृत परिपथ आजकल जीवन के हर क्षेत्र में उपयोग में लाये जा रहे हैं। स्मार्ट फोन, लैपटाप, कम्प्यूटर आदि सभी इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों में अनेक एकीकृत परिपथों का इस्तेमाल किया जा रहा है। इनमें लगाई जाने वाली रेंडम एक्सेस मेमोरी चिप तथा माइक्रोप्रोसेसर यूनिट आदि इंटीग्रेटेड सर्किट का ही उदाहरण है। हमारे मोबाइल में इस्तेमाल किए जाने वाला सिम भी तो एक इंटीग्रेटेड सर्किट ही है। इनके कारण इलेक्ट्रानिक उपकरणों का आकार अत्यन्त छोटा हो गया है, उनकी कार्य क्षमता बहुत अधिक हो गयी है एवं उनकी शक्ति की जरूरत बहुत कम हो गयी है।

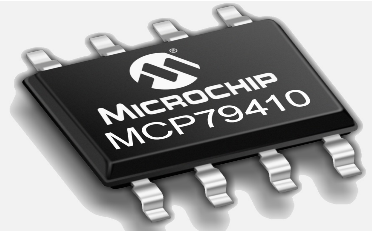

बहुत से इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों में लगने वाली सूक्ष्मचिप भी एक एकीकृत परिपथ

होती है, जो कि सिलिकॉन अर्द्धचालक से बनी होती है। आजकल कम्प्यूटर, मोबाइल, घड़ियों ऑटोमैटिक वॉशिंग मशीन पेसमेकर और माइक्रोवेव ओवन आदि अनेक इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों में सूक्ष्मचिप का इस्तेमाल किया जाता है। यही नहीं, सूक्ष्मचिप का प्रयोग विभिन्न बॉयोलॉजिकल सिस्टम से लेकर स्पेस शटल तक में हो रहा है। एक छोटी सी सूक्ष्मचिप में लाखों ट्रांजिस्टर समाए होते हैं।

➢ उप निदेशक

नेशनल सेंटर फॉर इनोवेशन इन डिस्टेन्स एजुकेशन

इन्दिरा गांधी नेशनल ओपेन यूनिवर्सिटी

मैदान गढ़ी

नई दिल्ली – 110068

ई–मेल : oumsharma@gmail.com

बफर विलयन, उनके गुणधर्म एवं उपयोगिता

■ डॉ. संजय कुमार पाठक

प्रकृति में व्याप्त अधिकांश पदार्थ मुख्यतः हाइड्रोजन (H), कार्बन (C), नाइट्रोजन (N) एवं आक्सीजन (O) से मिलकर बने होते हैं। लगभग सभी पदार्थों के जलीय विलयन का एक निश्चित पीएच (pH) मान होता है जो उन पदार्थों के अम्लीय (Acidic), क्षारीय (Basic) या उदासीन (Neutral) होने का द्योतक होता है। किसी विलयन का पीएच मान उसमें उपस्थित हाइड्रोजन आयन (H^+) तथा हाइड्रॉक्सिल आयनों (OH^-) की सांद्रता पर निर्भर करता है। अर्थात किसी विलयन में अम्ल (Acid) या क्षार (Base) की मात्रा बढ़ा अथवा घटाकर उस विलयन के पीएच मान में परिवर्तन किया जा सकता है। इसके विपरीत कुछ ऐसे विलयन होते हैं जिनका पीएच मान स्थिर होता है तथा उनमें अम्ल या क्षार की थोड़ी मात्रा मिलाने पर उनके पीएच मान में कुछ खास परिवर्तन नहीं होता है। ऐसे विलयन बफर विलयन (Buffer solution) कहलाते हैं। उचित रसायनों का प्रयोग कर विभिन्न पीएच मान वाले बफर विलयन तैयार किए जा सकते हैं । चूंकि बफर विलयन का मुख्य गुणधर्म, तनुकरण (dilution) अथवा किसी प्रबल अम्ल या प्रबल क्षार के प्रभाव से, विलयन के पीएच मान में होने वाले परिवर्तन को रोकना है । अतः एक विशिष्ट पीएच मान पर क्रियान्वित होने वाली विभिन्न रासायनिक एवं जैविक प्रक्रियाओं में बफर विलयन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । प्रयोगशालाओं में बफर विलयनों का मुख्य उपयोग ज्ञात एवं नियत पीएच मान वाले मानक विलयनों (Standard solutions) को बनाने में किया जाता है। अनुमापनमिति (Titrimetry), अवक्षेपण (Precipitation), इलेक्ट्रोप्लेटिंग तथा संसाधित खाद्य व पेय पदार्थों के संरक्षण में बफर विलयनों का बहुतायत में उपयोग होता है। औषधि विज्ञान तथा जैवरसायन में बफर विलयन की उपयोगिता इस बात से ही सिद्ध होती है कि रक्त के पीएच मान में $\pm$ 0.5 का परिवर्तन भी जानलेवा हो सकता है। जीवित कोशिकाओं में होने वाली विभिन्न प्रकार की एंजाइम अभिक्रियाएं पीएच पर निर्भर होती हैं और बफर की अनुपस्थिति में ऐसी अभिक्रियाएं रुक जाती हैं अथवा उनकी दर कम हो जाती है। बफर विलयनों के बहुआयामी अनुप्रयोगों को ध्यान में रखते हुए इस लेख के अंतर्गत बफर विलयन की संकल्पना, विविध प्रकार, निर्माण एवं विश्लेषण की तकनीक आदि पर विस्तृत चर्चा प्रस्तुत की गई है।

बफर विलयन के बारे में जानने से पहले यह जानना जरूरी है कि अम्ल और क्षार क्या होते हैं ? तथा उनका pH से क्या सम्बन्ध है? आपने अनुभव किया होगा कि हम जिन पदार्थों का सेवन करते हैं उनमें से कुछ का स्वाद खट्टा, कुछ का कड़वा और कुछ स्वादहीन होते हैं। दरअसल अम्ल एवं क्षार की प्रारंभिक परिभाषा ही यही है कि अम्ल खट्टे होते हैं और क्षार कड़वे होते हैं। इनका यह गुणधर्म किस कारण से है यह समझने के लिए वर्तमान में तीन सिद्धांत प्रचलित हैं। पहला आरहीनियस का सिद्धांत (1884) जिसके अनुसार "अम्ल वे हैं जो जल में घुलकर हाइड्रोजन आयन (H^+) देते हैं तथा क्षार वे हैं जो जल में घुलकर हाइड्रॉक्सिल आयन (OH^-) देते हैं।" उदाहरणस्वरूप हाइड्रोजन फ्लोराइड (HF) एक अम्ल है और सोडियम हाइड्राक्साइड (NaOH) एक क्षार है।

$$HF_{(aq)} \longrightarrow H^+_{(aq)} + F^-_{(aq)}$$

$$NaOH_{(aq)} \longrightarrow Na^+_{(aq)} + OH^-_{(aq)}$$

अम्ल एवं क्षार की प्रबलता उनके वियोजन की मात्रा पर निर्भर करती है। अर्थात जो अम्ल जितना अधिक H^+ आयन मुक्त करेगा वह उतना ही प्रबल होगा। इसी प्रकार जिस क्षार से जितना अधिक OH^- आयन मुक्त होंगे वह उतना ही प्रबल होगा।

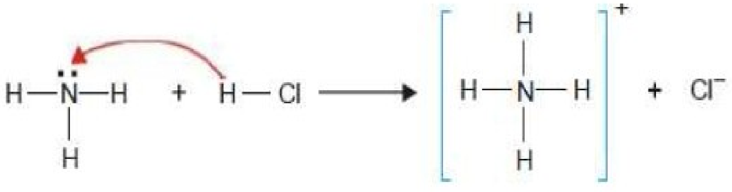

सन् 1923 में जे. एन. ब्रॉन्सटेड और जे. एम. लौरी ने अम्ल एवं क्षार की और विस्तृत व्याख्या करते हुए जिस सिद्धांत का प्रतिपादन किया उसके अनुसार अम्ल वे अणु या आयन होते हैं जो प्रोटॉन (H^+) देते है जबकि क्षार वे अणु या आयन होते हैं जो प्रोटॉन ग्रहण करते हैं। संक्षेप में हम अम्ल को प्रोटॉन दाता (proton donor) और क्षार को प्रोटॉन ग्राही (proton acceptor) कह सकते हैं। उदाहरणस्वरूप हाइड्रोजन क्लोराइड (HCl) गैस अमोनिया (NH_3) से क्रिया करके ठोस अमोनियम क्लोराइड (NH_4Cl) बनाती है । यहाँ HCl प्रोटॉन दाता है अतः अम्ल है जबकि NH_3 प्रोटॉन ग्राही है अतः क्षार है।

सन् 1930 के आरम्भ में जी. एन. लुईस ने अम्ल एवं क्षार के संबंध में एक व्यापक सिद्धांत का प्रतिपादन किया जिसके अनुसार "अम्ल इलेक्ट्रॉन युग्म ग्राही और क्षार इलेक्ट्रॉन युग्म दाता होते हैं।" चूँकि प्रोटॉन (H^+) इलेक्ट्रॉन युग्म ग्रहण कर सकता है अतः लुईस अम्ल है तथा हाइड्रॉक्सिल आयन (OH^-) अपने इलेक्ट्रॉन युग्म का दान कर सकता है अतः लुईस क्षार है।

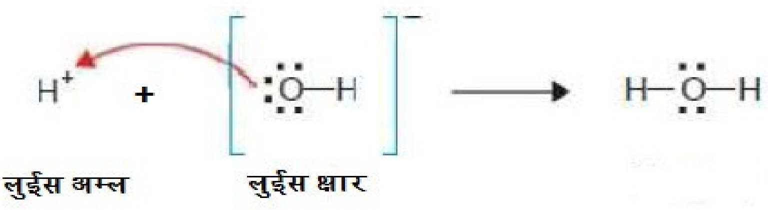

ध्यान रखने वाली बात यह है कि (1) सभी धनायनिक अणु (cations) अथवा वे अणु जिनको अष्टक पूरा करने के लिए एक इलेक्ट्रॉन युग्म की आवश्यकता होती है लुईस अम्ल हैं (2) सभी ऋणायनिक अणु (anions) अथवा वे अणु जिनके पास इलेक्ट्रॉन युग्म मौजूद होता है लुईस क्षार हैं तथा (3)अम्ल एवं क्षार आपस में क्रिया करके उदासीन अणु बनाते हैं।

जल का वियोजन स्थिरांक एवं पीएच की अवधारणा

जल (H_2O) वास्तव में उदासीन अणु हैं जिनमें आयनीकरण की सूक्ष्म प्रवृत्ति होती है। जल की इसी आयनीकरण प्रवृत्ति के फलस्वरूप जल अम्ल एवं क्षार दोनों के गुण प्रदर्शित करता है। अर्थात जल उभयधर्मी (amphoteric) है। भौतिक अथवा रासायनिक कारकों के प्रभाव से जल के एक अणु का प्रोटॉन, जल के दूसरे अणु में स्थानांतरित हो जाता है और इस प्रकार हाइड्रोनियम आयन (H_3O^+) और हाइड्रॉक्सिल आयन (OH^-) का निर्माण होता है।

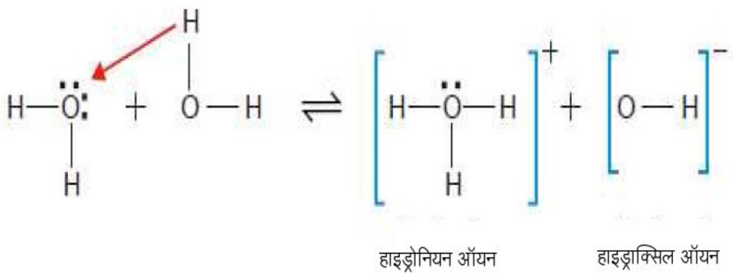

रासायनिक सूत्र के रूप में जल के आयनीकरण को चित्र–1 में दिखाया गया है।

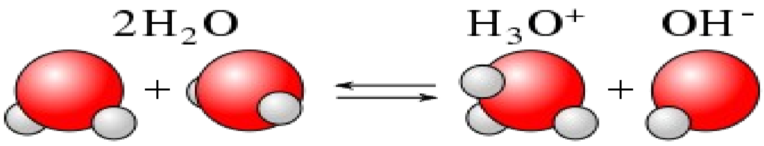

चित्र –1 जल का आयनीकरण

महत्वपूर्ण बात यह है कि साम्यावस्था में इन हाइड्रोनियम आयनों तथा हाइड्रॉक्सिल आयनों का अनुपात सुनिश्चित होता है। यही कारण है कि तापमान बढ़ाने पर जल का आयनीकरण तो बढ़ता है परंतु जल न तो अम्लीय होता है और न ही क्षारीय, बल्कि उदासीन बना रहता है। साम्यावस्था पर जल के आयनीकरण को निम्न समीकरण के रूप में लिखा जाता है जहां K_{eq} साम्यावस्था स्थिरांक (equilibrium constant) है।

$$K_{eq} = \frac{[H^+]\,[OH^-]}{[H_2O]}$$

सामान्य तापमान (25 ^{0}C) पर शुद्ध जल की मोलर सांद्रता 55.5 मोल /लीटर होती है (1000/18; जल का अणुभार = 18) । अतः उपरोक्त समीकरण को हम निम्न प्रकार से लिख सकते हैं–

$$K_{eq} = \frac{[H^+][OH^-]}{55.5\ M}$$

अथवा

$$(55.5\ M)(K_{eq}) = [H^+][OH^-]$$

विद्युत् चालकतामापी प्रयोगों द्वारा 25 ^{0}C पर शुद्ध जल के K_{eq} का मान 1.8 x 10^{-16} M ज्ञात हुआ है,अतः

$$(55.5\ M)(1.8 \times 10^{-16}\ M) = [H^+][OH^-]$$

अथवा

$$99.9 \times 10^{-16}\ M^2 = [H^+][OH^-]$$

अथवा

$K_w = [H^+][OH^-] = 1X10^{-14}\ M^2$ at 25^{0}C (K_w = जल का आयनिक गुणनफल)

सामान्य तापमान पर शुद्ध जल में $[H^+]$ और $[OH^-]$ आयनों की सांद्रता एक समान अर्थात प्रत्येक 10^{-7} मोल होती है और जल उदासीन होता है। वस्तुतः किसी भी जलीय विलयन में $[H^+]$ और $[OH^-]$ आयनों की सांद्रता ज्ञात कर यह पता लगाया जा सकता है कि वह विलयन अम्लीय है अथवा क्षारीय। इसी को आधार बनाकर सन् 1909 में डैनिश रसायनज्ञ सॉरेन पेडर लॉरिट्ज सॉरेन्सेन ने एक स्केल का निर्माण किया जिसे pH स्केल के नाम से जाना जाता है। चूंकि यह स्केल तनु विलयनों (dilute solutions) के लिए है जिनमें $[H^+]$ और $[OH^-]$ आयनों की संख्या बहुत कम होती हैं। अतः यदि इन संख्याओं का ऋणात्मक लघुगणक ले लिया जाए तो एक सीमित संख्या का धनात्मक स्केल तैयार होगा। सॉरेन्सेन ने इसे अक्षर “p” से व्यक्त किया। अतः pH को हाइड्रोजन आयन सांद्रता के ऋणात्मक लघुगणक के रूप में परिभाषित किया जाता है।

सॉरेन पेडर लॉरिट्ज सॉरेन्सेन

$$pH = -\log [H^+]$$

इसी प्रकार $$pOH = -\log [OH^-]$$

$$pH + pOH = 14$$

(क्योंकि उदासीन विलयन के लिए $[H^+] = [OH^-] = 10^{-7}$ M)

अथवा $$pH = 14 - pOH$$

इस प्रकार सैद्धांतिक रूप से यदि किसी विलयन की $[H^+]$ अथवा $[OH^-]$ आयनों की सांद्रता ज्ञात हो तो उस विलयन का pH मान निकाल सकते हैं तथा उस विलयन के अम्लीय अथवा क्षारीय प्रकृति की पहचान कर सकते हैं। इसके विपरीत यदि किसी विलयन का pH मान ज्ञात हो तो उसमें उपस्थित $[H^+]$ अथवा $[OH^-]$ आयनों की संख्या ज्ञात की जा सकती हैं। प्रायोगिक रूप से किसी विलयन का pH मान, पीएच मीटर की सहायता से ज्ञात किया जाता है। कुछ सामान्य विलयनों के pH मान को चित्र–2 में दर्शाया गया है।

$[H^+] = [OH^-] = 10^{-7}$ M	pH = 7	उदासीन
$[H^+] > [OH^-]$	pH= <7	अम्लीय
$[OH^-] > [H^+]$	pH= >7	क्षारीय

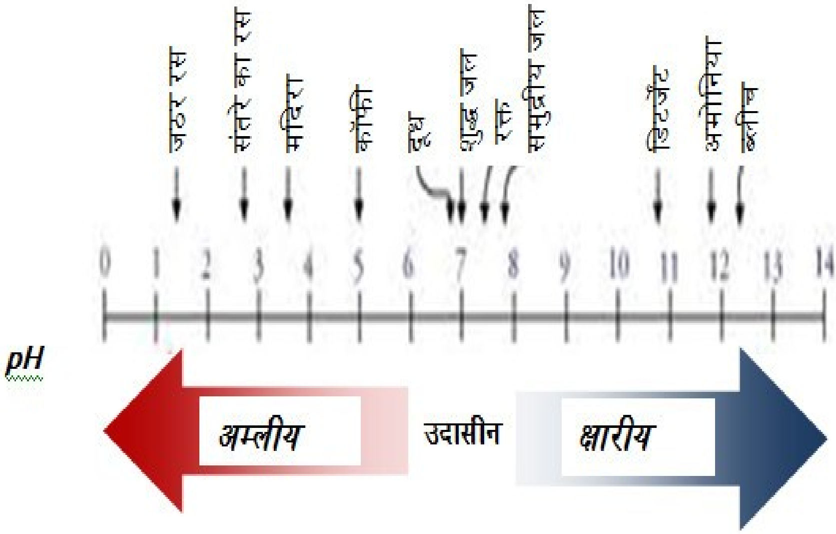

चित्र–2 विभिन्न विलयनों के पीएच मान

अम्ल एवं उसके संयुग्मित क्षार और पीएच के बीच संबंध

जब अम्ल एवं क्षार की आपस में क्रिया होती है तो अम्ल (HA) प्रोटॉन (H^+) त्यागकर नया क्षार (A^-) बनाता है। यह नया क्षार चूंकि वास्तविक अम्ल से उत्पन्न हुआ है अतः इसे संयुग्मित क्षार (conjugate base) कहते हैं । ठीक इसी प्रकार वास्तविक क्षार (B) प्रोटॉन ग्रहण करके एक नया अम्ल (BH^+) बनाता है जिसे संयुग्मित अम्ल (conjugate acid) कहते हैं। इसे नीचे दिए गए सांकेतिक समीकरण के माध्यम से अच्छी तरह समझा जा सकता है:

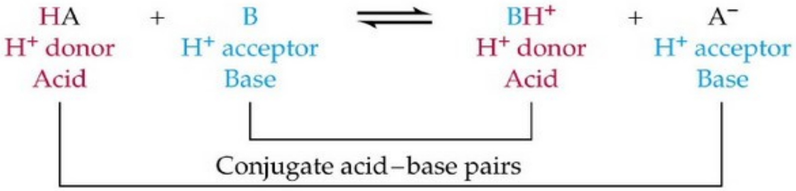

ज्ञात हो कि एक प्रबल अम्ल वियोजित होकर एक दुर्बल संयुग्मित क्षार देता है तथा एक प्रबल क्षार वियोजित होकर दुर्बल संयुग्मित अम्ल बनाता है। दुर्बल अम्ल एवं दुर्बल क्षार के वियोजन के सम्बन्ध में ठीक इसका विपरीत होता है। चूंकि प्रबल अम्ल व प्रबल क्षार द्वारा निर्मित लवणों का वियोजन पूर्णरूपेण होता है अतः उनके जलीय विलयन उदासीन होते हैं। जबकि दुर्बल अम्ल व दुर्बल क्षार द्वारा निर्मित लवणों का वियोजन आंशिक होता है और उनके जलीय विलयन का pH मान वियोजन की मात्रा पर निर्भर करता है। साथ ही इस प्रकार के विलयनों में pH प्रतिरोधक क्षमता भी होती है। साम्यावस्था पर दुर्बल अम्ल तथा उसके संयुग्मित क्षार एवं pH के बीच संबंध को निम्न समीकरण के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है जिसे प्रसिद्ध हेंडरसन –हास्सेल्बाल्च समीकरण के नाम से जाना जाता है ।

लॉरेंस जोसेफ़ हेंडरसन - कार्ल अल्बर्ट

$$HA = H^+ + A^-$$

$$K = \frac{[H^+][A^-]}{[HA]}$$

अथवा

$$[H^+] = K \frac{[HA]}{[A^-]}$$

दोनों तरफ ऋणात्मक लघुगणक लेने पर

$$-\log [H^+] = -\log K + \log \frac{[A^-]}{[HA]}$$

$$pH = pK + \log\frac{[A^-]}{[HA]} = pK + \log\frac{[\text{conjugate base}]}{[\text{conjugate acid}]}$$

हेंडरसन –हास्सेल्बाल्च समीकरण

बफर विलयन की संकल्पना

जैसा कि उपरोक्त विवरणों से स्पष्ट हुआ है कि $[H^+]$ अथवा $[OH^-]$ आयनों की सांद्रता को घटाकर अथवा बढाकर किसी विलयन के pH मान में परिवर्तन किया जा सकता है। परंतु कुछ विलयन या विलयनों के मिश्रण एक नियत pH मान वाले होते हैं तथा अम्ल एवं क्षार की अल्प मात्रा उनके pH मान को प्रभावित नहीं करती है। इन विलयनों के इस गुणधर्म का कारण है, इनमें मौजूद दुर्बल अम्ल तथा उसके संयुग्मित क्षार की एक समान सांद्रता।

ऐसे विलयन जिनका पीएच (pH) मान स्थिर होता है तथा उनमें अम्ल या क्षार की थोड़ी मात्रा मिलाने पर उनके पीएच में कुछ खास परिवर्तन नहीं होता है, बफर विलयन (Buffer solution) कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में बफर विलयन अम्ल या क्षार के प्रभाव से pH मान में होने वाले परिवर्तन को क्षीण करते हैं। बफर विलयन प्रायः किसी दुर्बल अम्ल व उसके लवण अथवा दुर्बल क्षार व उसके लवण के समिश्रण से बनते हैं। जैसे कि – एसिटिक अम्ल (CH_3COOH) व सोडियम ऐसीटेट (CH_3COONa) या अमोनियम हाइड्राक्साइड (NH_4OH) व अमोनियम ऐसीटेट (CH_3COONH_4) का विलयन। बफर विलयन की क्षमता उपयोग किए गए दुर्बल अम्ल या क्षार के वियोजन स्थिरांक (pK_a or pK_b) तथा लवण एवं अम्ल या क्षार के अनुपात पर निर्भर करती है। अर्थात अनुकूल वियोजन स्थिरांक वाले दुर्बल अम्ल या क्षार का चयन कर तथा उनके संगत लवण के साथ उचित अनुपात का विलयन तैयार कर वांछित pH मान का बफर विलयन प्राप्त किया जा सकता है।

बफर विलयन मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं:

अम्लीय बफर ($pH < 7$) : इस प्रकार के बफर विलयन दुर्बल अम्ल और उनके सोडियम या पोटैशियम लवण द्वारा बनाए जाते हैं। जैसे कि एसिटिक अम्ल (CH_3COOH) और सोडियम ऐसीटेट (CH_3COONa) का विलयन । इनका pH मान अम्लीय अर्थात 7 से कम होता है ।

क्षारीय बफर ($pH > 7$) : इस प्रकार के बफर विलयन दुर्बल क्षार और उनके क्लोराइड लवण द्वारा बनाए जाते हैं । जैसे कि अमोनिया (NH_3) और अमोनियम क्लोराइड (NH_4Cl)

का विलयन । इनका pH मान क्षारीय अर्थात 7 से अधिक होता है ।

बफर विलयन का निर्माण

बफर विलयन तैयार करने के लिए जिस समीकरण का उपयोग किया जाता है, वह है– हेंडरसन–हास्सेल्बाल्च समीकरण :

अम्लीय बफर के लिए,

$$pH = pK_a + \log \frac{[salt]}{[acid]}$$

और क्षारीय बफर के लिए,

$$pOH = pK_b + \log \frac{[salt]}{[base]}$$

अम्लीय बफर बनाने के लिए ऐसे अम्ल का चयन करें जिसका pK_a मान वांछित बफर के pH से ± 1 इकाई के भीतर हो। फिर अम्ल और लवण के अनुपात में आवश्यक बदलाव कर वांछित pH का बफर प्राप्त कर सकते हैं ।

उदाहरण : pH 5.0 का बफर विलयन एसिटिक अम्ल और सोडियम ऐसीटेट का उपयोग कर बना सकते हैं ।

(एसिटिक अम्ल $K_a = 1.8 \times 10^{-5}$; $pK_a = 4.74$) अतः हेंडरसन –हास्सेल्बाल्च समीकरण के अनुसार

$$5.0 = 4.74 + \log \frac{[\text{सोडियम ऐसीटेट}]}{[\text{एसिटिक अम्ल}]}$$

$$10^{0.26} = \frac{[salt]}{[acid]} = 1.81$$

इसलिए 1.81 M सोडियम ऐसीटेट और 1.0 M एसिटिक अम्ल का उपयोग कर pH 5.0 का बफर विलयन तैयार हो जाता है ।

इसी प्रकार क्षारीय बफर बनाने के लिए ऐसे क्षार का चयन करें जिसका pK_b मान वांछित बफर के pOH से ± 1 इकाई के भीतर हो । फिर क्षार और लवण के अनुपात में आवश्यक बदलाव कर वांछित pH का बफर प्राप्त कर सकते हैं ।

उदाहरण: pH 9.0 का बफर विलयन अमोनियम हाइड्रॉक्साइड (NH_4OH) और अमोनियम क्लोराइड (NH_4Cl) का उपयोग कर बना सकते हैं ।

pH + pOH = 14;

इसलिए pOH = 5.0 (अमोनियम हाइड्रॉक्साइड का pK_b = 4.74)

$$5.0 = 4.74 + \log \frac{[NH_4Cl]}{[NH_4OH]}$$

$$10^{0.26} = \frac{[salt]}{[base]} = 1.81$$

इस तरह 1.81 M अमोनियम क्लोराइड और 1.0 M अमोनियम हाइड्रॉक्साइड का उपयोग कर 9.0 pH का बफर विलयन तैयार हो जाता है। 0.2 M NH_4OH का उपयोग कर 250 mL क्षारीय बफर विलयन बनाने के लिए कितने ग्राम NH_4Cl की जरूरत होगी ?

(1.81 * 0.2 = 0.362 M ; ¼ litre में 0.362/4 = 0.09 moles; 0.09 X 53.5 ग्राम / मोल = 4.8 ग्राम NH_4Cl)

यूनिवर्सल बफर (pH 2–12) : बढ़ते क्रम के pK_a मान वाले दुर्बल अम्लों जैसे कि 0.04 M CH_3COOH (pK_a = 4.74) + 0.04 M H_3PO_4 (pK_a = 2.16, 7.21, 12.32) + 0.04 M H_3BO_3 (pK_a =9.27, 12.7, 13.8) का विलयन तैयार कर उसे 0.2 M NaOH या 0.2 M HCl द्वारा अनुमापित कर विभिन्न pH रेंज के बफर विलयन बनाये जा सकते हैं । यहाँ एक ऐसी सरल विधि का वर्णन किया जा रहा है जिसमें मात्र दो विलयनों का उपयोग कर तथा सारणी–1 में बताये गए उनके आयतनों को आपस में मिलाकर pH 2 से pH 12 तक के बफर विलयन आसानी से बनाये जा सकते हैं ।

विलयन–1: 12.37 ग्राम निर्जल बोरिक अम्ल (H_3BO_3) और 10.51 ग्राम सिट्रिक अम्ल ($H_3C_6H_5O_7.H_2O$) को आसुत जल (distilled water) में घोलकर एक लीटर विलयन तैयार करें । इस विलयन में बोरिक अम्ल की सांद्रता 0.2 M और सिट्रिक अम्ल की सांद्रता 0.05 M होगी ।

विलयन–2: 38.01 ग्राम ट्राई सोडियम फॉस्फेट ($Na_3PO_4.12H_2O$) को आसुत जल में घोलकर एक लीटर विलयन तैयार करें। इस विलयन की सांद्रता 0.10 M होगी।

भिन्न-भिन्न pH मान वाले प्रत्येक 200 mL बफ़र विलयन प्राप्त करने के लिए इन दोनों विलयनों की आवश्यक मात्रा को सारणी–1 में दर्शाया गया है।

सारणी–1 विभिन्न pH मान वाले बफर विलयन का निर्माण

बफर pH	विलयन–1 (mL)	विलयन–2 (mL)
2.0	195	5
2.5	184	16
3.0	176	24
3.5	166	34
4.0	155	45
4.5	144	56
5.0	134	66
5.5	126	74
6.0	118	82
6.5	109	91
7.0	99	101
7.5	92	108
8.0	85	115
8.5	78	122
9.0	69	131
9.5	60	140
10.0	54	146
10.5	49	151
11.0	44	156
11.5	33	167
12.0	17	183

बफर विलयन की क्रियाविधि

बफर विलयन की कार्य क्षमता को ($CH_3COOH/\ CH_3COONa$) का उदाहरण लेकर निम्न प्रकार से समझा जा सकता है :

$$CH_3COOH \rightleftarrows H^+ + CH_3COO^-$$

$$CH_3COONa \rightarrow Na^+ + CH_3COO^-$$

चूंकि सोडियम ऐसीटेट एक लवण है और इसका आयनीकरण पूर्णरूप से होता है अतः समान आयन (CH_3COO^-) की सांद्रता बढ़ जाती है। एसिटिक अम्ल एक दुर्बल अम्ल है जिसका आयनीकरण पहले से ही कम होता है और सम आयन प्रभाव (common ion effect) के कारण यह और भी कम हो जाता है। अब यदि इस विलयन में अम्ल की थोड़ी मात्रा मिलाते हैं तो बढे हुए [H^+] आयन, अधिकता में मौजूद [CH_3COO^-] आयन के साथ संयोग करके अनायनीकृत एसीटिक अम्ल बनाते हैं और बफर विलयन के pH में परिवर्तन न के बराबर होता है। ऐसे ही यदि इस विलयन में क्षार की थोड़ी मात्रा मिलाई जाए तो क्षार से उत्पन्न [OH^-] आयन बफर विलयन में मौजूद [H^+] आयन से संयोग कर जल के उदासीन अणु बनाते हैं जिसके फलस्वरूप विलयन के pH में कोई खास परिवर्तन नहीं होता है। इस प्रक्रिया को चित्र – 3 में दिखाए गए आरेख के माध्यम से समझा जा सकता है।

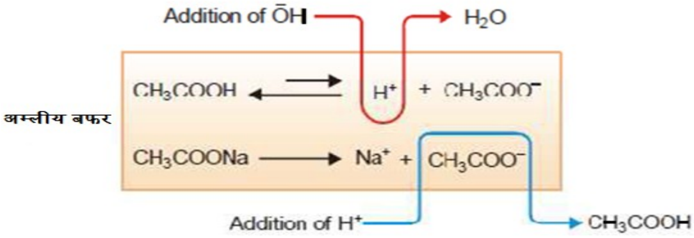

चित्र–3 अम्लीय बफर विलयन की क्रियाविधि

इसी प्रकार क्षारीय बफर विलयन (NH_4OH / NH_4Cl) की क्रियाविधि को चित्र–4 में दर्शाया गया है। यहाँ पर अम्ल के [H^+] आयन दुर्बल क्षार NH_4OH के वियोजन से उत्पन्न [OH^-] आयन के साथ संयोग कर जल के उदासीन अणु बनाते हैं तथा क्षार के [OH^-] आयन NH_4Cl लवण के वियोजन से बहुतायत में उत्पन्न [NH_4^+] से क्रिया करके NH_4OH बनाते हैं। परिणामस्वरूप बफर विलयन के pH मान में परिवर्तन नगण्य होता है।

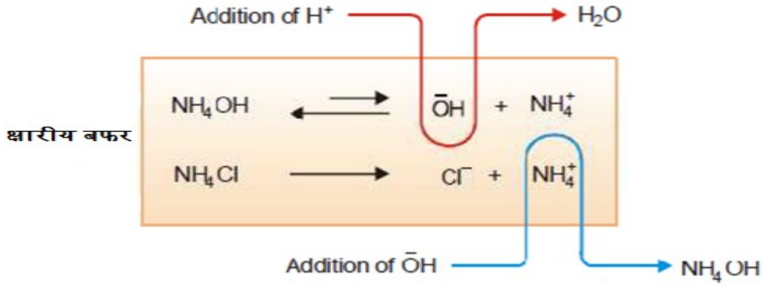

चित्र–4 क्षारीय बफर विलयन की क्रियाविधि

गणितीय रूप में इसे निम्न उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है ।

उदाहरण : pH 5.0 का बफर विलयन (एसिटिक अम्ल और सोडियम ऐसीटेट)

$$pH = pK_a + \log \frac{[Salt]}{[acid]}$$

$$5.0 = 4.74 + \log \frac{[\text{सोडियम ऐसीटेट}]}{[\text{एसिटिक अम्ल}]} \qquad \frac{[Salt]}{[acid]} = \frac{1.81}{1}$$

0.1 M HCl डालने पर pH में परिवर्तन	0.1 M NaOH डालने पर pH में परिवर्तन
$pH = 4.74 + \log \frac{1.71}{1.1}$	$pH = \mathbf{4.74} + \log \frac{1.91}{0.9}$
$= 4.74 + \log(1.55)$	$= 4.74 + \log(2.12)$
$pH = 4.93$	$pH = 5.06$
$\Delta pH = 5.0 - 4.93 = 0.06$	$\Delta pH = 5.06 - 5.0 = 0.06$

अतः बफर के pH में मात्र 0.06 का परिवर्तन नगण्य है ।

बफर क्षमता

बफर क्षमता (buffer capacity), बफर विलयन की pH प्रतिरोधक क्षमता है। कोई भी बफर विलयन असीमित क्षमता का नहीं होता है। बफर विलयन के अत्यधिक तनुकरण अथवा

प्रबल अम्ल या क्षार की अत्यधिक सांद्रता मिलाने पर बफर की कार्यक्षमता समाप्त हो जाती है। किसी भी बफर विलयन की बफर क्षमता को इस प्रकार परिभाषित करते हैं– "प्रबल अम्ल या क्षार की वह मोलर सांद्रता जो एक लीटर बफर विलयन के pH मान में 1 इकाई परिवर्तन करने में सक्षम हो, बफर क्षमता कहलाती है।" बफर क्षमता दो कारकों पर निर्भर करती है ।

(1) दुर्बल अम्ल या क्षार के pK_a या pK_b मान पर

(2) उपयोग किये गए लवण और अम्ल की मोलर सांद्रता के अनुपात पर

$$\frac{[salt]}{[acid]} = 1$$

अर्थात लवण और अम्ल की मोलर सांद्रता का अनुपात बराबर होने पर उस बफर विलयन की क्षमता सबसे अधिक होती है और बफर विलयन का pH उपयोग किये गए दुर्बल अम्ल के pK_a के बराबर होता है । अनुपात 10:1 या 1:10 हो तो बफर विलयन का pH ± 1 pKa होगा और इनकी बफर क्षमता कम होगी। बफर क्षमता का विश्लेषण अनुमापन विधि (titration method) द्वारा किया जाता है जिसमें एक निश्चित pH के बफर का ज्ञात आयतन लेकर उसे HCl या NaOH द्वारा तब तक अनुमापित किया जाता है जब तक कि बफर विलयन के pH मान में 1 इकाई का परिवर्तन न हो जाए। इस प्रक्रिया में अम्ल अथवा क्षार के खपत हुए मोलो की संख्या से बफर क्षमता की गणना की जाती है ।

बफर विलयन के उपयोग

दैनिक जीवन में बफर विलयन के अनेकों अनुप्रयोग हैं। विभिन्न क्षेत्रो में बफर विलयन के उपयोग को चित्र–5 में दर्शाया गया है। प्रयोगशाला में बफर विलयन का उपयोग रासायनिक विश्लेषण, इलेक्ट्रोप्लेटिंग तथा pH–मीटर के मानकीकरण हेतु किया जाता है। जैव रासायनिक प्रक्रियाओं तथा औषधि विज्ञान के क्षेत्र में बफर विलयन की उपयोगिता इस बात से ही सिद्ध होती है कि हमारे रक्त के pH में ± 0.5 का परिवर्तन भी जानलेवा हो सकता है। रक्त का pH 7.35 –7.45 के बीच रहता है । रक्त की बफर क्षमता प्लाज्मा में घुलित कार्बन डाइऑक्साइड के कारण होती है जो बाइकार्बोनेट बफर तंत्र का निर्माण करती है जिसमें कार्बोनिक अम्ल एक दुर्बल अम्ल होता है और बाइकार्बोनेट आयन संयुग्मित क्षार के रूप में कार्य करते हैं।

$$CO_2\,(g) + H_2O \longleftrightarrow H_2CO_3 \longleftrightarrow HCO_3^- + H_3O^+$$

क्षार कार्बोनिक अम्ल के साथ प्रतिक्रिया करते हैं–

$$OH^- + H_2CO_3 <--------> HCO_3^- + H_2O$$

अम्ल बाईकार्बोनेट आयन के साथ प्रतिक्रिया करते हैं –

$$H_3O^+ + HCO_3^- <---------> H_2CO_3 + H_2O$$

श्वसन करने वाले सभी जीवधारियों में यह बाइकार्बोनेट बफर रक्त का pH 7.4 के करीब बनाये रखते हैं।

वस्त्र उद्योग में उपयोग होने वाले रंजक (dyes) बफर विलयन में ही तैयार किए जाते हैं । डिटर्जेंट, साबुन, शैम्पू आदि को अधिक प्रभावी बनाने के लिए इन्हे एक निश्चित pH के बफर में ही तैयार किया जाता है । बच्चों के लिए इस्तेमाल होने वाले बेबी लोशन का pH 6 के करीब होता है जो कि बैक्टीरिया की वृद्धि को रोकने के साथ–साथ त्वचा को रूखी होने से बचाता है । पेय पदार्थों में किण्वन (fermentation) को रोकने के लिए बफर विलयन का इस्तेमाल किया जाता है अन्यथा वे अत्यधिक अम्लीय हो जायेंगे । इसी प्रकार कागज उद्योग में कागज की गुणवत्ता बढ़ाने और प्रिंटिंग की स्याही को अधिक स्थायी बनाने के उद्देश्य से बफर विलयन का उपयोग किया जाता है ।

चित्र–5 विभिन्न क्षेत्रो में बफर विलयन के उपयोग

उपसंहार

बफर विलयन प्रायः किसी दुर्बल अम्ल व उसके लवण अथवा दुर्बल क्षार व उसके लवण के समिश्रण से बनते हैं। बफर विलयन का मुख्य गुणधर्म, तनुकरण (dilution) अथवा किसी प्रबल अम्ल या प्रबल क्षार के प्रभाव से, विलयन के पीएच मान में होने वाले परिवर्तन को रोकना है। किसी भी बफर विलयन की एक सीमित pH प्रतिरोधक क्षमता होती है। प्रयोगशाला में उचित रसायनों का उपयोग कर वांछित pH के बफर विलयन आसानी से बनाए जा सकते हैं। दैनिक जीवन में बफर विलयन के अनेकों अनुप्रयोग हैं। अधिकांश जैविक क्रियाएँ बफर की उपस्थिति में ही संपन्न होती हैं। बफर की अनुपस्थिति में विभिन्न प्रकार की एंजाइम अभिक्रियाएं रुक जाती हैं अथवा उनकी दर कम हो जाती है। वस्तुतः एक निश्चित pH पर संपन्न होने वाली रासायनिक प्रक्रियाओं में बफर विलयन की अहम भूमिका होती है।

➢ वैज्ञानिक अधिकारी (ई)
नियंत्रण प्रयोगशाला
ईंधन पुनर्संसाधन प्रभाग
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, ट्राम्बे,
मुंबई – 400085
ई–मेल - pathaksk2004@gmail.com

संश्लेषित रेशे

■ डॉ. सुनन्दा दास

संश्लिष्ट रेशे बहुलक यानि पॉलीमर होते हैं। बहुलक शब्द दो ग्रीक शब्दों से गढ़ा है: 'पॉली' का मतलब है कई और 'मर' का मतलब इकाई या हिस्सा है। शब्द पॉलिमर या बहुलक को बहुत बड़े उच्च आणविक द्रव्यमान (10^3 – 10^7 U) के अणुओं के रूप परिभाषित किया गया है। इनको बृहदणु (मैक्रोमालक्यूल) के रूप में भी उल्लिखित किया गया है, जो कि एक बड़े पैमाने पर संरचनात्मक इकाईओं के कुछ सरल और प्रतिक्रियाशील अणुओं से प्राप्त किया जाता है, जिसे मोनोमर कहते हैं। ये मोनोमर सहसंयोजक बन्ध द्वारा एक दूसरे से जुड़े होते हैं। सम्बन्धित मोनोमर से पॉलिमर के गठन की इस प्रक्रिया को बहुलकीकरण या पॉलीमेराईजेशन कहते हैं।

बहुलकों का वर्गीकरण (Classification of Polymers)–

बहुलक साधारणत: दो मुख्य वर्गों में विभाजित किए जाते हैं।

1. प्राकृतिक बहुलक (Natural polymers)
2. संश्लेषित बहुलक (Synthetic polymers)

1. प्राकृतिक बहुलक (Natural polymers)

प्राकृतिक बहुलक प्रकृति में पाए जाते हैं, जैसे–पॉलिसैकेराइड (स्टार्च और सेलुलोस), प्रोटीन यानि पॉलिपेप्टाइड, न्यूक्लिक अम्ल (पॉलिन्यूक्लिओटाइड) और प्राकृतिक रबर आदि प्राकृतिक बहुलक हैं।

अर्द्ध–संश्लेषित बहुलक (Semi–synthetic polymer)

सेलुलोज नाइट्रेट आदि इस उप श्रेणी के सामान्य उदाहरण है। इसके अन्तर्गत सेलुलोज डेरिवेटिव आते है, जैसे-सेलुलोज ऐसीटेट (रेयॉन)।

2. संश्लेषित बहुलक (Synthetic polymers)

कृत्रिम विधियों द्वारा मानव निर्मित बहुलकों को संश्लेषित बहुलक कहते हैं, पॉलिथीन,

पॉलिएस्टर, नाइलॉन, बेकेलाइट, कृत्रिम रबर आदि संश्लेषित बहुलक हैं। विभिन्न प्रकार के प्लास्टिक, कृत्रिम रेशे (Fibre) और प्रत्यास्थ बहुलक (इलैस्टोमर) बहुत उपयोगी संश्लेषित बहुलक है, जिनका उपयोग दैनिक जीवन में उपयोगी औद्योगिक, चिकित्सीय, वैज्ञानिक एवं तकनीकी महत्व की अनेक वस्तुएँ बनाने में होता है।

1. इलैस्टोमर (Elastomer)

यह रबर जैसे ठोस और लचीले प्रकृति के होते हैं। इन लचकदार बहुलकों की श्रृंखलाएँ सबसे कमजोर प्रकार के अन्तरा-अणुक बलों द्वारा बंधी रहती हैं। इन कमजोर बलों के कारण इन बहुलकों को खींचकर लम्बा किया या ताना जा सकता है।

2. रेशे (फाइबर)

फाइबर, सूत या रेशे बनाने वाले ठोस पदार्थ होते हैं जिनकी उच्च तन्य शक्ति (Tensile Strength) और उच्च मापांक (मोड्यूल-modules) होते हैं। इन विशेषताओं के लिए, शक्तिशाली अंतरा-अणुक बलों यानि हाइड्रोजन बलों को जिम्मेदार ठहराया जा सकता हैं। इन मजबूत बलों के कारण श्रृंखलाएँ एक दूसरे से कसकर बंधी रहती हैं और इस तरह यह पदार्थ को क्रिस्टलीय प्रकृति प्रदान करता है। उदाहरण के लिए पॉलिएमाइड जैसे- नाइलॉन 6,6 , पॉलिएस्टर (टेरीलीन) आदि।

3. थर्मोप्लास्टिक बहुलक

इन रेखीय या थोड़े विभाजित (Branched) लम्बे श्रृंखला के अणुओं को गर्म करने पर मुलायम और ठंडा करने पर सख्त होने में सक्षम होते हैं। कुछ आम थर्मोप्लास्टिक पदार्थ जैसे- पॉलीथीन, पॉलीस्टाइरीन, पॉलीविनाइल आदि हैं।

संश्लेषित बहुलकों को उनके गुणों और औद्योगिक अनुप्रयोगों के अनुसार, तीन मुख्य वर्गों में विभाजित किया जाता है–

1. प्लास्टिक (Plastic)
2. कृत्रिम रेशे या संश्लेषित रेशे (Synthetic Fibres)
3. प्रत्यास्थ बहुलक (Elastomers)

संश्लिष्ट रेशों का इतिहास

वस्त्र उद्योग और प्रौद्योगिकी के हर क्षेत्र में संश्लिष्ट रेशों (सूत) का प्राकृतिक रूप से पाए गए रेशों की तुलना में अधिक इस्तेमाल किया जाता है। संश्लिष्ट रेशे विकसित करने के पहले कृत्रिम रूप से निर्मित रेशों का पेट्रोलियम आधारित रसायनों या पेट्रोकेमिकल्स से प्राप्त पॉलिमरों से बनाया गया था, अतः इन रेशों को कृत्रिम या सिंथेटिक फाइबर (रेशा) कहा जाने लगा।

कृत्रिम रेशे या सूत निर्माण करने का विचार सबसे पहले अंग्रेज वैज्ञानिक राबर्ट हुक के दिमाग में उठा था, जिसका उल्लेख सन् 1664 में प्रकाशित 'माइक्रोग्राफिया' नामक पुस्तक में पाया गया है।

जोसफ स्वॉन ने सन् 1880 के दशक के शुरूआती दौर में पहली बार पेड़ की छाल से लिए गए तरल सेलुलोस से रेशे तैयार किए। जल्द ही स्वॉन के रेशों का वस्त्र निर्माण में उपयोग के कारण कपड़ा उद्योग में एक क्रांतिकारी बदलाव का अहसास हुआ।

अगला कदम, हिलैरे डे शारडोनेट द्वारा पहली बार कृत्रिम रेशम का आविष्कार हुआ जिसे 'शारडोनेट रेशम' कहा गया। दुर्भाग्य से 'शारडेनेट मेटीरियल' कपड़ा अत्यन्त ज्वलनशील था क्योंकि इसमें नाइट्रोसेलुलोस का उपयोग किया गया था।

पहली सफल प्रक्रिया चार्ल्स फेडरिक क्रास और उनके सहयोगियों एडवर्ड जॉन बेवन और क्लेटन बीडल द्वारा सन् 1894 में एक प्रकार का रेशा विकसित किया गया, जिसका नाम 'विस्कोज' दिया गया। पहली बार वाणिज्यिक रूप से 'विस्कोस रेयान' सन् 1905 में ब्रिटेन की कंपनी 'कोर्टोल्ड फाइबर्स' ने बनाया। 'रेयान' नाम सन् 1924 में अपनाया गया था।

नायलॉन पहला संश्लिष्ट सूत था, जिसे 1930 के दशक में वालेस कैरोथर्स द्वारा एक रासायनिक फर्म ड्यूपॉन्ट में विकसित किया गया था। यह जल्द ही रेशम के स्थानापन्न के रूप में अमेरिका में लोकप्रिय बना।

पहला पॉलिएस्टर सूत जॉन रेक्स विनफील्ड और जेम्स टेनेंट डिक्सन द्वारा सन् 1941 में प्रचलित किया गया। उन्होंने पॉलिएस्टर सूत को पेटेंट कराया जिसे 'टेरीलीन' या 'डेक्रान' के नाम से भी जाना जाता है।

सन् 2014 में दुनिया में संश्लिष्ट रेशे (तंतु) का उत्पादन 55.2 लाख टन रहा। संश्लिष्ट रेशे जैसे नायलॉन, पॉलिएस्टर, एक्रिलिक और पॉलिओलीफीन महत्वपूर्ण वाणिज्यिक उत्पादों के रूप में मूल्यांकित किए गए हैं। संप्रति इन चारों संश्लिष्ट रेशों का लगभग 98 प्रतिशत और पॉलिएस्टर का अकेले की 60 प्रतिशत उत्पादन का विवरण है। संश्लिष्ट रेशों के निर्माण के कई

तरीके हैं लेकिन, सबसे आम मेल्ट–स्पिनिंग (Melt Spining) प्रक्रिया है।

प्रमुख मानव निर्मित संश्लेषित रेशे–

रेयान

कृत्रिम वस्त्र बनाने की सामग्री(पदार्थ) जिसे वनस्पति स्रोतों से विशुद्ध रूप से प्राप्त किया गया। रेशम के एक विकल्प के रूप में 19 वीं सदी में इसे विकसित किया गया। रेयान पहला मानव निर्मित फाइबर था।

रेयान को कृत्रिम संशोधित, परिवर्तित फाइबर के रूप में वर्णित किया गया है क्योंकि सेलुलोस को यहाँ मुलायम काष्ठ से या मूलत: छोटे रेशों (लिंटर) जो कि कपास के बीजों से चिपके रहते हैं से प्राप्त किया जाता है।

रेयान का पहला वाणिज्यिक उत्पादन 'शारडोनेट रेशम' का निर्माण था जो कि मानव निर्मित था जो कि मानव निर्मित फाइबर का एक प्रारंभिक प्रकार था। इसका उत्पादन सन् 1891 में बिसेनकॉन के एक कारखाने में शुरू हुआ।

रेयान के कपास के समान कई गुण हैं। ये रेशे आसानी से पानी सोखते हैं। गीले अवस्था में यह अपनी शक्ति खो देते हैं। परिधान के रूप में रेयान को अकेले या अन्य रेशों के साथ मिश्रित करके प्रयोग किया जाता है जहाँ सामान्य रूप से कपास का इस्तेमाल होता है। उच्च शक्ति के रेयान का उपयोग ऑटोमोबाइल टायर में टायर कॉर्ड के रूप में किया जाता है। कागज बनाने के लिए लकड़ी के लुगदी के साथ इसका मिश्रण किया जाता है।

रेयान को आज भी एक महत्वपूर्ण फाइबर के रूप में देखा जाता है। हालांकि इससे जुड़े सह उत्पादों में जैसे– वायु में कार्बन डाइसल्फाइड और नमक का नदी–नालों में उत्सर्जन से उत्पन्न हुए पर्यावरण सम्बन्धी चिन्ताओं के कारण औद्योगिक देशों में इसके उत्पादन में गिरावट आई है। इस प्रकार के चिन्ताओं ने एक नए प्रकार के रेयान, जिसे 'लाइओसेल' कहते है के विकास का मार्ग प्रशस्त किया है।

सेलुलोस ऐसीटेट

यह एक प्रकार का कृत्रिम यौगिक पदार्थ है जो कि वनस्पति से प्राप्त किए गए सेलुलोस के ऐसीटिलीकरण द्वारा प्राप्त किया जाता है। सेलुलोस ऐसीटेट को वस्त्र बनाने के सूत में काता जाता है। कुछ इस प्रकार के सूत ऐसीटेट रेयान, ऐसीटेट या ट्राईऐसीटेट के नाम से पहचाने जाते हैं।

सेलुलोस एक प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाला बहुलक है जिसे लकड़ी या कपास के बीजों में लगे हुए रेशों से प्राप्त किया जाता है। यह ग्लूकोस इकाइओं के जिसका रासायनिक सूत्र – $C_6 H_7 O_2 (OH)_3$ है, के दोहराने से बना है।

सेलुलोस ऐसीटेट का औद्योगिक उत्पादन, फाइबर डिजाइन करने के एक प्रयास के रूप में 19 वीं सदी में विकसित किया गया था। सेलुलोस की नाइट्रिक एसिड के साथ अभिक्रिया कराने पर नाइट्रोसेलुलोस बना। चूँकि यह उत्पाद अत्यधिक ज्वलनशील था, इसलिए इससे कार्य करने सम्बन्धी अनेक कठिनाइयाँ आयीं, जिससे इस यौगिक पर अन्य क्षेत्रों में अनुसंधान को प्रोत्साहन मिला।

व्यावसायिक पैमाने पर सेलुलोस ऐसीटेट का उत्पादन दो स्विस भाइयों हेनरी ड्रेफस (Henry Dreyfus) और केमिली ड्रेफस (Camille Dreyfus) द्वारा पूर्ण रूप से किया गया। विश्व युद्ध के दौरान सेलुलोज डाइएसीटेट का उत्पादन एक कारखाने में किया गया। इसका इस्तेमाल हवाई जहाज के पंखो में अज्वलनशील कोटिंग के रूप में किया गया।

सन् 1929 में अमेरिका के ड्यूपॉन्ट कंपनी ने ऐसीटेट फाइबर का उत्पादन शुरू किया। ये ऐसीटेट कपड़े अपनी कोमलता और सुन्दरता की वजह से काफी प्रचलित हुए। इस पदार्थ से बने कपड़ों में सिकुड़न आसानी से नहीं आता था क्योंकि यह कम नमी अवशोषित करता था। इसमें दाग लगने का भी भय नहीं था। इसे धोना, प्रेस करना भी आसान था। इन रेशों का उपयोग खेल सम्बन्धित कपड़ों, शर्ट, टाई, कालीन, परिधानों में अकेले या सम्मिश्रणों में इस्तेमाल किया गया।

सन् 1950 में ब्रिटिश फर्म कोर्टल्डस लिमिटेड ने ट्राइऐसीटेट फाइबर को एक व्यावसायिक पैमाने पर उत्पादन किया। कोर्टल्डस और ब्रिटिश क्लेनीस (Celanese) ने ट्राइऐसीटेट फाइबर को ट्रेडमार्क ट्राइसेल (Tricel) के तहत विक्रय किया। संयुक्त राज्य अमेरिका ट्राइऐसीटेट को ट्रेडमार्क आर्नेल (Arnel) के नाम से बाजार में पेश किया गया। ये कपड़े अपने बेहतर आकार, बिना सिकुड़न वाले, बेहतर आकार प्रतिधारण और आसानी से धोया और सुखाया जा सकता था, इनकी उच्च चमक की वजह से इन्हें कपड़ों के अन्दर अस्तर के रूप में भी इस्तेमाल किया गया। आज सेलुलोस डाइऐसीटेट के फाइबर के बंडल फिल्टर सिगरेट के लिए प्रमुख सामग्री बन गया है।

पॉलियामाइड

इन बहुलकों में एमाइड लिंकेज का पाया जाता है। ऐसे संश्लेषित रेशों का महत्वपूर्ण उदाहरण

नाइलॉन के रूप में जाना जाता है।

इसके विनिर्माण की साधारण विधि में, डाइएमीन का डाइकार्बोक्सिलिक अम्ल या ऐमीनों एसिड या उसके लैक्टम के साथ संघनन द्वारा किया जाता है।

नाइलॉन का विनिर्माण -

कृत्रिम पॉलिऐमाइड (Polyamides) को कृत्रिम रेशों से बनाते हैं। इनकी प्रोटीन जैसी संरचना होती है, साधारणतः नाइलॉन (Nylon) कहलाते हैं। नाइलॉन में पेप्टाइड बन्ध -CO-NH- होते हैं, जैसे कि प्राकृतिक प्रोटीन तन्तुओं (जैसे- ऊन) में होते हैं।

नाइलॉन, प्रथम कृत्रिम रेशा है, जो सन् 1935 में कारोथर (Carothers) द्वारा ऐडिपिक अम्ल और हेक्सामेथिलीन डाइऐमीन के संघनन बहुलकीकरण द्वारा बनाया गया था।

इस विधि द्वारा बनाया गया नाइलॉन, नाइलॉन–6,6 कहलाता है, क्योंकि यह बहुलक दो घटकों से निर्मित है, जिसमें प्रत्येक में 6 कार्बन परमाणु उपस्थित है। नाइलॉन 6,6 में प्रबल अन्तराअणुक हाइड्रोजन आबन्धन बल होते हैं।

नाइलॉन–6 :

यह बहुलक, कैप्रोलैक्टैम (Caprolactum) से बनाया जाता है–

- नाइलॉन –6,6 की तुलना में नाइलॉन–6 मृदु और निम्न गलनांक का बहुलक है।
- नाइलॉन–6,6 और नाइलॉन–6 का उपयोग कृत्रिम तन्तु, सूत, वस्त्र, प्लास्टिक, टायर की कोर्ड, पैराशूट, ब्रुश, रस्सी, डोरी आदि बनाने में होता है।

आरामिड

यह एक पूर्णरूप से खुशबूदार पॉलियामाइड है, जिसमें बड़े फिनाइल के छल्ले, ऐमाइड समूह के इकाइयों के साथ दोहराते हैं। ऐमाइड समूह -(CO-NH)- मजबूत बन्ध बनाते हैं जो इसे विलायक द्रव (सॉल्वैंट्स) और तापरोधी बनाते हैं। आरामिड कठोर, उच्च ताप गलनीय और काफी हद तक अघुलनशील अणु हैं जो कि उच्च कार्य निष्पादन और कताई के लिए आदर्श होते हैं।

सबसे अच्छा ज्ञात आरामिड, नोमेक्स है, जो उच्च ताप में पिघलता है और इससे फ़्लेमप्रूफ सुरक्षात्मक कपड़े बनाए जाते हैं और दूसरा केवलर, एक उच्च शक्ति फाइबर है जिससे बुलेटप्रूफ वासकट (बण्डी) बनाया जाता है।

आरामिड का विकास नायलॉन के बाद किया गया। सन् 1950 और 1960 के दशक के दौरान इस वर्ग के कार्बनयुक्त यौगिकों का विकास और विस्तार अमेरिका के ड्यूपॉन्ट कंपनी में खासकर पॉल डब्ल्यू मार्गन और स्टेफनी एल क्वोलेक द्वारा किया गया। सन् 1961 में ड्यूपॉन्ट ने नोमेक्स या पॉलि–एम–फिनलीन आइसोफ्थैलामाइड का उत्पादन किया जो आइसोफ्थैलिक एसिड क्लोराइड और एम–फिनलीनडाइऐमीन का उत्पाद है, सन् 1971 में केवलर जो पॉलि–पी–फिनलीन टेरेफ्थेलामाइड है, यह टेरेफ्थेलिक एसिड क्लोराइड और पी–फीनलीनडाइऐमीन का उत्पाद है।

केवलर नोमेक्स, स्टील की तुलना में पाँच गुना मजबूत है। केवलर वर्ग के आरामिड की दिन-प्रतिदिन उपयोगिता बढ़ रही है। हल्के शरीर कवच के अलावा, रेडियल टायर के बेल्ट, केबल, विमान के पैनलों, नाव के ढाचों, लौ प्रतिरोधी वस्त्रों (विशेष रूप से नोमेक्स के साथ मिश्रणों में) खेल उपकरणों जैसे गोल्फ क्लब शाफ्ट के रूप में, हल्के साइकिल, ऑटोमोबाइल के क्लच और ब्रेक में, ऐस्बेटस के प्रतिस्थापन के रूप में इस्तेमाल होता है। नोमेक्स का उपयोग लौ प्रतिरोधी सूट, आग बुझाने वाले सेना के कर्मियों और पायलटों और रेस कार चालकों के वस्रों के लिए, गर्म हो चुकी गैसों के लिए फिल्टर बैग में, ऑटोमोबाइल 'वी' बेल्ट और होज इत्यादि में होता है।

2. **पॉलिएस्टर रेशे** (Polyester Fibres) :

पॉलिएस्टर रेशे कृत्रिम बहुलक हैं, जिनका मुख्य उपयोग वस्त्र बनाने में होता है। पॉलिएस्टर बहुलकों में पॉलि-एथिलीन टेरेफ्थेलेट (Poly-Ethylene Terephthalate), मुख्य बहुलक है। पॉलिएस्टर बहुलक, जिसे टैरीलीन (Terylene), डेक्रॉन और माइलर (Mylar) के नाम से जाना जाता है। इसके निर्माण में संघनन बहुलकीकरण में एकलक अणुओं के संयोजन पर सरल अणु जैसे H_2O आदि विलुप्त होते हैं।

परिणामस्वरूप पॉलिएस्टर बहुलक टैरीलीन बनता है। टैरीलीन का आविष्कार सन् 1941 में लंकाशायर में दो कीमियागारों द्वारा किया गया था। अब इसे इंपीरियल केमिकल इंडस्ट्रीज द्वारा बनाया जाता है। अमेरिका में यह 'डेक्रान' के नाम से जाना जाता है। आज इसने बाजार में तैयार कृत्रिम वस्त्र के रूप में अपनी जगह बना ली है।

एक्रिलिक

यह एक्रिलिक और मिथएक्रिलिक अम्ल का साधारण नाम सूचित करता है, जिसमें एक्रिलिक

एस्टर और नाइट्राइल और एमाइड समूहों युक्त यौगिक भी शामिल रहते हैं। एक्रिलिक के आधार पर कई बहुलक पहले और अन्य कई पॉलिमर अब व्यापक रूप से बाजार में हैं। सन् 1880 में स्विस रसायनज्ञ जोर्ज डब्लू.ए.कहलबोम (Georg W.A.Kahlbaum) ने पॉलिमिथिल एक्रिलेट बनाया और सन् 1901 में जर्मन रसायनज्ञ ओटो रोहम (Otto Rohm) ने एक्रिलिक एस्टरों के बहुलकों पर अनुसंधान करके डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। एक प्रकार के लचीले एक्रिलिक एस्टर, पॉलिमिथिल एक्रिलेट का वाणिज्यिक उत्पादन सन् 1927 के शुरूआत में जर्मनी में रोहम और हैस ए.जी. द्वारा किया गया और सन् 1931 में रोहम और हैस कंपनी अमेरिका ने लैमिनेटेड सेफ्टी ग्लास शीट का उत्पादन करके प्लेक्सिगम (Plexigum) ट्रेडमार्क के नाम से बाजार में बेचा।

आर्लन (Orlon)

ड्यूपॉन्ट ने पहली एक्रिलिक फाइबर का, 'आर्लन' ट्रेडमार्क नाम से वाणिज्यिक उत्पादन किया। यह कृत्रिम ऐक्रिलिक तंतु का ट्रेडमार्क है जो कि लंबे रेशों या फिर छोटे बंडलों के रूप में प्राप्त होता है। आर्लन सूर्य की रोशनी और वायुमंडलीय गैसों द्वारा प्रभावित नहीं होता है जो इसे तम्बू और अन्य बाहरी उपयोग के लिए आदर्श बनाता है। यह अपनी स्थायित्व, सिकुड़न प्रतिरोधी, मुलायम, गर्मी का अहसास कराने वाला और अच्छे वस्त्र की विशेषता रखता है। इन रेशों की उच्च तन्यता शक्ति होती है और गीले रहने पर भी सूखे का अहसास कराता है। आर्लन रसायन, मुख्यत: अम्ल प्रतिरोधी होता है। यह उसे उच्च तापमान का सामना करने की क्षमता देता है जो इसे औद्योगिक उपयोग के लिए उपयुक्त बनाता है।

इन रेशों का इस्तेमाल खेल के कपड़ों, सूट के वस्त्रों, पोशाकों, बुने हुए कपड़ों में होता है। आर्लन को ड्यूपॉन्ट कंपनी द्वारा निर्मित किया गया, नायलॉन और रेयॉन के अन्वेषण के दौरान इसका विकास हुआ। मूलत: इसे 'फाइबर ए' कहा जाता था। सन् 1950 में व्यापारिक नाम 'आर्लन' करते हुए पॉलिएक्रिलोनाट्राइल तंतुओं के लिए अपनाया गया। ड्यूपॉन्ट की आशा थी कि आर्लन बाजार में ऊन की जगह लेगा। सन् 1955 के आसपास आर्लन के प्रधान फाइबर के रूप में उपयोग से वस्त्र उद्योग में उछाल आया एवं इसकी शुरूआत महिलाओं के लिए फैशन स्वेटर के रूप में हुआ। सन् 1960 तक इसकी बिक्री प्रतिवर्ष एक मिलियन पाउंड तक पाउंड तक पहुँचने के साथ ड्यूपॉन्ट ने उपभोक्ताओं की विशिष्ट मांगों को पूरा करने के लिए आर्लन की नयी किस्में, कंबल और कालीन के रूप पेश की। तथा सन् 1990 के बाद इसकी ड्यूपॉन्ट ने आर्लन एक्रिलिक कालीन के रेशों को नए

प्रकार के कृत्रिम रेशों जैसे– पॉलिएस्टर (डेक्रान), पॉलिप्रोपलीन और पॉलियामाइड से प्रतिस्थापित किया। आर्लन और एक्रिलॉन, एक्रिलिक फाइबर का ट्रेडमार्क नाम है।

मोडएक्रिलिक

यह एक्रिलिक का परिवर्तित रूप है। ये रेशे न्यूनतम 85 प्रतिशत एक्रिलोनाइट्राइल के बने होते हैं। मोडएक्रिलिक रेशे **डाइनेल (Dynel)** (एक्रिलोनाट्राइल और पॉलिविनिल क्लोराइड) और **वेरेल** Verel (एक्रिलोनाइट्राइल और विनिलिडीन क्लोराइड) ट्रेडमार्क से जाने जाते हैं।

मोडएक्रिलिक रेशे अकेले या अन्य सूतों के संग मिश्रित कर इस्तेमाल किया जाता है, जैसे परिधानों, सूट, खेलकूद के कपड़ों में नकली फर (रोवाँ) वाले कोट लोकप्रिय हैं। इसे घरेलू साज–सज्जा के सामान जैसे पर्दे, कंबल और फर वाले आसनों में उपयोग किया जाता है। मोडएक्रिलिक से बने विग (बालों की टोपी) को अच्छी स्वीकृति मिली है। औद्योगिक अनुप्रयोगों में विभिन्न प्रकार के फिल्टर, पेंट–रोलर और इससे बने रसायन प्रतिरोधी वस्त्र शामिल हैं।

पॉलियूरथेन

यह एक प्रकार के राल से प्राप्त होने वाला, रेशेदार, बहुलक है जिसका निर्माण डाइ आइसोसायनेट(–NCO युक्त दो क्रियाशील समूहों वाले) के संग द्वी क्रियाशील यौगिक जैसे ग्लाइकॉल के साथ अभिक्रिया द्वारा होता है। सर्वश्रेष्ठ ज्ञात पॉलियूरथेन, लचीले मुलायम फोम जिसका उपयोग गद्दों आदि (गृह सज्ञा के सामानों) में और कड़े फोम का इस्तेमाल हल्के संरचनात्मक तत्वों जैसे हवाई जहाज के पंखों में होता है।

वस्त्रों में उपयुक्त लचीले सिंथेटिक रेशों को सामान्य रूप से स्पैन्डेक्स के रूप मे जाना जाता है, जिसमें 85 प्रतिशत पॉलियूरथेन होता है। इस तरह के रेशों को आम तौर पर उनके अत्यधिक लचकदार गुणधर्म के कारण इस्तेमाल किया जाता है। इस समूह के ट्रेडमार्क रेशे लाइक्रा, नूमा, स्पेन्डेल और वाइरीन हैं। इस तरह के फाइबर को कई टेक्सटाइल प्रयोजनों में जिसने काफी हद तक प्राकृतिक और सिंथेटिक रबर फाइबर को प्रतिस्थापित किया है। स्पैन्डेक्स रेशों को 500–610 प्रतिशत तक खींचा जा सकता है। इन रेशों को आमतौर पर सफेद, चमकरहित और आसानी से रंगा जा सकता है। यह बहुत कम नमी अवशोषित करता है। स्पैन्डेक्स रेशों को अक्सर अन्य रेशों के साथ जैसे– नायलॉन के साथ आवृत(Cover) किया जाता है।

स्पैन्डेक्स को होजरी, स्विमसूट जैसे परिधानों में इस्तेमाल किया जाता है। यह वजन में हल्का और पहनने में शीतल होता है। यह शरीर से निकले हुए अम्ल द्वारा नष्ट नहीं होता है और आसानी से धोया और सुखाया जा सकता है।

सरन फाइबर (Saran Fibres)

राल्फ विले डिशवाशर के रूप में डॉव(Dow) केमिकल लैब में अंशकालिक कार्य किया करते थे। सन् 1993 में अकस्मात उन्होंने पॉलीविनाइल क्लोराइड की खोज की, जब वे प्रयोगशाला में काँच की शीशी पर बने पदार्थ की सफाई नहीं कर पा रहे थे। डॉव के शोधकर्ताओं ने इस चिकने गहरे हरे रंग के फिल्म को बनाया था जिसको पहले इयोनाइट (Eonite) और फिर सरन कहा जाने लगा।

पॉलीविनाइल क्लोराइड का सबसे जाना पहचाना उपयोग सरन आवरण (रैप) के रूप में सन् 1953 में आया जिसे भोजन को ढकने के लिए इस्तेमाल किया गया। सन् 2004 में, हालांकि पर्यावरण सम्बन्धी कारणों की वजह से इसकी जगह कम धनत्व वाले पॉलीथीन ने ले लिया। सरन फाइबर मोनोफिलामेंट, मल्टीफिलामेंट–टिवस्ट के रूप में आता है। यह एक स्टेपल (मुख्य) फाइबर भी है। यह ताप से अपना रंग बदलता है और अंधेरे में चमकता भी है।

सरन फाइबर मेल्ट स्पिनिंग प्रक्रिया द्वारा विनिलिडीन क्लोराइड से निर्मित किया जाता है। अपने उत्कृष्ट गुणधर्मों के कारण अनेक औद्योगिक अनुप्रयोगों और उपभोक्ता उत्पादों में इसका इस्तेमाल होता है। यह एक उत्कृष्ट लौ प्रतिरोधी, बेहतर रासायनिक प्रतिरोधी है। चूंकि इस फाइबर की कताई के पहले इसमें वर्णक मिलाया जाता है इसीलिए सरन फाइबर सूर्य की रोशनी और मौसम के उतार–चढाव के बावजूद अपनी चमक, रंगत और अर्द्ध–पारदर्शिता बनाए रखता है।

यह काफी कम नमी सोखता है। सरन फाइबर मिट्टी, बैक्टीरिया और कीटों से लगभग प्रभावित नहीं होता है और उच्च लोचदार प्रकृति के कारण सरन रेशों का त्रि–आयामी (3–dimensional) वस्त्रों में मोनोफिलामेंट के रूप में उपयोग होता है।

➢ एसोसिएट प्रोफेसर

रसायन विभाग

सी.एम.पी.डिग्री कालेज

इलाहाबाद (उ.प्र.)

ई–मेल : sunanda.das@gmail.com

कोशिका एवं कोशिका विभाजन

■ डॉ. उमेश कुमार शुक्ल

कोशिका सजीवों के शरीर की रचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाई है और प्राय: स्वत: जनन की सामर्थ्य रखती है। यह विभिन्न पदार्थों का वह छोटे से छोटा संगठित रूप है जिसमें वे सभी क्रियाएं होती है जिन्हें सामूहिक रूप से हम जीवन कहते हैं। कोशिका का अंग्रेजी शब्द सेल लैटिन भाषा से लिया गया है जिसका अर्थ 'एक छोटा कमरा' है। कुछ सजीव जीवाणुओं के शरीर एक ही कोशिका से बने होते हैं, उन्हें एक कोशिकीय जीव कहते है।

जबकि मनुष्य का शरीर अनेक कोशिकाओं से मिलकर बना होता है। कोशिका की खोज राबर्ट हुक ने सन् 1665 में किया तथा सन् 1939 में श्लाइडेन तथा श्वान ने कोशिका सिद्धान्त को प्रस्तुत किया जिसके अनुसार सभी सजीवों का शरीर एक या एक से अधिक कोशिकाओं से मिलकर बना होता है तथा सभी कोशिकाओं की उत्पत्ति पहले से उपस्थित कोशिका से ही होती है। सजीवों की सभी जैविक क्रियाएं कोशिकाओं के भीतर होती हैं। कोशिकाओं के भीतर ही आवश्यक आनुवंशिक सूचनाएँ होती हैं जिनसे कोशिका के कार्यों का नियंत्रण होता है तथा सूचनाएँ अगली पीढ़ी की कोशिकाओं में स्थानान्तरित होती हैं।

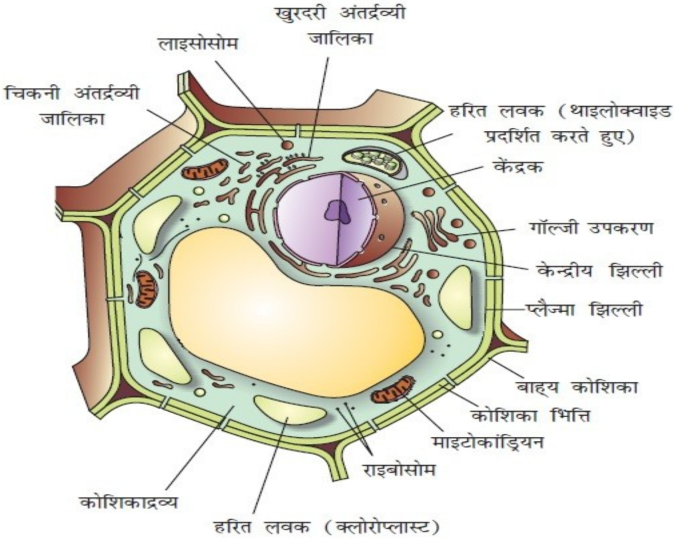

कोशिका का आविष्कार एवं अनुसंधान

- **सन् 1665** में राबर्ट हुक ने कोशा भित्तियों के आधार पर 'कोशा' शब्द प्रयोग किया।
- **सन् 1674** में एंटोनी वॉन ल्यूवेन्हॉक ने जीवित कोशा का सर्वप्रथम अध्ययन किया।
- **सन् 1831** में रॉबर्ट ब्राउन ने कोशिका में 'ककेंद्रक एवं केंद्रिका' का पता लगाया।
- **सन् 1824** में तदरोचित नामक वैज्ञानिक ने कोशावाद का विचार प्रस्तुत किया, परन्तु इसका श्रेय वनस्पति–विज्ञान–शास्त्री श्लाइडेन और जन्तु–विज्ञान–शास्त्री श्वान को दिया जाता है।
- **सन् 1855** में रुडॉल्फ विर्चो ने विचार रखा कि कोशिकाएँ सदा कोशिकाओं के विभाजन से ही पैदा होती हैं।
- **सन् 1953** में वाट्सन और क्रिक ने डीएनए के 'डबल–हेलिक्स संरचना' की पहली बार घोषणा की।
- **सन् 1981** में लिन मार्गुलिस ने कोशिका क्रम विकास में 'सिम्बियोसिस' पर शोधपत्र प्रस्तुत किया।

कोशिकाओं के प्रकार

कोशिकाएँ दो प्रकार की होती हैं –

1. प्रोकैरियोटिक कोशिका : ये प्राय: स्वतंत्र होती हैं।

2. यूकैरियोटिक कोशिका : ये प्राय: बहुकोशिकीय जीवों में पाई जाती हैं।

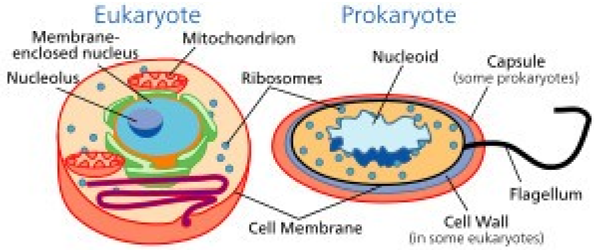

प्रोकैरियोटिक एवं यूकैरियोटिक कोशिका

कोशिका संरचना

कोशिका सजीव होती है तथा वे सभी कार्य करती है। इनका आकार अतिसूक्ष्म तथा आकृति गोलाकार, अण्डाकार, स्तंभाकार, रोमयुक्त, कशाभियुक्त, बहुभुजीय आदि प्रकार की होती है। ये जेली जैसी एक वस्तु द्वारा घिरी होती हैं। इस आवरण को कोशिकावरण या कोशिका झिल्ली कहते है। यह झिल्ली अवकलनीय पारगम्य होती है जिसका अर्थ है कि यह झिल्ली किसी पदार्थ (अणु या आयन) को मुक्त रूप से पार होने देती है। इसे कभी–कभी जीवद्रव्य (Plasma Membrane) भी कहा जाता है। इसके भीतर निम्नलिखित संरचनाएँ पाई जाती हैं–

- लवक
- माइटोकॉन्ड्रिया
- अंतर्प्रद्रव्य जालिका
- राइबोसोम
- गोल्मी सम्मिश्रण
- सेन्ट्रोसोम
- कषामिका एवं पक्ष्माभिका
- लाइसोसोम्स
- स्फेरोसोम्स
- माइक्रोबॉडीज

लवक (Plastids)

सन् 1865 में हेकल नामक वैज्ञानिक ने लवक को प्रतिपादित किया था। लवक अधिकतर पौधों में ही पाए जाते हैं। ये एक प्रकार के रंजक कण हैं, जो जीवद्रव्य में यत्र–तत्र बिखरे रहते हैं। क्लोरोफिल धारक वर्ण के लवक को हरित लवक कहा जाता है। इसी के कारण वृक्षों में हरापन दिखलाई देता है। क्लोरोफिल के ही कारण पेड़–पौधे प्रकाश–संश्लेषण करते हैं।

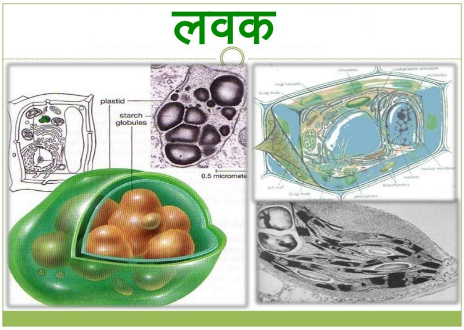

माइटोकॉन्ड्रिया –

- सन् 1880 में कोलिकर ने रेखित पेशियों में सर्वप्रथम माइटोकॉन्ड्रिया की खोज किया।
- सन् 1890 में अलमान ने कोशिकाओं में माइटोकॉन्ड्रिया का उल्लेख किया।
- सन् 1897 में सी. वेन्डा ने सर्वप्रथम माइटोकान्ड्रिया नाम दिया।

ये कणिकाओं या शलाकाओं की आकृति वाले होते हैं। ये अंगक कोशिकाद्रव्य में स्थित होते हैं इनकी संख्या विभिन्न जंतुओं में पाँच लाख तक हो सकती है। इनकी औसत लम्बाई 3 से 5 μ और औसत व्यास 0.5 से 1 μ होता है, सूत्रीय माइटोकॉन्ड्रिया की लम्बाई 40 μ तक हो सकती है। इनके अनेक कार्य हैं, जो इनकी आकृति पर निर्भर करते हैं। तथापि इनका मुख्य कार्य कोशिकीय श्वसन बतलाया जाता है। इन्हें कोशिका का पावर प्लांट कहा जाता है। क्योंकि इनसे आवश्यक ऊर्जा की आपूर्ति होती रहती है।

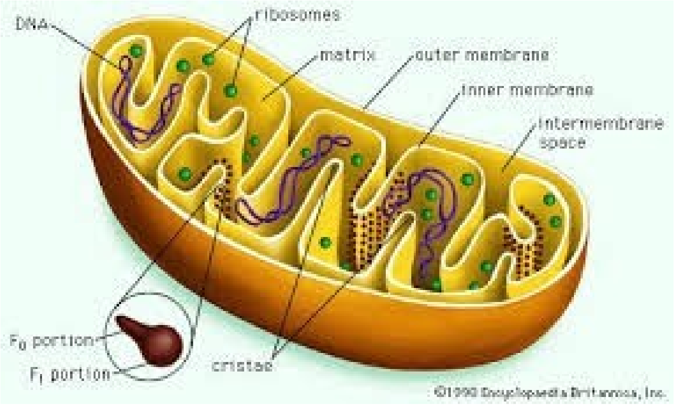

माइटोकॉन्ड्रिया (**Mitrochnodria**)

अंतर्द्रव्यी जालिका (Eandoplamic Reticulum)

सन् 1945 में के.आर. पोर्टर ने अन्तर्द्रव्यी जालिका का आविष्कार किया। यह जालिका कोशिका द्रव्य में आशयों और नलिकाओं के रूप में फैली रहती है। इसकी स्थिति सामान्यत: केन्द्रीय झिल्ली तथा द्रव्यकला के बीच होती है, किन्तु यह अक्सर सम्पूर्ण कोशिका में फैली रहती है। यह जालिका दो प्रकार की होती है चिकनी सतहवाली और खुरदरी सतहवाली , इसकी सतह खुरदुरी इसलिए होती है कि इस पर राइबोसोम के कण बिखरे रहते हैं। इसके

अनेक कार्य है, जैसे - यांत्रिक आधारण, द्रव्यों का प्रत्यावर्तन, अंत: कोशिकीय अभिगमन, प्रोटीन संश्लेषण इत्यादि।

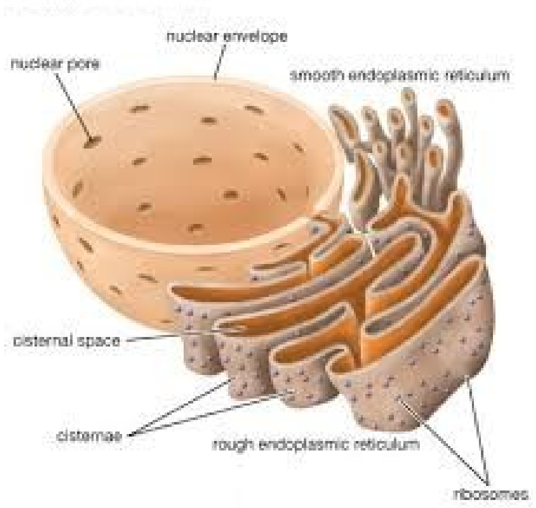

अंतर्द्रव्यी जालिका (Eandoplasmic reticulum)

राइबोसोम (Ribosomes)

राइबोसोम की खोज सन् 1955 में पैलार्ड ने की थी और इनको इस कार्य के लिए नोबेल पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। सूक्ष्म गूलिकाओं के रूप में प्राप्त इन संरचनाओं को केवल माइक्रोस्कोप के द्वारा ही देखा जा सकता है। इनकी रचना 50% प्रोटीन तथा 50% आर. एन. ए. द्वारा हुई होती है। ये विशेषकर अंतर्द्रव्यी जालिका के ऊपर पाए जाते हैं। इनमें प्रोटीनों का संश्लेषण होता है।

गॉल्जी काय

गॉल्जीकाय कोशिका का एक मुख्य कोशिकांग है। इन्हें लाइपोकॉण्ड्रिया भी कहते हैं। पौधों में इन्हें जालिकाय या डिक्ट्योसोम कहते हैं। इनका अन्वेषण सर्वप्रथम कैमिलो गॉल्जी ने सन् 1898 में पशुओं की कोशिकाओं के अध्ययन के आधार पर किया। जिसके लिए उन्हें सन्

1906 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

सेन्ट्रोसोम

सन् 1888 में टी.बाबेरी ने 'सेन्ट्रोसोम' शब्द का प्रतिपादन किया, तारककाय जन्तु कोशिकाओं और कुछ पौधे उदाहरण के लिए शैवाल, रोडोफाइसी के अतिरिक्त कवकों तथा मौस में केन्द्रक के समीप कोशिका द्रव्य में पाए जाते हैं।

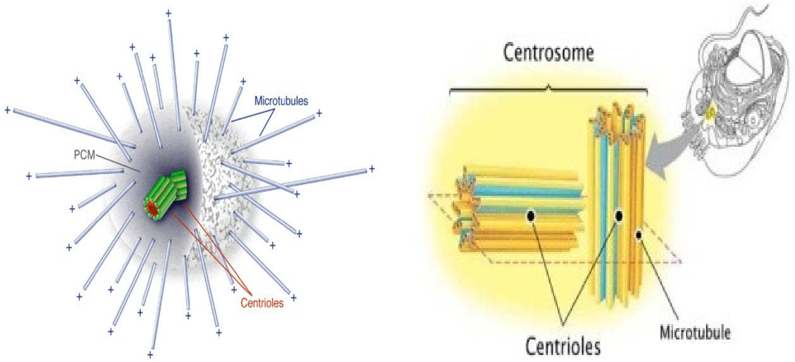

सेन्ट्रोसोम (**Centrosomes**)

कशाभिका एवं पक्ष्माभिका

कुछ प्राणी या तो स्वयं गतिशील होते हैं या उनकी कुछ रचनाएँ, उदाहरण के लिए चलबीजाणु तथा नर युग्मक या पुंमणु गतिशील होते हैं। अनेक यूकैरियोटिक कोशिकाओं में गतिशीलता के लिए एक या अधिक कोमल एवं तंतुमय कशाभ तथा पक्ष्माभ होते हैं। ये रचनाएं जीवद्रव्य कला के उभार हैं जिनमें सूक्ष्म नलिकाएं होती हैं ये रचनाएं जीवद्रव्य कला के नीचे धंसे एक कण आधारकाय से जुड़ी रहती हैं। प्रोकैरियोटिक कोशिका जैसे जीवाणु के कशाभ कुछ भिन्न होते हैं। ये कोशिका की सतह से प्रोटीन तन्तुओं के रूप में निकलते हैं।

लाइसोसोम्स अथवा लयनकाय

लाइसोसोम की खोज सर्वप्रथम डी डुवे ने सन् 1955 में की। सन् 1974 में उन्हें इस खोज के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। लाइसोसोम जन्तुओं की कोशिकाओं (अग्न्याशयी कोशिकाएं, ल्यूकोसाइट्स, यकृत कोशिकाएँ, वृक्क कोशिकाएं) में निश्चित रूप से देखी गई हैं, परन्तु पौधों की कोशिकाओं में इनकी उपस्थिति के उदाहरण कम मिलते हैं।

स्फेरोसोम्स

ये सूक्ष्म, गोलाकार कोशिकांग हैं जिन्हें हेंसटीन (सन् 1860) ने पादप कोशिकाओं में गाढ़े पदार्थ की कुछ प्रत्यावर्ती रचनाओं के रूप में देखा। सन् 1919 में डेनजियार्ड ने इन्हें स्फेरोसोम नाम दिया। ये एक परत वाली झिल्ली के बने होते हैं। इनमें हाइड्रोलेस, प्रोटीएस, राइबोन्यूक्लिएस, फॉस्फेटेस एवं ईस्टरेस विकर पाए जाते हैं। ये केवल पादप कोशिकाओं में पाए जाते हैं और जन्तु कोशिकाओं में पाए जाने वाले लाइसोसोम की तरह होते हैं। यद्यपि इनमें भी लाइसोसोम की तरह विकर होते हैं, परन्तु सभी विकरों का योग पूर्णतया भिन्न होता है। जिसके कारण इन्हें लाइसोसोम से पूर्णतया भिन्न समझा जाना चाहिए। इनका मुख्य कार्य वसा पदार्थों को एकत्रित करना, स्थानान्तरण तथा संश्लेषण करना है।

माइक्रोबॉडीज (Microbodies)

माइक्रोबॉडीज एक परत वाली झिल्ली से घिरी थैलियाँ होती हैं। इनका निर्माण एण्डोप्लाज्मिक रेटिकुलम या अन्तर्द्रव्यी जालिका एवं गॉल्जी तंत्र से थैलियों के टूटने से होता है। ये छोटे कोशिकांग लगभग 0.3 से 1.3 माइक्रोमीटर व्यास के होते हैं और ये दो प्रकार के होते हैं।

- परआक्सीसोम्स
- ग्लाइआक्सीसोम्स

केन्द्रिका (Nucleolus)

प्रत्येक केन्द्रक में एक या अधिक केन्द्रिकाएँ पाई जाती हैं। कोशिका विभाजन की कुछ विशेष अवस्था में केन्द्रिका लुप्त हो जाती है, किन्तु बाद में पुन: प्रकट हो जाती है। केन्द्रिका के भीतर राइबोन्यूक्लिक अम्ल (RNA) तथा कुछ विशेष प्रकार के एन्जाइम अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। केन्द्रिका सूत्रण या सूत्री विभाजन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं।

जीवद्रव्य (Protoplasm)

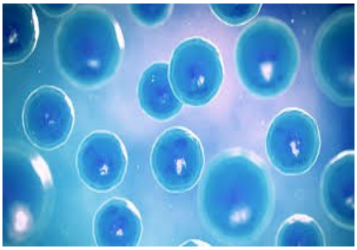

जीवद्रव्य

यह एक गाढ़ा तरल पदार्थ होता है जो स्थान विशेष पर विशेष नामों द्वारा जाना जाता है जैसे–द्रव्यकला तथा केन्द्रक के मध्यवर्ती स्थान में पाए जाने वाले जीवद्रव्य को कोशिकाद्रव्य और केन्द्रक झिल्ली के भीतर पाए जाने वाले जीवद्रव्य को केन्द्रकद्रव्य कहते

हैं। कोशिका का यह भाग अत्यन्त चैतन्य और कोशिका की समस्त जैवीय प्रक्रियाओं का केन्द्र होता है। इसे इसलिए 'सजीव' कहा जाता है। जीव वैज्ञानिक इसे 'जीवन का भौतिक आधार' नाम से सम्बोधित करते हैं। जीवद्रव्य का निर्माण कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन तथा अनेक कार्बनिक तथा अकार्बनिक पदार्थों द्वारा हुआ होता है। इसमें जल की मात्रा लगभग 80%, प्रोटीन 15%, वसा 3%, तथा कार्बोहाइड्रेट्स 1% और अकार्बनिक लवण की मात्रा 1% होती है।

केन्द्रक (Nucleus)

एक कोशिका में सामान्यत: एक ही केन्द्रक होता है। किन्तु कभी–कभी एक से अधिक केन्द्रक भी पाए जाते हैं। कोशिका के समस्त कार्यों का यह संचालन केन्द्र होता है। जब

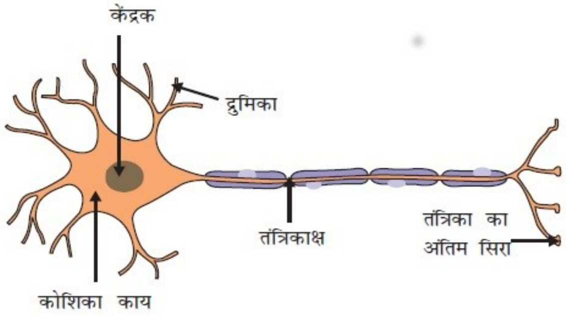

केन्द्रक(**Nucleus**)

कोशिका विभाजित होती है तो एक ही प्रकार की होती है। प्रत्येक स्परमाटिड क्रमश: लंबा और पतला हो जाता है। इसको स्परमेटाजोऑन कहते हैं। संसेचन में एक स्परमेटाजोऑन का सिर एक अंडाणु में प्रवेश करता है। संसेचित अंडाणु को युग्मज कहते है।

कोशिका कंकाल (Cytoskelton)

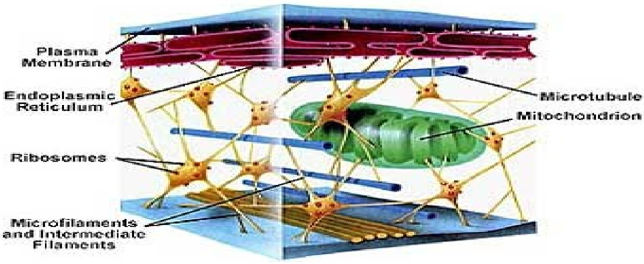

यूकेरायोटिक कोशिकापंजर ऐक्टिन तंतु (लाल) सूक्ष्मनलिका या माइक्रोट्यूबूल्स, (हरा) नाभिक (नीला) प्रोटीनयुक्त जालिकावत तन्तु जो कोशिकाद्रव्य से मिलता है । इसका कार्य कोशिका की यांत्रिक सहायता गति एवं आकार बनाए रखना होता है।

कोशिका विभाजन

जिस क्रिया द्वारा एक कोशिका विभाजित होकर दो या दो से अधिक कोशिकाएं उत्पन्न करती हैं उसे कोशिका विभाजन कहते हैं। कोशिका विभाजन वस्तुत: कोशिका चक्र का एक चरण है। विभाजित होने वाली कोशिका मातृकोशिका एवं विभाजन के फलस्वरूप बनने वाली कोशिकाएं पुत्री कोशिका कहलाती हैं। कोशिका विभाजन द्वारा ही जीवों के शरीर की वृद्धि और विकास होता है। इस क्रिया के फलस्वरूप ही घाव भरते हैं। प्रजनन एवं क्रम विकास के लिए भी कोशिका विभाजन की क्रिया आवश्यक है।

लैंगिक प्रजनन करने वाला प्रत्येक प्राणी अपना जीवन कोशिका अवस्था से ही आरम्भ करता है। कोशिका अंडा होती है और इसके निरंतर विभाजन से बहुत सी कोशिकाएं उत्पन्न हो जाती हैं। कोशिका विभाजन की क्रिया उस समय तक होती रहती है जब तक प्राणी भलीभाँति विकसित नहीं हो जाता।

कोशिका विभाजन की प्रक्रिया में कोशिका का जिनोम अपरिवर्तित रहता है। इसलिए विभाजन होने के पूर्व गुणसूत्रों पर स्थित सूचना प्रतिकृत हो जानी चाहिए और तत्पश्चात इन जीनोमों को कोशिकाओं के बीच सफाई से बांटना चाहिए।

कोशिका–निर्माण निम्नलिखित प्रकार से होता है–

1. सूत्री विभाजन या समसूत्रण कायिक सूत्री विभाजन
2. अर्धसूत्री विभाजन या अर्ध–सूत्रण
3. स्वतंत्र कोशिका–निर्माण
4. मुकुलन
5. असूत्री विभाजन या अमाइटोसिस

1. समसूत्री कोशिका विभाजन या समसूत्रण (Mitosis)

समसूत्रण, साधारण कोशिका विभाजन है। इसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया दो चरणों में पूरी होती है, प्रथम चरण में कोशिका के केन्द्रक का विभाजन होता है। इस प्रक्रिया को केन्द्रक विभाजन (कैरियोकाइनेसिस) कहते है। विभाजन के द्वितीय चरण में कोशिका–द्रव्य का विभाजन होता है। इस प्रक्रिया को कोशिका–द्रव्य विभाजन कहते है। विभाजन के अन्त में मातृकोशिका, पुत्रीकोशिका में बदल जाती है। सूत्री विभाजन की प्रक्रिया चरणों में पूरी होती है।

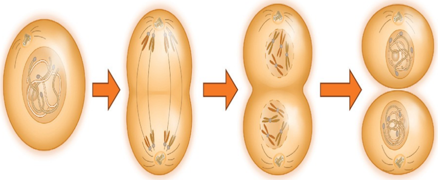

कोशिका विभाजन

(i) **केन्द्रक विभाजन (कैरियोकाइनेसिस)**

कोशिका के प्रत्येक विभाजन के पूर्व उसके केन्द्रक का विभाजन होता है। केन्द्रक विभाजन रीति के अनुसार होने वाली सुतथ्य घटना है, जिसे कई अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है।

ये अवस्थाएं निम्नलिखित हैं–

- पूर्वावस्था (Prophase)
- मध्यावस्था (Metaphase)
- पश्चावस्था (Anaphase)
- अन्त्यावस्था (Telophase)

पूर्वावस्था (Prophase)

पूर्वावस्था में ताराकेन्द्र का विभाजन हो जाता है और एक से दो ताराकेन्द्र एक दूसरे को प्रतिकर्षित करते है। इसके कारण ये एक दूसरे से दूर होते जाते हैं और सेंट्रोसोम दो भागों में विभाजित हो जाता है। दोनों सेंट्रोसोम एक दूसरे से अधिक दूरी पर व्यासाभिमुख स्थापित हो जाते हैं। प्रत्येक सेंट्रोसोम के चारों ओर कोशिकाद्रव्य की पतली–पतली रेखाएं बन जाती हैं, जिनको ताराकिरण कहते हैं। दोनों ओर से ताराकिरणें आकर केन्द्रावरण पर आघात करती हैं। इसके समय तक पूर्वावस्था अपनी परिसमाप्ति तक पहुँच जाती है और केन्द्रकावरण नष्ट हो जाता है।

मध्यावस्था (Metaphase)

केन्द्रक तर्कु की मध्यरेखा के समतल पर एकत्रित हो जाते हैं। इस समतल को मध्यावस्था फलक कहते है। मध्यावस्था में प्रत्येक केन्द्रकसूत्र अविभाजित ही प्रतीत होता है परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस अवस्था के बहुत पहले से ही प्रत्येक केन्द्रकसूत्र दो भागों में विभाजित रहता है। वस्तुत: विभाजन की क्रिया के पूर्व ही अंतराल अवस्था में केन्द्रक में प्रत्येक केन्द्रकसूत्र अपने सदृश्य एक दूसरा प्रतिवलित (Replicate) बना लेता है और ये दोनों सूत्र एक दूसरे के इतने समीप होते हैं कि देखने में एक ही ज्ञात होते हैं।

पश्चावस्था (Anaphase)

पश्चावस्था में प्रत्येक केन्द्रकसूत्र के दोनों भाग एक दूसरे से पृथक होने लगते हैं और इस अवस्था के अन्त काल तक अभिमुखकेन्द्र तक पहुँच जाते हैं।

अन्त्यावस्था (Telophase)

इसके पश्चात अंत्यावस्था आरम्भ होती है। इस अवस्था में केन्द्रकसूत्रों के दोनों समूहों और

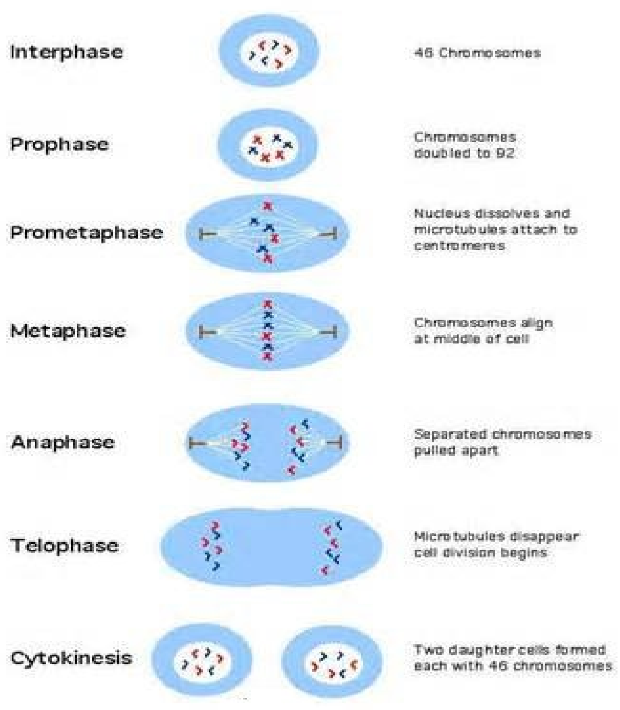

समसूत्री कोशिका विभाजन ता समसूत्रण

केन्द्रों के चारों ओर केन्द्रक का आवरण उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार एक केन्द्रक से दो केन्द्रक उत्पन्न होते हैं। जिस समतल पर मध्यावस्था फलक स्थापित था उस स्थान पर एक आवरण बन जाता है, जिसके कारण वह कोशिका दो कोशिकाओं में विभाजित हो जाती है।

(ii) कोशिकाद्रव्य विभाजन या साइटोकाइनेसिस (Cytokinesis)

केन्द्रक के विभाजन के पश्चात् जीवद्रव्य का विभाजन होता है। पादप कोशिका में दो पुत्री केन्द्रकों के मध्य में (मध्यरेखीय प्रदेश में) गॉल्जीकाय के उत्पाद कुछ छोटे–छोटे कण तथा कुछ सूक्ष्म नलिकाएँ एकत्र होकर एक–दूसरे से जुड़ते हैं, यह फैग्मोप्लास्ट कहलाता है। आरम्भ में ये कण तर्कु के मध्य में बनते हैं और धीरे–धीरे कोशिकाभित्ति की ओर एकत्रित होकर मध्य पटलिका का निर्माण करते हैं।

सूत्री विभाजन, समय एवं तापक्रम

प्राय: सूत्री विभाजन पूर्ण होने में 1/2 घण्टे से 2 या 3 घण्टे का समय लगता है, परन्तु समय पर तापक्रम का प्रभाव पड़ता है। एक निश्चित सीमा तक तापक्रम बढ़ने पर सूत्री विभाजन की क्रिया तीव्र हो जाती है।

सूत्री विभाजन का महत्व

- इस क्रिया में एक कोशिका से दो सन्तति कोशिकाएँ बनती हैं। सन्तति कोशिकाएँ सभी प्रकार से समान होती हैं।
- सन्तति कोशिकाओं में गुणसूत्रों की संख्या मातृ–कोशिका के समान होती है।
- यह कोशिका विभाजन प्राणियों के वृद्धि भागों में होता है। अत: इसके फलस्वरूप वृद्धि होती है तथा ऊतकों का निर्माण होता है।
- सूत्री विभाजन अलैंगिक जनन के लिए आधार प्रदान करता है। इस क्रिया में युग्मकों के संयोजन के बिना, एक ही प्राणी से नया प्राणी बनता है।

2. अर्धसूत्रण (Meosise)

अर्धसूत्रण में गुणसूत्रों का पुनर्संयोजन होता है और इस प्रक्रिया में जीनों का पुनर्वितरण हो जाता है। इससे प्रत्येक युग्मक (गैमीट) में नया जीन संचय उत्पन्न होता है।

अर्धसूत्रण के परिणामस्वरूप चार अगुणित कोशिकाएं बनती है जो जीन की दृष्टि से अनन्य होती हैं। जिन प्राणियों में द्विलैंगिक प्रजनन की क्रिया प्रचलित है (और अधिकांश

जंतुओं में यही क्रिया पाई जाती है), उनमें प्राणिजीवन एक संसेचित अंडे से आरंभ होता है। संसेचन की प्रक्रिया में अंडे के केंद्रक और शुक्राणु के केंद्रक का सायुज्य होता है और युग्मज बनता है। संसेचन विधि में आनुवंशिक पदार्थ में अनिवार्य द्विगुणन की क्रिया इस प्रकार होती है कि लैंगिक कोशिकाओं का परिपक्वताविभाजन (maturation division) के समय गुणसूत्रों की संख्या आधी हो जाती है। विभाजन के समय इसकी निम्न अवस्थाएँ होती है।

पूर्वावस्था (Prophase)

अर्धसूत्रण की पूर्वावस्था साधारण समसूत्रण की पूर्वावस्था की अपेक्षा अधिक समय तक स्थिर रहती है और कई उपावस्थाओं में विभाजित की जा सकती हैं।

ये उपावस्थाएँ निम्नलिखित हैं :

(1) लेप्टोटीन

(2) जाइगोटीन

(3) पैकिटीन

(4) डिप्लोटीन

(5) डायाकिनिसिस

लेप्टोटीन

लेप्टोटीन अवस्था में केंद्रक लंबे और पतले गुणसूत्रों से भरा पाया जाता है। इन सूत्रों पर कहीं कही कणिकाएँ पाई जाती हैं, जिनको क्रोमोमियर कहते हैं। क्रोमोमियरों के बीच के गुणसूत्रों के भागों को इंटर क्रोमोमेरिक फाइब्रिली कहते हैं। इंट्रोक्रोमोमेरिक फाइब्रिली की अपेक्षा क्रोमोमियर में अभिरंजित होने की अधिक क्षमता होती है।

जाइगोटीन

जाइगोटीन उपावस्था में गुणसूत्रों का युग्मन होता है। लैंगिक गुणसूत्रों के अतिरिक्त जीव के केंद्रक में गुणसूत्रों के दो एकात्मक कुलक होते हैं। एक कुलक में कई गुणसूत्र होते हैं, जो साधारणत: एक दूसरे से भिन्न होते हैं। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक प्रकार के दो गुणसूत्र होते हैं। युग्मांशु उपवस्था इनमें गुणसूत्रों का युग्मन होता है। युग्मन की क्रिया क्रमहीन रूप में नहीं होती, वरन् बहुत क्रमबद्ध होती है। यह क्रिया केवल समान गुणसूत्रों के बीच होती है। प्रत्येक गुणसूत्र अपने समान सूत्र के साथ एक सिरे से दूसरे सिरे तक जुड़ जाता है और जुड़े हुए सूत्रों के क्रोमोमियर केवल अपने समान क्रोमोमियर से ही जुड़ते हैं। जाइगोटीन अवस्था के अंत तक युग्मन की क्रिया पूर्ण हो जाती है। साथी गुणसूत्र एक दूसरे के इतने अधिक समीप होते हैं कि वे

एक प्रतीत होते हैं। गुणसूत्रों के ऐसे जोड़ों को द्विसंयोजक कहा जाता है।

पैकिटीन

पैकिटीन उपावस्था में प्रत्येक द्विसंयोजक के युग्मित सूत्र एक दूसरे के इतने समीप होते हैं कि पूर्ण द्विसंयोजक देखने में एक सूत्र प्रतीत होता है। पैकिटीन समय में सर्पित संघनन (spiral condensation) के कारण द्विसंयोजक छोटे होने लगते हैं और डिप्लोटीन तथा डायाकिनीसिस समय में द्विसंयोजक और भी छोटे हो जाते हैं।

डिप्लोटीन

डिप्लोटीन उपावस्था में एक द्विसंयोजक के दोनों सूत्रों में से प्रत्येक सूत्र दो–दो सूत्रों में विभाजित हो जाता है। इसका फल यह होता है कि प्रत्येक द्विसंयोजक दो जोड़ी युग्मित सूत्रों से बना पाया जाता है। एक गुणसूत्र के विभाजन से उत्पन्न दो सूत्रों को अर्धसूत्र कहते हैं।

डायाकिनिसिस

सूत्रों के अधिक मोटे ओर छोटे होने के कारण डायाकिनिसिस में अर्धसूत्रों का पारस्परिक संबंध सुगमता से नहीं देखा जा सकता और मध्यावस्था में तो गुणसूत्रों का भूयिष्ठ संघनन हो जाता हैं, जिससे कि ऐज्मेटा की उपस्थित का अनुमान किया जा सकता हैं।

अर्धसूत्री विभाजन के प्रकार

युग्मनज (प्रारम्भिक अर्धसूत्री विभाजन) : इस प्रकार का विभाजन उन पौधों में होता है जिनमें जीवन–चक्र मुख्यत: अनन्य (हैप्लोन्टिक) तथा अगुणित होता है तथा द्विगुणित अवस्था बहुत कम समय के लिए होती है, उदाहरण– समूह के पौधे (यूलोथ्रिक्स)। इन पौधों में दो युग्मकों के संयोजन द्वारा युग्मनज बनता है। इसमें अर्धसूत्री विभाजन द्वारा चार अगुणित बीजाणु बनते हैं। जिनसे नए अगुणित (n) पौधे का जन्म होता है।

युग्मकी (समापन अर्धसूत्री विभाजन) : इस प्रकार का अर्धसूत्री विभाजन जन्तुओं तथा कुछ पौधों (कुछ शैवालों) में होता है जिनमें जीवन–चक्र डिप्लोन्टिक प्रकार का होता है। इनमें मुख्य शरीर द्विगुणित होता है और अर्धसूत्री विभाजन बनते समय होता है।

स्पोरिक (मध्यस्थित अर्धसूत्री विभाजन) : इस प्रकार का अर्धसूत्री विभाजन उच्च वर्ग के पौधों तथा कुछ थैलोफाइटा में भी होता है जिनमें जीवन चक्र डिप्लोहैप्लोन्टिक (Diplohaplontic) प्रकार का होता है। युग्मनज से बीजाणु –उद्भिद (Spotophyte) बनता हैं जिसमें पहले बीजाणु मातृ–कोशिकाएँ बनती है उनमें अर्धसूत्री विभाजन से एक ही प्रकार के अथवा दो प्रकार के बीजाणु बनते हैं। बीजाणुओं से अंकुरण के द्वारा युग्मकोद्भिद बन

जाता है जिस पर युग्मक बनते हैं। उदाहरण– मौस, फर्न, साइकस, सरसों आदि।

मध्यावस्था

यद्यपि अर्धसूत्रण की पूर्वावस्था (Prophase) से पहले ही प्रत्येक गुणसूत्र का विभाजन हो जाता है, तथापि इनके सेंट्रोमियर का विभाजन मध्यावस्था तक भी नहीं होता। इस कारण विभाजित हो जाने के पर भी प्रत्येक गुणसूत्र की निजता बनी रहती है।

पश्चावस्था

पश्चावस्था मे प्रत्येक गुणसूत्र अपने साथी से अलग हो जाता है, अर्थात् प्रत्येक द्विसंयोजक के दोनों गुणसूत्रों का विघटन हो जाता है और युग्मित गुणसूत्रों में से किसी ध्रुव की ओर जाता है और दूसरा उसके विरुद्ध ध्रुव की ओर। इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक ध्रुव पर गुणसूत्र अपनी आधी संख्या में ही पहुँचते हैं।

अंतराल अवस्था

अंतराल अवस्था बहुत ही अल्पकालीन होती है और कुछ जंतुओं में तो होती ही नहीं।

अर्धसूत्री विभाजन का महत्व

अर्धसूत्री विभाजन का निम्नलिखित महत्व है–

- इसके फलस्वरूप बनी सन्तति–जनन कोशिकाओं में गुणसूत्रों की संख्या कायिक द्विगुणित संख्या की आधी रह जाती है।
- यह लैंगिक जनन के लिए अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि प्रजनन में एक मादा युग्मक और नर युग्मक के संयुग्मन से युग्मनज (जाइगोट) बनता है।
- इसमें गुणसूत्रों की संख्या फिर द्विगुणित (2n) हो जाती है। युग्मनज नए शरीर की रचना करता है। इस प्रकार प्रत्येक जाति के गुणसूत्रों की संख्या पीढ़ी–दर–पीढ़ी निश्चित बनी रहती है।
- प्राथमिक रूप में अर्धसूत्री विभाजन की द्विपट्ट या डिप्लोटीन अवस्था में विनिमय होता है जिसके कारण चारों जनन कोशिकाओं गुणसूत्रों की संख्या तो आधी रहती है, परन्तु इनकी किस्मों में अन्तर आ जाता है और इसके फलस्वरूप नए संयोग का निर्माण होता है जिनसे प्रजातियों में विभिन्नताएं आती हैं।
- ये ही विकास का आधार है।

3. स्वतंत्र कोशिका निर्माण

इस प्रकार के विमाजन में पहले केन्द्रक विभाजित हो जाता है, परन्तु कोशिका–भित्ति केन्द्रक विभाजन के तुरन्त बाद नहीं बनती। इस प्रक्रिया में केन्द्रक कई बार विभाजित होता है तथा एक मातृ– कोशिका में सूत्री विभाजन द्वारा अनेक केन्द्रक बन जाते हैं। जब केन्द्रक का विभाजन रूक जाता है तो प्रत्येक केन्द्रक के चारों ओर कोशिका–भित्ति बन जाती हैं भ्रूणपोश (Endosperm) में कोशिकाएँ इसी प्रक्रिया द्वारा बनती हैं।

4. मुकुलन (Budding)

इस प्रकार का विभाजन यीस्ट में पाया जाता है। इस प्रक्रिया में कोशिका से बाह्य वृद्धि होकर एक या एक से अधिक छोटी रचनाएं बन जाती हैं तथा केन्द्रक सूत्री विभाजन द्वारा (Lindegreen, 1949 के अनुसार) विभाजित होकर दो भागों में बँट जाता है। कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार, यह विभाजन असूत्री विभाजन या अमाइटोसिस प्रकार का होता है। कुछ समय के बाद प्रत्येक रचना यीस्ट की नई कोशिका में परिवर्तित हो जाती है। इस क्रिया को मुकुलन कहते है। जब ये उद्धर्थ रचनाएं अपनी मातृ–कोशिका से अलग नहीं होती तो श्रृंखला बनाती हैं जिसे आभासी कवक तन्तु कहते हैं, परन्तु अन्त में ये अलग हो जाती हैं।

5. असूत्री विभाजन या अमाइटोसिस

इस प्रकार के विभाजन में सबसे पहले केन्द्रक कुछ लम्बा हो जाता है तथा मध्य स्थान पर या किसी एक सिरे के पास संकुचन बन जाता है। कुछ समय के बाद दो भागों में विभाजित हो जाता है। इस प्रकार उत्पन्न केन्द्रक समान आकार के नहीं होते हैं। यह अनिवार्य नहीं है कि केन्द्रक विभाजन के बाद कोशिका का भी विभाजन हो। इस प्रकार का विभाजन सामान्यत: कवकों तथा शैवालों में पाया जाता है। उच्च वर्ग के पौधों में यह केवल पुरानी कोशिकाओं (जो नष्ट हो रही हैं) में होता हैं।

➢ सहायक प्राध्यापक
पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय
चित्रकूट, सतना (म.प्र.)

तुल्यांकी भार – संकल्पना एवं उपयोगिता

■ डॉ. अमर श्रीवास्तव

रसायन विज्ञान में तुल्यांकी भार की संकल्पना एक उपयोगी एवं रोचक संकल्पना है। इसका उपयोग आंकिक गणनाओं में बहुतायत से होता है परन्तु उपयोगी एवं रोचक होने के साथ ही यह विषय विद्यार्थियों के लिए कठिन एवं उलझन में डालने वाला माना जाता है। यद्यपि यह संकल्पना अत्यन्त सरल है। फिर भी समझ में न आने के कारण विद्यार्थियों को गणनाओं में कठिनाई होती हैं। यह आलेख हाईस्कूल एवं इण्टरमीडिएट स्तर के विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर लिखा गया है।

रासायनिक अभिक्रियाएँ पदार्थों के एक निश्चित द्रव्यमान के अनुसार सम्पन्न होती हैं। किसी पदार्थ का निश्चित द्रव्यमान दूसरे पदार्थ के निश्चित द्रव्यमान के साथ ही क्रिया करता है। उदाहरण के लिए, हाइड्रोजन की 1 g मात्रा ऑक्सीजन के 8 g या क्लोरीन के 35.5 g के साथ क्रिया करता है। दूसरे शब्दों में, किसी पदार्थ की एक निश्चित मात्रा दूसरे पदार्थ की एक निश्चित मात्रा के समतुल्य है। इसी समतुल्यता को पदार्थ का तुल्यांकी भार कहते है।

अत: किसी पदार्थ का तुल्यांकी भार उस पदार्थ का वह द्रव्यमान है जो हाइड्रोजन के 1 g या आक्सीजन के 8 g या क्लोरीन के 35.5 g के साथ क्रिया करता है या उसे विस्थापित करता है।

पदार्थ के तुल्यांकी भार को ग्राम में व्यक्त करने पर इसे ग्राम तुल्यांकी भार कहते हैं। उदाहरण के लिए,

$$\underset{65\text{ g}}{Zn} + \underset{98\text{ g}}{H_2SO_4} \rightarrow ZnSO_4 + \underset{2\text{ g}}{H_2}$$

उपर्युक्त अभिक्रिया में जिंक (Zn) का 65 g सल्फ्यूरिक अम्ल (H_2SO_4) के 98 g से क्रिया करके हाइड्रोजन (H_2) के 2 g का निर्माण करता है। अत:

H का 2 g = Zn का 65 g या H का 1 g = Zn के 65/2 = 32.5 g

अत: Zn का ग्राम तुल्यांकी भार 32.5 g है।

इसी प्रकार,

H का 2 g = H_2SO_4 का 98 g या H का 1 g = H_2SO_4 का 98/2 = 49g

अत: H_2SO_4 का ग्राम तुल्यांकी भार 49g है।

तुल्यांकी भार की वर्तमान संकल्पना रिक्टर, वेंजल, जान डाल्टन, कैनिजारो, जोसेफ प्राउस्ट, ड्यूमा आदि अनेक वैज्ञानिकों के प्रयासों का प्रतिफल है। रिक्टर ने सर्वप्रथम स्टिाईकोमीटरी (Stoichiometry) शब्द का प्रतिपादन किया तथा उन्होंने अनेक तत्वों के तुल्यांकी भारों को ज्ञात किया।

तुल्यांकी भार का निर्धारण

पदार्थों के तुल्यांकी भार का निर्धारण अनेक विधियों द्वारा किया जाता है जैसे–

(i) हाइड्रोजन विस्थापन विधि

(ii) ऑक्साइड निर्माण विधि

(iii) ऑक्साइड अपचयन विधि

(iv) क्लोराइड निर्माण विधि

(v) धातु विस्थापन विधि

(vi) उभय अपघटन विधि

(vii) विद्युत अपघटन विधि

(i) हाइड्रोजन विस्थापन विधि

यह विधि सक्रिय धातुओं जैसे Ca, Mg, Sn, Fe, Zn आदि के तुल्यांकी भारों की गणना के लिए उपयोग किया जाता है। ये तत्व तनु अम्ल के साथ क्रिया करके H_2 गैस मुक्त करते हैं।

विधि: इस विधि में किसी सक्रिय धातु की निश्चित मात्रा का तनु सल्फ्यूरिक अम्ल या तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के साथ क्रिया कराते हैं, जिसके कारण H_2 गैस उत्पन्न होती है। उत्पन्न H_2 गैस का आयतन माप कर उसका S.T.P. पर आयतन, आदर्श गैस समीकरण की सहायता से ज्ञात कर लेते है। चूँकि S.T.P. पर H_2 गैस के 22400 ml आयतन का द्रव्यमान 2 g होता है। अत: धातु द्वारा विस्थापित H_2 गैस के द्रव्यमान से धातु के तुल्यांकी भार की गणना की जा सकती है।

इसी प्रकार, अन्य प्रकार के पदार्थों के लिए भिन्न–भिन्न विधियों का उपयोग कर उनके तुल्यांकी भार का निर्धारण किया जाता है।

पदार्थों का तुल्यांकी भार

यह ध्यान देने योग्य बात है कि पदार्थों का तुल्यांकी भार परिवर्तनीय हो सकता है। तथा एक ही पदार्थ का तुल्यांकी भार संयोजकता, ऑक्सीकरण संख्या एवं भिन्न–भिन्न अभिक्रियाओं में भिन्न–भिन्न हो सकता है।

अत: तुल्यांकी भार के सही–सही निर्धारण के लिए तत्वों की ऑक्सीकरण संख्या, अणुओं की संरचना एवं रासायनिक अभिक्रिया की सही–सही जानकारी आवश्यक है।

तुल्यांकी भार की गणना

विभिन्न प्रकार के पदार्थों जैसे– तत्व, अम्ल, क्षार, लवण, ऑक्सीकारक एवं अपचायक पदार्थों के तुल्यांकी भारों की गणना निम्न प्रकार से की जा सकती है।

(1) तत्वों का तुल्यांकी भार

$$\text{तत्व का तुल्यांकी भार} = \frac{\text{तत्व का परमाणु भार}}{\text{तत्व की संयोजकता}}$$

उदाहरण के लिए,

Mg का तुल्यांकी भार = 24/2 = 12

O का तुल्यांकी भार = 16/2 = 8

I का तुल्यांकी भार = 127/1 = 127

परन्तु यदि कोई तत्व परिवर्ती संयोजकता प्रदर्शित करता है तो संयोजकता के अनुसार उसका तुल्यांकी भार भी परिवर्तनीय होगा।

उदाहरण के लिए,

क्यूप्रस लवणों (Cu^{+}, संयोजकता =1) में Cu का तुल्यांकी भार होगा = 63.5/1

क्यूप्रिक लवणों (Cu^{2+}, संयोजकता=2) में Cu का तुल्यांकी भार होगा = 63.5/2 = 31.75

(2) लवण का तुल्यांकी भार

$$\text{लवण का तुल्यांकी भार} = \frac{\text{लवण का सूत्रभार (अणुभार)}}{\text{धनायन या ऋणायन पर कुल आवेश}}$$

उदाहरण के लिए,

NaCl का तुल्यांकी भार = 23+35.5/1 = 58.5

Na_2CO_3 का तुल्यांकी भार = $\frac{(2x23) + 12 + (3x16)}{2} = 53$

$FeCl_3$ का तुल्यांकी भार = अणुभार/ 3

(चूँकि Fe पर +3 धन आवेश या तीन Cl पर कुल −3 ऋण आवेश है।)

(3) अम्लीय लवणों का तुल्यांकी भार

अम्लीय लवण वे लवण हैं जो जल में वियोजित होकर धनायन के साथ, एक या अधिक H^+ आयन देते हैं।

$$\text{लवण का तुल्यांकी भार} = \frac{\text{लवण का सूत्रभार (अणुभार)}}{\text{विस्थापनशील H परमाणुओं की संख्या}}$$

उदाहरण के लिए:

$NaHCO_3$ का तुल्यांकी भार = $\frac{23+1+12+(3x16)}{1} = 84$

$Ca(HCO_3)_2$ का तुल्यांकी भार = अणुभार/2

(4) अम्ल का तुल्यांकी भार

$$\text{अम्ल का तुल्यांकी भार} = \frac{\text{अम्ल का अणुभार}}{\text{अम्ल की क्षारकता}}$$

किसी विलयन में अम्ल के एक अणु द्वारा प्रदान किए गए H^+ की संख्या, अम्ल की क्षारकता कहलाती है। दूसरे शब्दों में, अम्ल में विस्थापनशील हाइड्रोजनों की संख्या ही अम्ल की

क्षारकता है।

उदाहरण के लिए,

HCl का तुल्यांकी भार = अणुभार / 1

H_2SO_4 का तुल्यांकी भार = अणुभार / 2

(चूँकि H_2SO_4 का में विस्थापनशील H की संख्या 2 है अत: H_2SO_4 का तुल्यांकी भार अणुभार/2 होगा।)

नीचे दी गई तालिका में कुछ अम्लों के तुल्यांकी भार की गणना की गई है।

अम्ल	अणुभार	क्षारकता	तुल्यांकी भार
HCl	36.5	1	36.5/1 = 36.5
$\mathbf{H_2SO_4}$	98	2	98/2 = 49
$\mathbf{H_3PO_4}$	98	3	98/3 = 32.6

यहाँ यह ध्यान रखने योग्य बात है कि H_2SO_4 में विस्थापनशील परमाणुओं की संख्या 2 है फिर भी अनेक अभिक्रियाओं में मात्र 1H ही विस्थापित होता है।

उदाहरण के लिए:

$$NaOH + H_2SO_4 \rightarrow NaHSO_4 + H_2O$$

अत: इस अभिक्रिया में H_2SO_4 का तुल्यांकी भार अणुभार/1 होगा, न कि = अणुभार/2 । जबकि निम्न अभिक्रिया में, जिसमें H_2SO_4 के दोनों H परमाणु क्षार द्वारा विस्थापित किए जाते हैं, उसमें H_2SO_4 का तुल्यांकी भार = अणुभार/2 होगा।

$$2NaOH + H_2SO_4 \rightarrow Na_2SO_4 + 2H_2O$$

इसीप्रकार H_3PO_4 का जिसमें तीन विस्थापनशील H परमाणु उपस्थित है, उसमें भी अभिक्रिया के अनुसार तुल्यांकी भार = अणुभार/1 या अणुभार/3 हो सकते हैं।

यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि ऐसीटिक अम्ल (CH_3COOH) में कुल हाइड्रोजन परमाणु 4 हैं। परन्तु विस्थापनशील हाइड्रोजन परमाणु की संख्या या क्षारकता 1 है। अत: CH_3COOH का तुल्यांकी भार = अणुभार/ 1 होगा।

इसी क्रम में, एक रोचक उदाहरण फॉस्फोरस (P) निम्न ऑक्सी अम्लों का लिया जा सकता है:

(a) H_3PO_2 – हाइपोफॉस्फोरस अम्ल (फॉस्फीनिक अम्ल)

(b) H_3PO_4 – फॉस्फोरस अम्ल (फॉस्फोनिक अम्ल)

(c) H_3PO_4 – फॉस्फोरिक अम्ल

प्रथम दृष्टया देखने में प्रतीत होता है कि उपर्युक्त तीनों अम्लों में विस्थापनशील हाइड्रोजन की संख्या 3 है, परन्तु इन अणुओं की संरचना देखने से ज्ञात होता है कि इनकी क्षारकता क्रमश: 1, 2 एवं 3 है। ऐसा इसलिए है क्योंकि P–O एवं P–H बन्ध की तुलना में O–H बन्ध कमजोर होता है। अत: केवल O–H समूह से जुड़े हुए हाइड्रोजन परमाणु ही विस्थापित हो पाते है। अत: इनका तुल्यांकी भार क्रमश: अणुभार/1, अणुभार/2 एवं अणुभार/3 होता है।

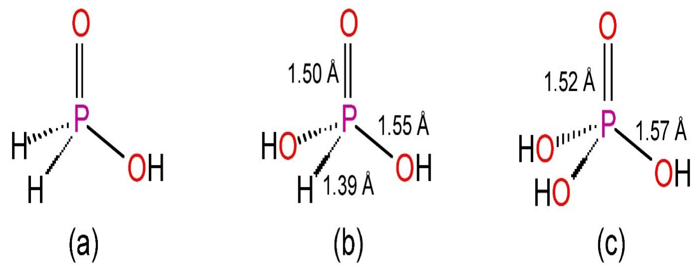

हाइपोफॉस्फोरस अम्ल   फॉस्फोरस अम्ल   फॉस्फोरिक अम्ल

एक अन्य रोचक उदाहरण बोरिक अम्ल H_3BO_3 या $B(OH)_3$ का लिया जा सकता है। इस अणु में भी 3 हाइड्रोजन है परन्तु इस अम्ल की क्षारकता 1 है। वास्तव में, बोरिक अम्ल में B परमाणु का अष्टक अपूर्ण होने के कारण यह एक लुइस अम्ल है। यह प्रोटॉन प्रदाता न होकर, जल में, एक OH^- ग्रहण करता है तथा $[B(OH)_4]^-$ नामक संयुग्मी क्षार बनाता है।

$$B(OH)_3 + H_2O \rightleftharpoons [B(OH)_4]^- + H^+$$

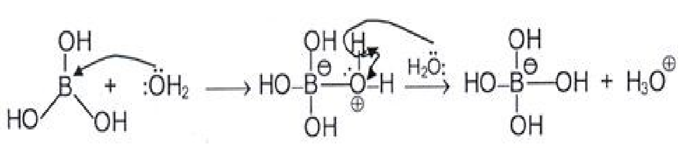

उपर्युक्त अभिक्रिया से स्पष्ट है कि बोरिक अम्ल का जलीय विलयन एक प्रोटॉन प्रदान करता है। अत: इसकी क्षारकता 1 मानी जाती है तथा इसका तुल्यांकी भार = अणुभार/ 1 होता है।

(5) क्षार का तुल्यांकी भार

$$\text{क्षार का तुल्यांकी भार} = \frac{\text{क्षार का अणुभार}}{\text{क्षार की क्षारकता}}$$

किसी विलयन में क्षार के एक अणु द्वारा प्रदान किए गए $-OH^-$ की संख्या, क्षार की अम्लता कहलाती है। दूसरे शब्दों, क्षार में विस्थापनशील $-OH$ समूहों की संख्या ही अम्लता है।

उदाहरण के लिए,

NaOH का तुल्यांकी भार = अणुभार/ 1

$Ca(OH)_2$ का तुल्यांकी भार = अणुभार/ 2

(चूँकि $Ca(OH)_2$ में विस्थापनशील $-OH$ समूहों की संख्या 2 है अत: $Ca(OH)_2$ का तुल्यांकी भार अणुभार/2 होगा।)

नीचे दी गई तालिका में कुछ क्षारों के तुल्यांकी भार की गणना की गई है।

क्षार	अणुभार	क्षारकता	तुल्यांकी भार
NaOH	40	1	40/1= 40
$Ca(OH)_2$	74	2	74/2 = 37
$Al(OH)_3$	78	3	78/3 = 26

(6) ऑक्सीकारकों/ अपाचायकों का तुल्यांकी भार

ऑक्सीकारकों / अपचायकों का तुल्यांकी भार

$$= \frac{\text{ऑक्सीकारक / अपचायक का अणुभार}}{\text{एक अणु में ऑक्सीकरण संख्या में परिवर्तन}}$$

$$= \frac{\text{ऑक्सीकारक / अपचायक का अणुभार}}{\text{एक अणु द्वारा प्राप्त / त्याग किए गए इलेक्ट्रानों की संख्या}}$$

किसी रिडाक्स अभिक्रिया में एक अभिकारक ऑक्सीकारक और दूसरा अपचायक होता है। ऑक्सीकारक वह पदार्थ है जो किसी अभिक्रिया में इलेक्ट्रॉन ग्रहण करता है तथा

उसके ऑक्सीकरण संख्या में कमी होती है।

इसी प्रकार, अपचायक वह पदार्थ है जो किसी अभिक्रिया में इलेक्ट्रॉन त्याग करता है तथा उसके ऑक्सीकरण संख्या में वृद्धि होती है।

उदाहरण के लिए,

$$2\,K\underline{Mn}O_4 + 5H_2\underline{C}_2O_4 + 3H_2SO_4 \longrightarrow 2\underline{Mn}SO_4 + 10\,\underline{C}O_2 + K_2SO_4 + 8H_2O$$

+7 +3 +2 +4

उक्त अभिक्रिया में Mn के ऑक्सीकरण संख्या में परिवर्तन 7−2 = 5 इकाई

अत: $KmnO_4$ का तुल्यांकी भार = अणुभार/ 5 होगा।

C के ऑक्सीकरण संख्या में परिवर्तन = 4−3 = 1 इकाई या एक अणु में 2 इकाई

अत: $H_2C_2O_4$ का तुल्यांकी भार = अणुभार/ 2 होगा।

नीचे दी गई तालिका में महत्वपूर्ण ऑक्सीकारकों एवं अपचायकों के तुल्यांकी भारों की गणना की गई है। (इलेक्ट्रॉन आदान/ प्रदान के आधार पर)

आक्सीकारक/ अपचायक	अभिक्रिया	प्रति अणु इलेक्ट्रॉन त्याग/ प्राप्त	अणु भार	तुल्यांकी भार
$K_2Cr_2O_7$	$Cr_2O_7^{2-} + 14H^+ + 6e \rightarrow 2Cr^{3+} + 7H_2O$	6	294	294/6 =49
$KMnO_4$ (अम्लीय माध्यम)	$MnO_4^- + 8H^+ + 5e \rightarrow Mn^{2+} + 4H_2O$	5	158	158/5 =31.6
$KMnO_4$ (उदासीन माध्यम)	$MnO_4^- + 4H^+ + 3e \rightarrow MnO_2 + 2H_2O$	3	158	158/3 =52.6
$FeSO_4$	$Fe^{2+} \rightarrow Fe^{3+} + e$	1	152	152/1 =152
$H_2C_2O_4$ (ऑक्जेलिक अम्ल)	$C_2O_4^{2-} \rightarrow 2CO_2 + 2e$	2	126	126/2 =63

नीचे दी गई तालिका में महत्वपूर्ण ऑक्सीकारकों एवं अपचायकों के तुल्यांकी भारों की गणना की गई है। (ऑक्सीकरण संख्या में परिवर्तन के आधार पर)

ऑक्सीकारक/ अपचायक	ऑक्सीकरण संख्या	उत्पाद	ऑक्सीकरण संख्या	ऑक्सीकरण संख्या में परिवर्तन प्रति परमाणु	ऑक्सीकरण संख्या में परिवर्तन प्रति अणु	तुल्यांकी भार
$Cr_2O_7^{2-}$	+ 6	Cr^{3+}	+3	3	3x2 = 6	अणुभार /6
MnO_4^- (अम्लीय माध्यम)	+7	Mn^{2+}	+2	5	5x1 = 5	अणुभार/5
MnO_4^- (उदासीन माध्यम)	+7	MnO_2	+4	3	3x1 = 3	अणुभार/3
MnO_4^- (क्षारीय माध्यम)	+7	MnO_4^{2-}	+6	1	1x1 = 1	अणुभार/1
H_2O_2	−1	H_2O	−2	1	1x2 = 2	अणुभार/2
H_2O_2	−1	O_2	0	1	1x2 = 2	अणुभार/2
$C_2O_4^{2-}$	+3	CO_2	+4	1	1x2 = 2	अणुभार/2
$S_2O_3^{2-}$	+2	$S_4O_6^{2-}$	+2.5	0.5	0.5x2 = 1	अणुभार/1

चूँकि ऑक्सीकारक/अपचायक पदार्थों के भिन्न–भिन्न अभिक्रियाओं में ऑक्सीकरण संख्याओं में भिन्न–भिन्न परिवर्तन होता है अत: इन पदार्थों का तुल्यांकी भार परिवर्तनीय होता है तथा यह अभिक्रिया विशेष पर निर्भर करता है।

पदार्थों के तुल्यांकी भार की जानकारी अपरिहार्य है तथा यह आंकिक / आयतनी गणनाओं को सरल बनाता है। अत: कठिन एवं उलझाऊ प्रतीत होने वाला यह विषय अत्यन्त सरल तथा रोचक है।

तुल्यांकी भार संकल्पना का उपयोग

तुल्यांकी भार संकल्पना का उपयोग विलयनों की सान्द्रता ज्ञात करने में, रासायनिक आंकिक गणनाओं, रासायनिक स्टॉइकियोमीटरी में, आयतनी गणनाओं में, विश्लेषणात्मक रसायन में, बहुलक रसायन में, अम्ल–क्षार तथा अन्य अनुमापनों में, भारात्मक विश्लेषण आदि अनेक क्षेत्र में बहुतायत से होता है।

विलयनों की सान्द्रता

तुल्यांकी भार संकल्पना की सहायता से विलयनों की सान्द्रता ज्ञात की जा सकती है। घर से लेकर प्रयोगशालाओं तक में चलने वाली अधिकांश अभिक्रियाएँ विलयन में होती है। अत: किसी विलयन में उपस्थित पदार्थों की मात्रा, जिसे विलयन की सान्द्रता कहते हैं, की जानकारी होनी आवश्यक है। विलयन की सान्द्रता अनेक प्रकार से प्रकट की जा सकती है। जैसे– (1) मोलरता (2) फॉर्मलता (3) मोललता (4) मोल प्रभाज (5) नार्मलता आदि।

नार्मलता सान्द्रता मात्रक को समझने के लिए तुल्यांकी भार संकल्पना की जानकारी आवश्यक है।

नार्मलता (N)

किसी विलयन की सान्द्रता व्यक्त करने हेतु यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण मात्रक है। "किसी दिए गए ताप पर 1 लीटर विलयन में उपस्थित विलेय के 1 ग्राम तुल्यांकी भारों की संख्या विलयन की नार्मलता कहलाती है।"

$$\text{नार्मलता (N)} = \frac{\text{विलेय के ग्राम तुल्यांकी भारों की संख्या}}{\text{विलयन का आयतन (लीटर में)}}$$

वास्तव में किसी विलयन की ग्राम तुल्यांकी भार प्रति लीटर ($g\ eq\ L^{-1}$) सान्द्रता ही, विलयन की नार्मलता है।

यदि

W= विलेय का द्रव्यमान (ग्राम में)

V= विलयन का आयतन (सेन्टीमीटर^3 में) या V/1000= आयतन (लीटर में)

E= विलेय का तुल्यांकी भार (ग्राम में)

N= विलयन की नार्मलता (ग्राम तुल्यांक प्रति लीटर में)

अत: विलेय के ग्राम तुल्यांक की संख्या = W/E

$$\therefore \quad N = \frac{W/E}{V/1000} = \frac{W/1000}{E \times V}$$

$$\therefore \quad \boxed{W = \frac{NEV}{1000}}$$

उपर्युक्त समीकरण आंकिक गणनाओं में अत्यधिक उपयोग किया जाता है। यह विलयन की नार्मलता (N) का सम्बन्ध विलेय के द्रव्यमान (W) विलयन के आयतन (V) एवं विलेय के तुल्यांकी भार में सम्बन्ध व्यक्त करता है।

यदि विलयन की नार्मलता 1 है, तो उस विलयन को नार्मल विलयन कहते हैं तथा उसका संघटन 1ग्राम तुल्यांक प्रति लीटर होता है। इसीप्रकार यदि विलयन की नार्मलता 1/10 है तो उस डेसी नार्मल विलयन कहते हैं तथा उसका संघटन 1/10 ग्राम तुल्यांक प्रति लीटर होता है।

विलयन की नार्मलता एवं मोलरता में सम्बन्ध

मोलरता x विलेय का अणुभार = नार्मलता x विलेय का तुल्यांकी भार

$$\text{नार्मलता} = \text{मोलरता} \times \frac{\text{विलेय का अणुभार}}{\text{विलेय का तुल्यांकी भार}}$$

जाते –जाते..........

- यह ध्यान देने योग्य बात है कि तुल्यांकी भार परिवर्तनीय हो सकता है।
- तुल्यांकी भार के सही–सही निर्धारण के लिए तत्वों की ऑक्सीकरण संख्या, अणुओं की संरचना एवं रासायनिक अभिक्रिया की सही–सही जानकारी आवश्यक है।

- पदार्थों के तुल्यांकी भार की जानकारी अपरिहार्य है तथा यह आंकिक/आयतनी गणनाओं को सरल बनाता है। अत: कठिन एवं उलझाऊ प्रतीत होने वाला यह विषय अत्यन्त सरल तथा रोचक है।

➢ एसोसिएट प्रोफेसर
रसायन विभाग
डी. ए. वी. कॉलेज
कानपुर – 208001
ई–मेल : asri1406 @gmail.com

ज्ञान-विज्ञान शैक्षिक निबन्ध

सम्पादन : कृष्ण कुमार मिश्र

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केंद्र
टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान

मुंबई-400 088